पादपों में कीट प्रतिरोध
और
समेकित कीट प्रबंधन

डॉ० प्रेम किशोर

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन

डॉ० प्रेम किशोर
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रधान अन्वेषक (ज्वार एवं बाजरा)
कीट विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली - 110012

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development,
(Department of Secondary and Higher Education)
GOVERNMENT OF INDIA
2006

© भारत सरकार, 2006
© Government of India, 2006

प्रकाशक :

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110 066

प्रथम संस्करण : 2006

मूल्य :

देश में	:	रु 367.00	
विदेश में	:	पौंड 4.57	डॉलर 7.95

बिक्री का पता :

1. **वैज्ञानिक अधिकारी (बिक्री)**
   वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
   पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम्,
   नई दिल्ली-110 066

2. **प्रकाशन नियंत्रक**
   प्रकाशन विभाग, भारत सरकार,
   सिविल लाइन्स,
   नई दिल्ली-110 054

1848 HRD/06—1B

आयोग के पूर्व अध्यक्ष

1. डॉ. दौलत सिंह कोठारी, (1961-1965)
2. डॉ. निहालकरण सेठी, (1965-1966)
3. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, (1966-1967)
4. डॉ. एस. बालसुब्रह्मण्यम्, (1967-1968)
5. डॉ. बाबूराम सक्सेना, (1968-1970)
6. श्री कृष्ण दयाल भार्गव, (1970)
7. श्री गंटि जोगि सोमयाजी, (1970-1971)
8. डॉ. पी. गोपाल शर्मा, (1971-1975)
9. प्रो. हरबंशलाल शर्मा, (1975-1980)
10. प्रो. मलिक मोहम्मद, (1983-1987)
11. प्रो. सूरजभान सिंह, (1988-1994)
12. प्रो. प्रेम स्वरूप सकलानी, (1994-1998)
13. डॉ. हरीश कुमार, (1998)
14. डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव, (1998-2001)
15. डॉ. हरीश कुमार, (2001-2003)
16. डॉ. पुष्पलता तनेजा (2003-2005)

वर्तमान अध्यक्ष

17. प्रो. के. बिजय कुमार (2005-)

समन्वय तथा संपादन

प्रधान संपादक
प्रो. के. बिजय कुमार
अध्यक्ष

संपादक
श्रीमती शशि गुप्ता
सहायक निदेशक

पुनरीक्षक
डॉ. एल. डी. तिवारी
प्रधान वैज्ञानिक, कीट विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

प्रकाशन
श्री रामबहादुर
उपनिदेशक

डॉ0 पी0 एन0 शुक्ल
वैज्ञानिक अधिकारी

श्री आलोक वाही
कलाकार

प्रस्तावना

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन, सन् 1961 में, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक परिभाषा-कोशों, चयनिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय स्तरीय हिंदी-पुस्तकों का निर्माण किया है। अनेक पाठ्य-पुस्तकें, शब्द-संग्रह, परिभाषा-कोश, चयनिकाएं, पत्रिकाएं, पाठमालाएं आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि उनकी विषय-सामग्री उपयोगी तथा अद्यतन हो और भाषा सरल, बोधगम्य एवं आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम से अपने-अपने विषय को पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला "पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन" डॉ. प्रेम किशोर, प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रधान अन्वेषक (ज्वार एवं बाजरा कीट विज्ञान), कीट विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली द्वारा लिखी गई है और इसका पुनरीक्षण डॉ. एल. डी. तिवारी, प्रधान वैज्ञानिक, कीट विभाग संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली ने किया है। यह पाठमाला लेखक और पुनरीक्षक दोनों के अथक प्रयास से तैयार की गई है जिसके लिए दोनों बधाई के पात्र हैं।

इसकी विषय सामग्री नौ अध्यायों में विभाजित है। लेखक ने विषय-सामग्री का प्रस्तुतिकरण बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया है। इसकी

भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। इसमें लेखक ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित हिंदी की मानक शब्दावली का प्रयोग करने का प्रयास किया है।

पाठमाला की उपयोगिता में वृद्धि हो, इसके लिए पुस्तक के अंत में शब्द सूचियां, आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांतों और उसके प्रकाशनों की सूचियां भी दी गई हैं।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

के बि कुमार

(प्रो. के. बिजय कुमार)

अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

नई दिल्ली

प्राक्कथन

हरित क्रांति के बाद कृषि उत्पादन में चौगुनी वृद्धि हुई है। विविध तकनीकों के समन्वित विकास और प्रसार के फलस्वरूप देश में पहली बार खाद्यान्न उत्पादन को स्थायित्व और आत्मनिर्भरता का गौरव प्राप्त हुआ है। लेकिन लगातार बढ़ती जा रही जनसंख्या के कारण हमें उत्पादन और अधिक बढ़ाना होगा। इस प्रक्रम में अधिक उपज लेने के लिए हमें समेकित उर्वरक प्रबंधन और समेकित पीड़क प्रबंधन जैसे पर्यावरण को सुरक्षित रखने वाले सभी उपाय अपनाने होंगे।

हमारे देश में पीड़कों से 10,000 करोड़ रुपयों की वार्षिक हानि होती है। इनसे बचने के लिए कीटनाशियों और पीड़कनाशियों का बिना सोचे-विचारे उपयोग किया गया जिससे पर्यावरण प्रदूषित हुआ और हम पर्यावरण मित्र कीट नियंत्रण उपाय ढूढ़ने को बाध्य हो गए हैं। पादपों में कीट प्रतिरोध एक ऐसा उपगमन है जिसके उपयोग से पर्यावरण प्रदूषित नहीं होता है। साथ ही कृषि में यह उपगमन समेकित कीट प्रबंधन के लिए आधारशिला का कार्य करता है।

प्रस्तुत पाठमाला में नौ अध्यायों के द्वारा पादपों में कीट प्रतिरोध के सभी आयामों की रोचक प्रस्तुति के प्रयास किए गए हैं, साथ ही शब्दावली भी अलग से दी है जिससे कि तकनीकी शब्दों को समझने में कठिनाई न हो। इस पाठमाला से विश्वविद्यालयों के स्नातक और स्नातकोत्तर छात्रों, शिक्षकों, गैर-सरकारी संगठनों और प्रसार कार्यकर्त्ताओं को बहुत लाभ पहुंचेगा।

डॉ. प्रेम किशोर
कीट विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली-110012

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ
प्राक्कथन	
भूमिका	
1. विषय प्रवेश	1-6
2. पादप-कीट संबंध	7-35
● पादपभक्षी कीट	
● कीटों से पादपों को होने वाली क्षति के प्रकार	
3. पादपभक्षी कीट द्वारा भोजन ढूंढ़ना	36-67
● कीट पादप पारस्परिक क्रियाओं के व्यावहारिक तथा शरीरक्रियात्मक घटक	
● कीट और पादप पारस्परिक क्रिया में पादपीय घटक	
● परपोषी पादप चयन संबंधी सिद्धांत	
4. प्रतिरोध के प्रकार और वर्गीकरण	68-89
● प्रतिरोध की विभिन्न तीव्रताओं को प्रदर्शित करती श्रेणियां	
● प्रतिरोध की क्रियात्मक श्रेणियां	
● परपोषी पादप प्रतिरोध की क्रिया-विधि	
5. कीट व्यवहार और पादप प्रतिरोध	90-120
● अपरिपक्व अवस्थाओं की उत्तरजीविता को संकट	
● परपोषी-पादप विशिष्टता	
● व्यवहार : आनुक्रमिक क्रिया	
6. पादप प्रतिरोध के आधार	121-145
● आकृतिक आधार	
● जैव-रासायनिक आधार	
7. कीट प्रतिरोध के लिए पादप प्रजनन	146-168
● कीट प्रतिरोध-प्रजनन विधियां	
● विभेद उत्पन्न करना	
● कीट प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम	
8. कीट प्रतिरोधी पादप किस्में	169-192
● समेकित कीट प्रबंधन और कीट प्रतिरोधी जातियां	
● प्रतिरोधी किस्में मुख्य नाशक कीट नियंत्रण के रूप में	
9. परपोषी पादप प्रतिरोध कार्यक्रम और समेकित कीट प्रबंधन	193-208
● समेकित कीट प्रबंधन और पादप प्रतिरोध	
● परपोषी पादप प्रतिरोध के घटक	

परिशिष्ट

I.	शब्दावली	209-226
II.	संदर्भ-सूची	227-253
III.	वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांत	254-257
IV.	आयोग द्वारा प्रकाशित परिभाषा कोशों की सूची आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची	258-264

अध्याय - 1

विषय प्रवेश

पादप और कीट के बीच संबंध मुख्यतः भोजन, आश्रय और प्रजनन के लिए होता है। पादप कीटों को भोजन और आश्रय प्रदान करते हैं जबकि कीट अपनी गतिशीलता के कारण पादपों के पराग और उग सकने वाले भागों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने में सहायक होते हैं। आवृतबीजी पादपों के अधिकांश गणों में कीटों द्वारा परागण होता है। पादप और कीट के बीच यह संबंध प्राचीन काल से चला आ रहा है और कीटों के प्रकोप के प्रति पादप अनुक्रियाओं में भिन्नता एक शताब्दी के पूर्व से ज्ञात है।

कीटों के विरुद्ध पादपों में प्रतिरोध (परपोषी-पादप प्रतिरोध) पादप किस्म अथवा जाति का वह गुण है जिसके द्वारा वह कीट की उपस्थिति में भी अच्छी वृद्धि और उपज देती है। प्रतिरोध प्रायः कृषि किस्मों के बीच भिन्नताओं को दर्शाता है, अतः इसे जातीय प्रतिरोध अथवा जातीय नियंत्रण भी कहते हैं।

इतिहास

कृषि के प्रारंभिक चरणों में अनजाने में ही पादपभक्षियों के

विरूद्ध पादप प्रतिरोध के लिए चयन शुरू हो गया था। कीट प्रतिरोधी पादपों के प्राकृतिक चयन की यह प्रक्रिया उस समय तक स्वाभाविक रूप से चलती रही जब तक मनुष्य ने इसमें सक्रिय हस्तक्षेप नही किया। उसने केवल वांछित गुणों वाले पादपों के चयन को ही प्रोत्साहित किया। मन चाहे उत्पाद की प्राप्ति के लिए किये गये सुधारों से उन कारकों का ह्रास हुआ जो प्रतिरोध प्रक्रिया से जुड़े थे। गेहू की किस्म **"अन्डर हिल"** में हेसियन फलाई *(माइटिओला डेस्ट्रेक्टर)* के लिए प्रतिरोध 1785 से ज्ञात है (हेवेन्स, 1972)। इसे कीट पादप संबंध का सबसे अग्रिम अभिलेख माना जा सकता है। पादप प्रतिरोध का दूसरा प्राचीन उदाहरण सेब की **"विंटर मेजेटिन"** किस्म है जिसने लगभग 100 वर्ष पूर्व वूली एफिड *(एरीसोमा लेनीजीरम)* के विरुद्ध प्रतिरोध दिखाया (लिन्डले, 1831)। इसी प्रकार सेब की **"नोर्दरन स्पाई"** किस्म भी इस कीट से प्रभावित नहीं होती है।

कीटों के लिये पादप प्रतिरोध का उत्कृष्ट उदाहरण अंगूर की अमेरिकन किस्मों से मिलता है। ये किस्में अंगूर के कीट *(फाइलेक्जेरा विटिफोलिस)* के प्रति यूरोपीय किस्मों *(विटिस विनिफेरा)* की तुलना में बहुत अधिक प्रतिरोधी पायी गयी थीं। उन्नीसवीं सदी के अन्त में फ्रांस में अंगूर के कीट *फाइलोक्जेरा* के प्रकोप से अंगूर की बेलें बड़े पैमाने पर नष्ट हुईं और वहाँ शराब उद्योग के लिए भारी संकट उत्पन्न हो गया था। इस समस्या का समाधान अंगूर की अमेरिकन किस्मों को अमेरिका से फ्रांस लाकर अंगूर के बागानों में लगाकर किया गया। इससे फ्रांस की गिरती हुई आर्थिक स्थिति को नया सहारा मिला।

परपोषी-पादप प्रतिरोध के क्षेत्र में मिली इन सफलताओं के उपरांत भी इस शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में इस दिशा में कोई

केनसास स्टेट यूनिवर्सिटी में सन् 1920 के उत्तरार्ध में इस संबंध में व्यवस्थित रूप से अध्ययन आरंभ किया। स्नेलिंग (1941) ने पादप प्रतिरोध के संबंध में 567 उल्लेखों का पुनरावकोलन किया जिससे स्पष्ट हुआ कि सन् 1920 से पहले कीटों के प्रति पादपों में प्रतिरोध संबंधी केवल 20 शोधपत्र ही प्रकाशित हुए थे।

पेंटर (1951) ने परपोषी पादप प्रतिरोध के संबंध में अपनी पुस्तक **"इन्सेक्ट रेसिस्टेन्स इन क्रॉप प्लान्ट्स"** प्रकाशित कर कीट नियंत्रण में परपोषी-पादप प्रतिरोध के महत्व को दर्शाया, साथ ही इसको सुव्यवस्थित ढंग से प्रयोग में लाने के लिए प्रोत्साहित किया। यह अपने समय का अनूठा ग्रंथ था। इसमें उस समय तक हुए परपोषी-पादप प्रतिरोध संबंधी कार्यों की समीक्षा की गयी थी। इसके अंतर्गत 1000 से भी अधिक संदर्भों का उल्लेख है तथा इसे आज भी आदर्श ग्रंथ माना जाता है।

परपोषी पादप प्रतिरोध के प्रयासों में सन् 1960 के अंत में तेजी आई जब कीटनाशियों के प्रति कीटों में प्रतिरोध तथा पर्यावरण को होने वाले प्रदूषण से उत्पन्न समस्याएँ सामने आईं। कीट वैज्ञानिक कीट नियंत्रण की ऐसी विधियां ढूंढ़ने का प्रयत्न करने लगे जिनमें कीटनाशियों का बिल्कुल नहीं अथवा कम प्रयोग हो। परपोषी-पादप प्रतिरोध कीट नियंत्रण की ऐसी ही एक विधि है जिसे व्यवहार में लाने से कीटों के नियंत्रण में सफलता मिलेगी तथा पर्यावरण भी प्रदूषित नहीं होगा। पादप-प्रतिरोध के विकास को आनुवंशिकी, पादप-प्रजनन तथा कीट विज्ञान के विकास के साथ-साथ समझना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों से पादपों और कीटों का विकास साथ-साथ हुआ उसी प्रकार उन शास्त्रों का भी विकास हुआ जो मनुष्य के भोजन तथा रेशों पर उनके प्रभावों का निर्धारण करते हैं। पादप प्रजनन स्वयं में मनुष्य द्वारा विकसित विधियों की हेरफेर है (प्रेम किशोर 2003)।

विषय प्रवेश

परपोषी पादप प्रतिरोध के विभिन्न पक्षों को उजागर करने वाली अनेक समालोचनाएं आज उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों, आक्लेयर (1957), पेंटर (1958-68), बैक (1965), नेशनल एकाडमी ऑफ साइंसेज (1971), मैक्सवेल और साथी (1973), वान एम्डन (1973) तथा ग्लुन और साथी (1975), के द्वारा दी गयी हैं। इन समालोचनाओं में विभिन्न फसलों में कीटों के विरुद्ध पादप-प्रतिरोध के विकास को दर्शाया गया है साथ ही प्रतिरोध के कई पक्ष तथा प्रतिरोध की प्रकृति के संबंध में विस्तार से बताया गया है। आजकल अनेक फसलों में ऐसी किस्मों का विकास कर लिया गया है जो नाशक कीटों (कीट पीड़कों) की प्रतिरोधी हैं (चित्र-1)।

चित्र-1 : शूट फ्लाई से ग्रसित होनेवाली ज्वार की ग्रहणशील किस्म, डी जे 6514 और शूट फ्लाई की प्रतिरोधी किस्म, पी एफ जी एस-97

परपोषी-पादप प्रतिरोध परिभाषा एवं संकल्पना

परपोषी-पादप प्रतिरोध पादप का वह गुण है जो उसे नाशक कीट के प्रकोप से बचने, उसके प्रकोप को सहन करने अथवा उससे होने वाली क्षति से पुनः स्वस्थ हो जाने, में समर्थ बनाता है जबकि उसी पर्यावरण में इस कीट से उसी जाति के अन्य पादपों को अधिक हानि पहुँचती है। यह गुण पादपों में जैव-रासायनिक अथवा आकृतिक विशेषताओं के कारण आता है तथा इनसे कीटों का व्यवहार तथा उपापचयी क्रियाएं प्रभावित होती हैं। पेंटर (1951) के अनुसार पादप प्रतिरोध की परिभाषा निम्नलिखित है :

"परपोषी-पादप प्रतिरोध (host plant resistance) पादप की वे वंशागत विशेषताएं (heritable qualities) हैं जिनकी आपेक्षिक मात्रा कीटों द्वारा की गयी क्षति के चरम परिमाण को प्रभावित करती है।" व्यावहारिक कृषि में प्रतिरोध उस अवस्था को दर्शाता है जिसमें कीट संख्या की उपस्थिति में भी पादप की एक विशेष किस्म उसी जाति की दूसरी अन्य किस्मों की तुलना में अच्छी और अधिक उपज देती है। इससे स्पष्ट होता है कि यह विशेष किस्म कीटों द्वारा होने वाली क्षति को सहन करने में दूसरी अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक सहनशील है।

बैक (1959) ने प्रतिरोध की परिधि को सीमित करते हुए बताया कि यह एक पादप जाति, प्रजाति, क्लोन अथवा व्यष्टि (individual) की वे सामूहिक वंशागत विशेषताएं हैं जिनके द्वारा वह स्वयं को एक कीट जाति, प्रजाति, समजीनी प्ररूप अथवा व्यष्टि द्वारा पऱ्पोषी की भांति उपयोग में लाने से रोकती है। यह परिभाषा कीट द्वारा पादप को परपोषी की भांति उपयोग में लाने से संबंधित कीट-पादप पारस्परिक क्रियाओं के क्षेत्रों को कम

करती है तथा इसमें पादप के उस गुण का समावेश नहीं होता है जिसके द्वारा वह कीटों से होने वाली क्षति से अपने को पुनः स्वस्थ बनाता हैं।

कीटों के प्रति पादप प्रतिरोध कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ऐसी कृषिजोपजातियों अथवा कृषि किस्मों (cultivars) का विकास करना है जो नाशक (पीड़क) कीट के विरुद्ध प्रतिरोधी तो हों ही साथ ही उनमें आधारभूत सस्य गुण भी होने चाहिए। पादप जनकों तथा आनुवंशिकों द्वारा चलाए जा रहे फसल सुधार कार्यक्रमों का आधारभूत उद्देश्य उपज बढ़ाने के साथ कीटों के विरुद्ध प्रतिरोध का विकास करना भी होना चाहिए। इसी प्रकार कीट वैज्ञानिकों द्वारा समेकित कीट प्रबंधन के लिए अपनाई जा रही युक्तियों में कीटों के लिए प्रतिरोधी फसलीय पादपों का उपयोग करना अभिन्न अंग होना चाहिए (प्रेम किशोर 2001, 2002, 2003)।

अध्याय - 2

पादप-कीट-संबंध

पादपों और कीटों में दो प्रकार की स्पष्ट साझेदारी पायी जाती है। पहली दशा में बहुत से कीट पादपों का उपयोग भोजन स्रोत के रूप में करते हैं। कीटों के भोजन संबंधी इन क्रियाकलापों से पादपों को कोई लाभ नहीं होता है। अतः इस प्रकार की साझेदारी विरोधात्मक होती है। पादपों ने विकास की लंबी प्रक्रिया में कीटों से बचने के विभिन्न प्रक्रम अथवा उपाय विकसित कर लिए हैं। दूसरे प्रकार की साझेदारी में पुष्पीय पादप कीटों को परागण के लिए उत्साहित करते हैं और कीटों को इस क्रिया के बदले में भोजन के लिए मकरन्द और पराग मिलते हैं। इस प्रकार की साझेदारी दोनों के लिए लाभकारी है। कीट पादप संबंधी इन दोनों प्रतिक्रियाओं को निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है :

पादपभक्षी कीट

वे कीट जो पादपों को भोजन के रूप में प्रयोग में लाते हैं, पादपभक्षी कीट कहलाते हैं। पादपभक्षी कीटों के महत्वपूर्ण पक्ष को चार भागों में विभाजित कर अच्छी तरह समझा जा सकता है:

1. पादप परपोषी परिसर

2. कीटों से पादपों को होने वाली क्षति के प्रकार
3. कीट क्षति और फसलीय पादपों की पैदावार तथा उसकी गुणवत्ता के बीच संबंध
4. कीट तथा पादप रोग

1. पादप परपोषी परिसर (क्षेत्र)

पादपों का वह समुदाय जिसे एक विशेष कीट जाति भोजन के लिए उपयोग में लाती है, पादप परपोषी क्षेत्र कहलाता है। यह क्षेत्र छोटा अथवा बड़ा हो सकता है पर सभी पादप इसके अंतर्गत नहीं आते हैं, सदैव यहां कुछ सीमा तक पृथक्करण रहता है।

पादपभक्षी कीटों की तीन श्रेणियों को पहचाना गया है।

(क) एकाहारी कीट (Monophagous insects) : इस प्रकार के कीट पादपों की केवल एक जाति पर ही निर्भर रहते हैं। कीट स्वभाव की यह पराकाष्ठा बहुत दुर्लभ है। कुछ कीट जातियां ही वास्तव में एकाहारी कीट हैं। रेशम का कीट *(बोम्बिक्स मोरी)* एकाहारी कीटों का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह कीट अपने आहार के लिए पूर्णतया शहतूत पर ही निर्भर है। अन्य आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण एकाहारी कीट जातियां प्रायः पादपों के एक ऐसे समूह पर भरण करती हैं जो आपस में बहुत निकट से संबंधित होते हैं।

(ख) अल्पभक्षी कीट (Oligophagous insects) : इस प्रकार के कीट लाक्षणिक तौर पर पादपों के वानस्पतिक रूप से संबंधित एक समूह पर भरण करते हैं। ये पादप प्रायः एक कुल के होते हैं। पादपों के हानिकारक कीटों में यह एक सामान्य स्वभाव है। आलू का शलभ केवल आलू, तम्बाकू और कुछ अन्य सोलेनेसी कुल के पादपों को ही क्षतिग्रस्त करता है। इसी प्रकार डायमण्ड बैक (हीरक पृष्ठ) शलभ *(Plutella xylostella)* केवल क्रूसीफेरी कुल के पादपों तक ही सीमित है।

(ग) विविधभक्षी कीट (Polyphagous insects) : इस प्रकार के कीट अनेक प्रकार के पादपों पर भरण करते हैं। ये पादप विभिन्न कुलों के होते हैं। इस परिस्थिति के बाद भी इन कीटों में कुछ पादपों के प्रति वरीयता (preference) रहती है और कुछ पादप बिलकुल छोड़ दिए जाते हैं। टिड्डी (Locust) विविधभक्षी कीटों का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके अतिरिक्त फलीछेदक *(हीलियोथिस आर्मीजेरा)*, *एरण्ड शलभ (स्पोडोप्टेरा लिटूरा), आर्मीवर्म (मिथिमना सेपरेटा)* और सफेद लट (होलोट्रिकिया जातियां) ऐसे ही कीटों के उदाहरण हैं।

1.1 व्यावहारिक उपयोगिता

किसी नाशक (पीड़क) कीट जाति का पादप परपोषी परिसर क्या है, यदि परिभाषित किया जा सके तो उसका बहुत अधिक व्यावहारिक महत्व होगा। पहली दशा में इससे स्पष्ट होगा कि एक विशेष क्षेत्र में यदि एक किस्म के पादपों में कीट ग्रसन (infestation) उत्पन्न हो गया है तो उस क्षेत्र में कौन से अन्य फसलीय पादप इससे प्रभावित हो सकते हैं। इस संदर्भ में यह याद रहना चाहिए कि एक कीट के प्रति पादप ग्रहणशीलता की भिन्नताएं कृषि किस्मों के बीच भिन्नताओं तक बढ़ सकती हैं। इसके साथ ही पादप जातियों के बीच भी विभिन्नताएं हो सकती हैं।

दूसरी दशा में यह ज्ञान फसल चक्र के लिए उपयोग में लाई जा रही फसलों पर कीट विशेष का क्या व्यवहार होगा, स्पष्ट करेगा। कहीं ऐसा न हो कि फसल चक्र में दो फसलें एक के बाद एक ऐसी न लगा दी जाएं जो एक ही कीट विशेष से ग्रसित होती हों। इसके अतिरिक्त कीट केवल फसलीय किस्मों अथवा कृषि किस्मों पर ही आधारित नहीं होते हैं बल्कि वे उपयुक्त खरपतवारों को भी ग्रसित करते हैं। खरपतवार, हेज (hedge) तथा बोये न गये क्षेत्र कीट ग्रसन (infestation) के स्रोत होते हैं। पादप परपोषी परिसर का ज्ञान

जितना अधिक होगा उतना ही फसलों को प्रभावित करने वाले ग्रसन के स्रोतों से बचाने में सहायक होगा। इसके साथ ही यह ज्ञान विशेष नाशक कीटों के विरुद्ध कीट नियंत्रण की योजनाओं को बनाने में भी लाभकारी होगा।

1.2 कीटों द्वारा परपोषी पादपों के चयन की क्रियाविधि

कीट वैज्ञानिक, वर्षों से कीटों द्वारा परपोषी पादप का चयन कैसे किया जाता है, जानने के लिए प्रयत्नशील हैं। इस क्रियाविधि के लिए अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं। एक मतानुसार कीट उन पादपों को ढूंढ़ते तथा उपयोग करते हैं जिनसे उन्हें वे आवश्यक पोषक पदार्थ मिलते हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है। इसका अर्थ है कि विभिन्न पादप अलग-अलग पोषक मान वाले होते हैं, साथ ही कीटों की आवश्यकताएं भी अलग-अलग होती हैं। वे पादपों के पोषक मान का पता लगाने में सक्षम होते हैं और पादपों में अपनी आवश्यकतानुसार विभेदन (discrimination) कर लेते हैं। दूसरे मतानुसार सभी पादप सभी पादपभक्षी कीटों की वे सभी पोषण संबंधी आवश्यकताएं पूरी कर सकते हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है (जब तक वे उन पर भरण करते हैं) लेकिन विभेदन के लिए "द्वितीयक पादप पदार्थ" (secondary plant metabolites) आवश्यक होते हैं। ये पदार्थ आकर्षी (attractant), प्रतिकर्षी (repellent) अथवा भरण उद्दीपक (feeding stimulant) अथवा भरण अपमार्जक (feeding deterrent) की भांति कार्य करते हैं। अब यह स्पष्ट हो गया है कि दोनों ही सिद्धांत पूर्ण रूप से सही नहीं है, लेकिन दोनों में ही सत्यता के कुछ तत्व हैं।

कुछ कीटों में पादपों का चयन करने की क्रियाविधि को समझने में बहुत प्रगति हुई है जबकि दूसरे कीट किस प्रकार पादपों का चयन करते हैं पता नहीं है। अब तक उपलब्ध ज्ञान से स्पष्ट है कि पादपों

की रासायनिक प्रकृति पादपों के चयन प्रक्रम में कीटों को महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है।

पांदपों के वाष्पशील रासायनिक घटक कीटों को दूर से आकर्षित अथवा प्रतिकर्षित करते हैं और संपर्क अथवा स्पर्श हो जाने के बाद दूसरे रसायन विभेदन को प्रभावित करते हैं जो कि कीटों को भोजन अथवा अण्ड निक्षेपण के लिए उद्दीपित (प्रेरित) अथवा अपमार्जित (दूर भगाना) करते हैं। इन रासायनिक घटकों का संतुलन ही इस बात को निर्धारित करता है कि कीट द्वारा पादपों का चयन किया जाए अथवा नहीं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि पोषक कारक महत्वपूर्ण नहीं है। पादपों के पोषक तत्वों में भी विविधता होती है पर हर पादप हर कीट का परपोषी नहीं होता है। इसके लिए जरूरी है कि पादप कीट को आवश्यक पोषक पदार्थ प्रदान करे और उसमें हानिकारक पदार्थ न हो। पादपों की केवल रासायनिक संरचना ही पादपों के वरण को प्रभावित नहीं करती बल्कि भौतिक कारक जैसे पत्तियों की बनावट और चर्मलता भी कीटों द्वारा पादपों के चयन को प्रभावित करते हैं।

पादप परपोषी क्षेत्र के अध्ययन से कीटों के परपोषी पादपों और अन्य पादपों में भेद किया जा सकता है।

2. कीटों से पादपों को होने वाली क्षति के प्रकार

कीट अपना भोजन प्राप्त करने के लिए पादपों को क्षति पहुंचाते हैं। केवल सिकेडा कीट इसका अपवाद है जो अपने अण्डा देने की विधि से पादपों को क्षतिग्रस्त करता है। कीटों से पादपों को पहुंचने वाली क्षति के स्वरूप का निर्धारण प्रमुख रूप से कीटों के मुखांग और भोजन संबंधी व्यवहार से होता है। यही बरूथी, स्लग और घोंघों के लिए भी लागू होता है।

प्रमुख मुखांग उनके भोजन संबंधी व्यवहार, उनसे होने वाली क्षति का प्रकार और संबंधित हानिकारक कीट, सारणी-1 में दिए गए हैं। बहुधा पादपों के आदंश (काटने), चर्वक (चबाने) मुखांग वाले कीटों और वेधन/चूषण मुखांग वाले कीटों में स्पष्ट अंतर होता है। वेधन/चूषण मुखांग वाले कीट पादपों के रस को चूस लेते हैं। आदंश/चर्वक मुखांग वाले कीटों के भरण से पत्तियों, तनों, फलों अथवा पादपों के अन्य भागों में छेद दिखाई देते हैं। इस प्रकार के कीट से जो क्षति पहुंचती है वह प्रायः कीट-विशेष होती है अर्थात् किसी कीट विशेष से होने वाली क्षति के रूप में पहचानी जा सकती है। इसके विपरीत कीट जिनमें वेधन/चूषण मुखांग होते हैं हेमीप्टेरा वर्ग में आते हैं और केवल पादपों के रस पर भरण करते हैं। ये कीट पादपों के ऊतकों को पादपों से अलग करने में सक्षम नहीं होते हैं। लेकिन अपनी भरण प्रक्रिया में ये कीट पादपों में लार (saliva) डाल देते हैं। यह लार पाचन और कोशिका रस को ऊपर खीचने में सहायता करती है। अधिकतर लार पादपों में प्रकोप अथवा उत्तेजना पैदा कर देती है और विषैली होती है। इसके फलस्वरूप पादपों में बोनापन, मुड़ना अथवा पादपों के कुछ भागों का मुरझा जाना अथवा ऊतकक्षय (necrosis) स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार के भरण का प्रभाव काफी दूरगामी तथा भयंकर होता है। इस प्रकार का भरण करने वाले सभी कीट "मधु रस" (honey dew) छोड़ते हैं। यह पादपों से चूसा गया वह अधिक रस है जो बूँदों के रूप में कीट द्वारा आंत्र के पिछले भाग से पादपों की सतह पर छोड़ दिया जाता है। मधु रस में घुलनशील शर्करा की अधिक मात्रा होती है। इस पर काली फफूंद (ब्लैक सूटी मोल्ड) मोटी तह के रूप में जम जाती है जो पादपों को बहुत खराब स्वरूप प्रदान

सारणी-1 : प्रमुख कीट समूहों से होने वाली क्षति के स्वरूप

मुखांग का प्रकार	भरण व्यवहार	क्षति का स्वरूप	संबंधित कीट समूह
आदंश और चर्वक मुखांग	पादपों की पत्तियों, तनों, फूलों, फलों अथवा जड़ों के ठोस भाग को अलग कर देते हैं।	खायी हुई पत्तियों पर छेद अथवा खांचे दिखायी पड़ते हैं। कभी-कभी पूरी पत्तियां खा ली जाती हैं।	लेपीडोप्टेरा गण के अधिकांश लार्वे, कोलियोप्टेरा गण के कुछ लार्वे और वयस्क, सॉफ्लाई (हाइमेनोप्टेरा गण) के लार्वे, आर्थोप्टेरा गण
		पत्तियों की एक सतह को खाकर उन पर छेद छोड़ना और धारियां छोड़ना	लेपीडोप्टेरा गण के अनेक प्रारंभिक लार्वे, हीरक पृष्ठ शलभ के लार्वे
		भूमि की सतह पर तनों को बाहर से चबाकर काट देना	कटुआ कीट
		तनों, प्ररोहों और शाखाओं का अंदर से वेधन	वेधकों के लार्वे (लेपीडोप्टेरा गण) कुछ कोलियोप्टेरा गण के लार्वे जैसे लोंग होर्न वेधक

		बनते बीज का उपभोग	लेपीडोप्टेरा गण के कुछ लार्वे जैसे मटर का शलभ
		फल के अंदर सुरंग बनाना	लेपीडोप्टेरा गण के कुछ लार्वे जैसे कोडलिंग शलभ, प्लम फ्रूट शलभ
		कन्दों की सतह का उपयोग अथवा उनके अंदर सुरंग बनाना	कोलियोप्टेरा और लेपीडोप्टेरा गणों के कुछ लार्वे जैसे आलू का शलभ
वेधन और चूषण मुखांग	पादपों की कोशिकाओं के रस पर भरण करते हैं। कभी-कभी ये रस संवाहिकाओं तक भी पहुंच जाते हैं अपनी लार को पादप में छोड़ देते हैं जो पादप के लिए विषैली होती हैं। मधु रस छोड़ते हैं और	पादप कमजोर हो जाते हैं उनमें बोनापन, मुड़ना, कुछ भागों का मुरझा जाना तथा ऊतकक्षय स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। इसके साथ-साथ सूटी मोल्ड (काली फफूंद)	हेमीप्टेरा गण के कीट जो रोगवाहक का भी कार्य करते हैं।

	पादपों के भूमि के ऊपर के भागों पर प्राय: आक्रमण करते हैं।		
सतही वेधन और चूषण मुखांग	ये पादपों की सतही कोशिकाओं से रस निकालते हैं। पत्तियों और फूलों पर अधिक आक्रमण होता है।	पादपों की सतही कोशिकाओं से रस चूसते हैं। ग्रसित भागों पर सफेद धारियां या बड़े धब्बे बनते हैं। कभी-कभी ये भाग सफेद होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त होते है।	थाइसेनोप्टेरा गण के कीट और वरूथियां
रेतन मुखांग	पादपों के ऊतकों को कतर देते हैं। इस क्रिया में ऊतकों से निकलने वाले रस का अंतर्ग्रहण किया जाता है। प्राय: ग्रसित भागों को वेधकर सुरंग बनायी जाती है।	जड़ों तथा तनों में भोंड़े घाव मिलते हैं। पत्तियों की सतह के अंदर सुरंगे मिलती हैं। प्रमुख जड़ों तथा शल्क कंदो (बल्बों) में सुरंग मिलती है।	डिप्टेरा गण के लार्वे

करती है। इससे सजावटी पादपों की पत्तियां भद्दी दिखायी देती हैं और टमाटर जैसे फल काले से दिखाई देते हैं। इन्हें धोकर ही बाजार में बेचा जा सकता है।

पादपों से रस चूसने के लिए बहुत से वेधन/चूषण मुखांग वाले कीट अपनी शूकिकाओं को पादपों के ऊतकों में बहुत अंदर तक प्रविष्ट करा देते हैं जिससे रस का उद्ग्रहण (uptake) सरल हो जाता है। इस प्रक्रिया से बहुत से वायरस भी पादपों में प्रवेश कर जाते हैं अथवा उनका पादपों से कीट शरीर में रस के साथ उद्ग्रहण हो जाता है। कभी-कभी वायरस का यह आदान-प्रदान कीट द्वारा पहुंचाई गयी सीधी क्षति से अधिक भयंकर होता है। बैंगन, टमाटर, आलू, मिर्च आदि सब्जियां कीटों की अपेक्षा वाइरस से अधिक क्षतिग्रस्त होती हैं। वेधन और चूषण मुखांग वाले कीट वायरस के रोगवाहक (vector) का कार्य करते हैं।

दो अन्य प्रमुख मुखांगों वाले कीटों का भोजन संबंधी व्यवहार भी यहां स्पष्ट कर देना आवश्यक है जो कि ऊपर बताये गए दोनों प्रकारों से भिन्न है। ये हैं—सतही (superfecial) वेधन/चूषण मुखांग तथा रेतन (rasping) मुखांग।

थ्रिप्स कीट, जो ऑर्डर थाइसेनोप्टेरा के अंतर्गत आते हैं तथा पादपों पर भरण करने वाली वरूथियों (mites) में वेधन/चूषण मुखांग के समान मुखांग पाए जाते हैं। ये वास्तविक वेधन/चूषण मुखांगों का अपभृंश रूप हैं। इनमें शूकिकाएं ऑर्डर हेमीप्टेरा कीटों की शूकिकाओं से छोटी होती हैं। इस कारण थ्रिप्स और माइट के मुखांग पादपों की केवल सतही कोशिकाओं के रस को ही निकाल पाते हैं। इस रस के साथ-साथ कोशिकाओं का पर्णहरिम भी निकाल लिया जाता है। इस कारण पादपों की पत्तियों पर सफेद धारियां या बड़े धब्बे से दिखायी देते हैं और कभी-कभी

ऐसा लगता है कि पत्तियों को सफेद कर दिया गया है। बरूथी और थ्रिप्स अपने भरण के समय जो लार पादपों में छोड़ते हैं उससे कुछ पादपों में मुड़ाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है। इरियोफिड वरूथी के पादपों पर भरण से पादपों में स्पष्ट पिटिका (gall) बनती है। कुछ वरूथी और थ्रिप्स वाइरसों के वाहकों का कार्य भी करते हैं। इन जीवों के मुखांग पादपों में अधिक अंदर तक प्रवेश नहीं कर पाते हैं अतः रोगवाहक के रूप में ये हेमीप्टेरा ऑर्डर के अंतर्गत आने वाले कीटों से कम सक्षम होते हैं।

रेतन मुखांग ऑर्डर डिप्टेरा के अधिकतम कीटों के लार्वो में पाए जाते हैं। इन कीटों में मक्खियां विशेष होती हैं। इस प्रकार के मुखांगों में एक जोड़ी तेज मुड़े हुए हुक होते हैं जो मुंह से बाहर निकले होते हैं। वे पादपों के ऊतकों को कतर (shred) देते हैं। इस क्रिया से पादपों से निकलने वाले रस का अंतर्ग्रहण कर लिया जाता है। बहुत से लार्वे जो इस प्रकार भरण करते हैं पादपों में उन भागों में सुरंगें बनाते हैं जिन पर इनका आक्रमण होता है (सारणी-1)।

पादपभक्षी कीट जिस प्रकार पादपों की जातियों में भेद करते हैं उसी प्रकार वे पादपों के उन भागों के चयन में भी विशेष सतर्कता रखते हैं जिन पर वे भरण करते हैं। कीटों का यह गुण तथा उनके भोजन का ढंग पादपों में क्षति के लक्षण प्रगट करता है। ये लक्षण कीट विशेष होते हैं अर्थात् पादपों को होने वाली क्षति को देखकर यह पहचाना जा सकता है कि किस प्रकार के कीट का ग्रसन (infestation) है। मटर की ऐसी फली जिनमें दाने खाये हुए हों और बुरादे की तरह विष्टा मिले तो समझ लेना चाहिए कि यह फली शलभ का प्रकोप है। पादपों की जड़ों को कई प्रकार के कीट क्षति पहुंचाते हैं जिनमें चेफर भंग के भृंगक (grub), वायरवर्म, कटुआ शलभ की सूंडी प्रमुख हैं। इनका प्रकोप समय, पादपों के प्रकार और स्थान के अनुसार पाया जाता है। कीटों से

पादपों को होने वाली विभिन्न प्रकार की क्षतियों को सारणी-1 में स्पष्ट किया गया है।

3. कीट क्षति का फसलीय पादपों की पैदावार तथा उसकी गुणवत्ता से संबंध

किसान का संबंध अपनी फसल की पैदावार और उसकी गुणवत्ता से होता है। अतः कीटों से पैदावार को होने वाली क्षति का प्रभाव तथा फसल की गुणवत्ता में कमी दोनों ही उसके लिए महत्वपूर्ण होते हैं। यह ऐसा क्षेत्र है जिस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। कीट क्षति और फसल की पैदावार में परस्पर संबंध बहुत जटिल है जिसको अनेक घटक प्रभावित करते हैं जिनमें निम्नलिखित पांच प्रमुख हैं :

(क) क्षति का स्वरूप
(ख़) पादप के क्षतिग्रस्त भाग का पैदावार पर प्रभाव
(ग) क्षति की तीव्रता
(घ) पादपों की बढ़वार और क्षति का समय
(ङ) पादपों में कीट क्षति को सहने की शक्ति पर पर्यावरणीय अवस्थाओं का प्रभाव

(क) क्षति का स्वरूप

इस संबंध में पिछले अध्ययन से स्पष्ट हो गया है कि कीटों से पादपों को किस प्रकार क्षति होती है। कीटों द्वारा पादपों से ठोस ऊतक अलग कर दिए जाते हैं अथवा पादपों का रस चूस लिया जाता है। कीटों से पादपों को पहुंचने वाली यह क्षति कीटों के मुखांग के प्रकार पर निर्भर करती है। यहाँ कुछ विशेष उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया गया है।

(i) आदंश और चर्वक मुखांग वाले कीटों से होने वाली क्षति

कीट पादपों के बाहरी भागों को काट लेते हैं और फिर चबाकर निगल लेते हैं। इस प्रकार के कीटों में आदंश और चर्वक मुखांग होते हैं। इस प्रकार के कीट निम्न प्रकार से क्षति पहुंचाते हैं :

(i) ये कीट पादपों के बढ़ते हुए भागों को खाकर उनकी वृद्धि को कम कर देते हैं। अंगूरों की बेल का भृंग, *स्केलोडोन्टा स्ट्रीजीकोलिस* (*Scelodonta strigicollis*) इसी प्रकार की क्षति पहुंचाता है।

(ii) पादपों की पत्तियों का भक्षण करके ये कीट उन्हें पत्ती रहित कर देते हैं। इससे पादपों की कार्बन संश्लेषण क्षमता में कमी आती है क्योंकि पत्तियों का क्षेत्र कम हो जाता है। जिससे पादपों की वृद्धि में रूकावट आ जाती है। उदाहरण- अरंडी का सेमीलूपर, मूंगफली और अन्य फसलों की लाल रोमिल सूंडी, ज्वार, मक्का, धान की फौजीलट, आम और अरंडी की स्लग सूंडी आदि।

(iii) पत्तियों के किनारों, शीर्षों और कभी-कभी उन्हें खाते-खाते मध्य शिरा तक पहुंचने वाली कपास की भृंग, माइलोसीरस जातियां (*Myllocerus* spp.)। यह भूरी भृंग अब कपास के अतिरिक्त ज्वार, बाजरा, मक्का, बैंगन आदि फसलों को भी ऐसी ही क्षति पहुंचाती है।

(iv) पत्तियों में अपने भक्षण से छोटे-छोटे छिद्र बनाने वाले कीटों में फ्लिया भृंग प्रमुख हैं। यह कीट मूली और जूट की फसलों में इस प्रकार की क्षति पहुंचाता है। ज्वार के तना वेधक की सूंडियां भी पत्तियों की सतह पर छेद कर देती हैं जिन्हें "पिन होल" के रूप में जाना जाता है।

(v) पत्तियों की सतह के ऊतकों को खाना हीरक पृष्ठ शलभ (डायमंड बैक माथ) की सूंडियों की विशेषता है। इस प्रकार की क्षति पत्तागोभी और गोभी की सब्जियों में विशेष रूप से देखी जा सकती है। ऐसी ही क्षति *एपीलेक्ना* जातियों (*Epilachna spp.*) के भृंगक और भृंग बैंगन तथा तोरई को पहुंचाते हैं।

(vi) पत्तियों को मोड़कर अथवा लपेटकर उसके ऊतकों का भक्षण कपास के कीट, *साइलेप्टा डेरोगेटा* और अंगूर की बेलों में *सालेप्टा लूनेलिस* के द्वारा पहुंचायी गयी क्षति से देखा जा सकता है।

(vii) पत्तागोभी का सेमीलूपर, *ट्रीकोप्लूसिया नी* पत्तियों को खाते समय अनियमित आकृति के बड़े छिद्र बनाता है।

(viii) छाल की सूंडी, *इन्डरबेला टेट्राओनिस* मोरिंगा, करीपत्ता तथा रेन पेड़ों की छाल को खाती है तथा रेशमी जाले में बंद रहती है, सूंडी अपने द्वारा उत्पन्न बुरादे और विष्टा के बीच छिपी रहती है।

(ix) दक्षिण भारत के तिरूनवेली क्षेत्र में कपास को काली मिट्टी में बरानी फसल के रूप में उगाया जाता है। यहां सतही भृंग, *ऐटेक्टोगेस्टर फिनिटिमस* अपने आक्रमण से अंकुरण के समय कपास के नवोद्भिदों के मुलायम प्ररोहों को काट देती है।

(x) चर्वक कीट पुष्पों की कलिकाओं और पुष्पों पर भक्षण कर बीज उत्पादन में भारी कमी ला देते हैं। अरहर का कीट पुष्पों की कलियों और पुष्पों पर जाला बुन देता है और उनका भक्षण करता है। फफोला भृंग, अरहर और सेसबानियां की कलियों तथा सीटोनिड भृंग, गुलाब की कलियों तथा पंखुडियों को खाती हैं।

(xi) धान का ग्रासहोपर बालियों को चबा देता है अथवा काट देता है।

(xii) फलीछेदक, *हिलियोथिस* कीट तथा वेववर्म, *क्रिप्टोब्लेबिस नीडियेला* की सूंडियां ज्वार की बालियों के दानों को खा जाती हैं तथा बालियां बुरादे और विष्ठा से भर जाती हैं।

(ii) वेधन और चूषण मुखांग वाले कीटों से होने वाली क्षति

दूसरे प्रकार के कीट वे होते हैं जो पादपों के ऊतकों को बेधकर उनकी कोशिकाओं से रस चूसते हैं। ये निम्नलिखित प्रकार से क्षति पहुंचाते हैं :

(i) पादपों में एफिड के कारण हरित रोग (क्लोरोसिस) उत्पन्न हो जाता है। बहुत से एफिड पादपों की पत्तियों को शिकनदार अथवा कुंचित कर देते हैं। इससे पादपों के प्रभावित भाग मुरझा जाते हैं अथवा सूख जाते हैं। कपास का एफिड, *एफिस गोसीपी* और मूंगफली का एफिड, *एफिस क्रेक्सीवोरा* पादपों में इसी प्रकार की क्षति पहुंचाते हैं।

(ii) मिरिड बग और टिनजिड बग पत्तियों में मध्यशिरा के पास छोटे-छोटे पर्णाहरिम रहित भाग उत्पन्न कर देते हैं। जूट और ज्वार में मिरिड बग इसी प्रकार की क्षति पहुंचाता है।

(iii) अरंड की सफेद मक्खी और नारियल का शल्क कीट पत्तियों पर हल्के पीले रंग के धब्बे पैदा कर देते हैं।

(iv) थ्रिप्स कीट अपने प्रकोप से पत्तियों की बाह्य त्वचा के नीचे की कोशिकाओं के पदार्थ को चूस लेते हैं जिससे पत्तियों की सतह सफेद अथवा चांदी के समान हो जाती है। इस प्रकार का प्रकोप कपास, प्याज और मूंगफली आदि में *थ्रिप्स टबेकी* पहुंचाता है।

(v) पादपों पर पत्ती का फुदका "हापर वर्न" अथवा भूरे रंग की धारियां पैदा कर देता है। इसका उदाहरण कपास और धान पर पत्ती के फुदके का प्रकोप है।

(vi) पत्तियों का मुड़ जाना अथवा शीर्षस्थ प्ररोहों का एक साथ हो जाना मिली बग के प्रकोप को *ग्निरीसी मेकूलेटा* के मुलायम तनों पर प्रदर्शित करता है। सफेद मक्खी, *विमेसिया*

टबेकी के *एकीरेन्थीस एस्पेरा* पर भरण से प्रकोपित भाग में ऊतकों की तेजी से वृद्धि होती है।

(vii) सेनजोस स्केल कीट के प्रकोप के कारण सेब के फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं। गुलाबों में स्केल कीट के प्रकोप से फूल शीघ्र झड़ जाते हैं।

(viii) एफिड तथा पत्तियों का फुदका पत्तियों से रस चूसते समय मधुस्राव छोड़ते हैं। जिसके ऊपर अनेक फफूंदियों का प्रकोप हो जाता है।

(iii) वेधक अथवा आंतरिक क्षति पहुंचाने वाले कीट

आंतरिक क्षति पहुंचाने वाले कीट प्रायः पादपों के अंदर ऊतकों को क्षति पहुँचाते हैं। इनकी सूंडियां अथवा क्षति पहुंचाने वाली अवस्थाएं पादपों के अंदर ही मिलती हैं। कभी-कभी कीट अपने अंडे पादपों के ऊतकों के भीतर देते हैं। इन अंडों से निकलने वाले लार्वे/सूंडियां ऊतकों को खाती हुई अंदर जाकर वृद्धि करती हैं।

पादपों को भीतर ही भीतर क्षति पहुंचाने वाले कीटों में वेधक कीट प्रमुख हैं। इन कीटों की सूंडियां पत्तियों के चक्र अथवा पादपों के तनों अथवा पिथ को भीतर ही भीतर खाकर सुरंगे बना देती हैं। इस प्रकार के वेधक फलों, फलियों, कलियों, प्ररोहों, तनों आदि को प्रकोपित करते हैं। कपास के बॉल वर्म, *एरियास* जातियां, *हीलियोथिस आर्मीजेरा* और पिंकवोलवर्म, *पेक्टीनोफोरा गोसीपिएला* कपास के गुल्लों अथवा टिन्डों को बेध देते हैं। एरियास जातियों की सूंडियां भिंडी को वेधकर अंदर घुस जाती हैं। धान, मक्का और ज्वार में तनावेधक की *सूंडियां* तनों में घुस जाती हैं और पादपों के मुख्य तनों के ऊतकों को खाकर "मृत केंद्र" अथवा "डेड हर्ट" बना देती हैं। नारियल की भृंग, *ओरिक्टस*

रीनोसीरस नारियल के रेशों वाले भाग में घुस जाती हैं विशेषकर उस समय जब वे फल पर अपरिपक्व अवस्था में होते हैं।

(ख) पादप के क्षतिग्रस्त भाग का पैदावार पर प्रभाव

विभिन्न कीट पादपों के भिन्न-भिन्न भागों को क्षतिग्रस्त करते हैं। कीट क्षति का प्रभाव इस तथ्य पर निर्भर करता है कि किस भाग को उपभोग में लाया जाता है। इस संदर्भ में पादप के विभिन्न भागों की उपयोगिता अलग-अलग होती है। कुछ उदाहरणों में पादपों की पत्तियां (पालक, सलाद आदि), जड़ें, (मूली, गाजर, शलगम आदि), कन्द (आलू, रतालू आदि), तने (गन्ना, ज्वार आदि), फल (टमाटर, सेब आदि), बीज (मटर, चना, गेहूं, धान, मक्का, बाजरा आदि) और तने बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इनके क्षतिग्रस्त होने पर सीधी हानि होती है।

इस प्रकार की क्षति विभिन्न पादपों में भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव पैदावार पर डालती है जो इस पर निर्भर करता है कि कौन-सा भाग काटा अथवा तोड़ा जा रहा है। इसको दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला है पैदावार देने वाले अंग और दूसरा है पैदावार न देने वाले अंग। पैदावार देने वाले अंगों को यदि कीट से क्षति होती है तो इसे "प्रत्यक्ष क्षति" कहते हैं। इससे पैदावार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। दूसरे प्रकार के अंगों को क्षति पहुंचने से पैदावार की सीधी हानि नहीं होती है। इस प्रकार की हानि "अप्रत्यक्ष क्षति" कहलाती है। इससे स्पष्ट है कि पादप प्रायः अप्रत्यक्ष क्षति को अधिक परिमाण में सहन करने में सक्षम होते हैं जबकि प्रत्यक्ष हानि के समय ऐसा नहीं होता है।

उपरोक्त विवरण फसलीय पादपों पर लागू होता है जहां पादपों के कुछ विशेष भागों की कटाई की जाती है जिसका सीधा संबंध पैदावार अथवा उपज से होता है। इसके अंतर्गत वे सभी

फसलीय अथवा कृष्ट पादप (cultivated) आते हैं जिनसे मनुष्य भोजन, रेशा और अन्य महत्वपूर्ण आवश्यक पदार्थ प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त पादप सजावट अथवा भूसुंदर्शनीकरण (landscaping) अथवा फूलों की फसल अथवा गमलों के लिए उगाये जाते हैं। इन प्रकरणों में उपज को आसानी से निश्चित नहीं किया जा सकता है क्योंकि यहां पादपों के सभी भाग जो जमीन के ऊपर होते हैं उपज में अंशदान करते हैं। इस प्रकार के पादपों पर नाशक कीट से होने वाली क्षति को उपज की दृष्टि से न देखकर सौंदर्य के संदर्भ में देखा जाएगा अर्थात् पादपों की सुंदरता अथवा गुणवत्ता अथवा सुवासिता अथवा ओज में तो कमी नहीं आयी है। इस प्रकार सजावट के लिए लगाए जाने वाले पादपों के प्रकरण में उपज देने वाले अथवा उपज न देने वाले अंगों का विशेष महत्व नहीं होता है।

फलों तथा अन्य उत्पादों की गुणवत्ता बाजार में मिलने वाले मूल्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसके लिए कीट से होने वाली क्षति का प्रभाव भी ध्यान में रखना होगा जिससे अच्छी उपज मिले। कुछ कीटों के प्रभाव से उपज में तो कमी नहीं आती है लेकिन उसकी गुणवत्ता कम हो जाती है जिससे बाजार से मिलने वाले मूल्य में भारी कमी आ जाती है। कीटों द्वारा अधिक क्षति से कभी-कभी उपज उपज बेचने लायक नहीं रह जाती है। गोभी पर हीरक पृष्ठ (डायमण्ड बैक) शलभ का आक्रमण गोभी की फसल को लगभग नष्ट कर देता है। इसी प्रकार सरसों के एफिड का आक्रमण सरसों की पैदावार में भारी कमी ला देता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां कीटों के प्रकोप से उपज में बहुत कमी आती है साथ ही उसकी गुणवत्ता बहुत कम हो जाती है।

(ग) क्षति की तीव्रता

कीटों से पादपों को होने वाली क्षति की तीव्रता कितनी है यह बहुत कुछ कीट की संख्या के घनत्व पर निर्भर करता है। जितनी अधिक कीट संख्या प्रति पादप होगी उतनी अधिक क्षति की तीव्रता होगी। इस पर कीट की अवस्था का भी प्रभाव पड़ता है। बड़े लार्वे छोटे लार्वों की अपेक्षा अधिक तेजी से अधिक खाते हैं जबकि वयस्क कुछ भी नहीं खाते हैं। इस परिस्थिति को देखते हुए यह सोचना ठीक होगा कि क्षति की तीव्रता को नाशक कीट के घनत्व के ऊपर महत्व दिया जाए। कभी-कभी दोनों में बहुत अंतर होता है।

प्रायः क्षति की तीव्रता जब अधिक होती है तो पादप की उपज में कमी आती है पर अंतिम परिणाम इस पर निर्भर करता है कि उपज देने वाले भागों को क्षति पहुंची है अथवा उपजं न देने वाले भागों को क्षति पहुंची है। पादपों के उपज न देने वाले भागों को जब क्षति पहुंचती है तो पादप उन भागों में अधिक ऊतक होने के कारण उसे सह जाते हैं अथवा अतिरिक्त वृद्धि द्वारा क्षतिग्रस्त भागों को दुबारा बना लेते हैं। सामान्यतः निम्न स्तर की अप्रत्यक्ष क्षति से पादपों से मिलने वाली उपज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिए यदि उपज के विरुद्ध नाशक कीट से बढ़ती हुई अप्रत्यक्ष क्षति के बीच ग्राफ खींचा जाए तो पहले कुछ दूरी तक एक सपाट रेखा मिलेगी फिर वह नीचे गिरना शुरू हो जाऐगी। सपाट रेखा से स्पष्ट है कि पादप इस स्तर तक कीटों से होने वाली क्षति को वहन करने में सक्षम हैं पर इसके बाद बढ़ती हुई क्षति से बचाव करने में वह सक्षम नहीं होगा। यही वह बिंदु है जहां ग्राफ की रेखा नीचे की ओर गिरने लगेगी। इस स्थिति को "क्षति की सीमा रेखा" (damage threshold) कहते हैं तथा यह

एक बहुत महत्वपूर्ण संकल्पना है। इसके नीचे की नाशक कीट संख्याओं का उपज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है पर इसके ऊपर होती हैं तो उपज तेजी से कम होने लगती है। "क्षति की सीमा रेखा" के ऊपर जितनी अधिक क्षति होती जाएगी उतनी ही उपज घटती जाएगी पर कभी भी उपज में 100 प्रतिशत की कमी नहीं होती है अर्थात् बढ़ती हुई क्षति के समय एक स्थान वह आएगा जब क्षति के कारण नीचे गिरने वाली रेखा एक सतह के समानान्तर मुड़ जायेगी। इसके पीछे कारण क्षति के स्थान पर बढ़ी हुई नाशक कीट संख्या का आपस में एक-दूसरे के प्रति हस्तक्षेप हो सकता है जिससे उनकी उपस्थिति का पूर्ण प्रभाव उपज पर नहीं पड़ता है। इसी के समान एक स्थिति ऐसी भी होती है जब उपज न देने वाले भागों को होने वाली निम्न स्तर की अप्रत्यक्ष क्षति उपज को बढ़ा देती है जो नाशक कीट की अनुपस्थिति में इतनी बढ़ी नहीं होती है। आलू की पत्तियों को ग्रसित करने वाले कीटों के प्रकरण में ऐसी स्थिति दिखाई देती है। इसके विपरीत एक दूसरे प्रकार का संबंध क्षति और उपज के बीच उन कीटों में दिखाई देता है जो उपज देने वाले भागों को सीधे क्षति पहुंचाते हैं। इन कीटों से होने वाली सीधी क्षति के कारण "क्षति की सीमा रेखा" बहुत नीचे (कभी-कभी शून्य) होती है जिससे उपज में सीधी कमी होती है। यदि कीट संख्या अधिक होती है तो उपज बिलकुल नहीं मिलती है। कोडलिंग शलभ इसी प्रकार का एक कीट है जिसकी संख्या को यदि नियंत्रित न किया जाए तो बाजार में भेजी जाने वाली फसल पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

(घ) पादपों की बढ़वार और क्षति का समय

नाशक कीट द्वारा उत्पन्न की जाने वाली क्षति का प्रभाव पादपों पर वृद्धि की अवस्था के अनुसार पड़ता है। प्रायः पादप

अपने जीवन काल के प्रारंभ में पहुंचने वाली क्षति से अधिक प्रभावित होते हैं। पादपों को आरंभ में होने वाली क्षति को पूरा करने के लिए लंबा समय मिल जाता है।

अधिकतम पादपों के वृद्धि काल में चार मुख्य अवस्थाएं पहचानी गई हैं जो क्षति की ग्रहणशीलता में भेद उपस्थित करती है।

(i) नवोद्भिद् : पौध अथवा नवोद्भिद् कीट क्षति के प्रति अधिक ग्रहणशील होते हैं। आदंश/चर्वण मुखांग वाले अथवा वेधन/चूषण मुखांग वाले कीटों के हल्के से आक्रमण से इन पादपों की मृत्यु हो सकती है। इसी प्रकार नव रोपित पादप भी कीट क्षति के प्रति ग्रहणशील होते हैं पर इनमें नवोद्भिदों की अपेक्षा बड़े होने के कारण अधिक सहनशीलता होती है। कायिक जनन वाले पादप जैसे आलू इस संवेदनशील अवस्था से बच जाते हैं।

अनेक फसलों में नवोद्भिद् अवस्था में नष्ट हुए कुछ पादपों का उपज पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है लेकिन यदि ऐसे नष्ट होने वाले पादपों की संख्या का प्रतिशत अधिक हो तो पैदावार प्रभावित होती है। इसके पीछे विशेष कारण फसलों का प्रायः घना बोया जाना है जिससे पादपों को पर्याप्त जगह नहीं मिलती है जिससे वे समूची उपज नहीं दे पाते हैं। ऐसे में कुछ पादपों की हानि से बचे हुए पादप उपज के समय उनकी कमी को अधिक पैदावार देकर पूरा कर देते हैं। इस प्रकार के उदाहरण चुकंदर, ज्वार और बाजरे की फसलों में आमतौर पर मिलते हैं जहां नवोद्भिदों के एक निश्चित सीमा तक नष्ट होने पर पैदावार में कोई कमी नहीं आती है।

(ii) किशोर पादप : जब एक नवोद्भिद पूर्णतया जम जाता है तो एक ऐसी दशा में प्रवेश करता है जो तेजी से ओजपूर्ण वृद्धि करती है। ये किशोर पादप अपने तेजी से वृद्धि करने के गुण के

कारण नाशक कीट से होने वाली क्षति को सह जाते हैं यदि यह क्षति विशेष भागों को नहीं हुई है जिनको पुनः नहीं बनाया जा सकता है।

(iii) उपज देने वाले अंगों के बनने की प्रक्रिया : उपज देने वाले अंगों के बनने के समय पादपों की ग्रहणशीलता बढ़ जाती है। प्रायः प्रत्यक्ष क्षति पहुंचाने वाले नाशक कीटों से उपज देने वाले अंगों को हुई क्षति से पादप सीधे प्रभावित होते हैं और उपज में कमी आती है। बहुत से पादपों में उपज देने वाले अंगों का बनना उनके वृद्धि काल में केवल एक बार ही होता है। यदि ये नाशक कीटों द्वारा नष्ट कर दिए जाएं तो इन्हें पादप दुबारा नहीं बना सकता है।

(iv) कटाई के लिए तैयार परिपक्व पादप : पादपों के पकने पर फसल उपज के लिए तैयार हो जाती है। ऐसे में यदि उपज देने वाले भाग को सीधे क्षति पहुँचती है तो उपज प्रभावित होती है अन्यथा अन्य भागों को पहुंचने वाली क्षति से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी प्रकार आलू बन जाने की प्रक्रिया पूरी होने पर पत्तियों को पहुंचने वाली क्षति का कोई सीधा प्रभाव नहीं होता है। यदि वायरवर्म आलूओं को क्षति पहुंचाते हैं तो वह महत्वपूर्ण है क्योंकि उपज प्रभावित होती है। कभी-कभी पादपों के परिपक्व होने पर उपज देने वाले भाग कीटों को आकर्षित नहीं करते हैं। जैसे धान की फसल के पकने पर बालियों के दाने कठोर तथा कम नमी वाले हो जाते हैं जिससे खड़ी फसल पर कीट उनकी ओर कम आकर्षित होते हैं।

(ङ) पादपों में कीट क्षति को सहने की शक्ति पर पर्यावरणीय अवस्थाओं का प्रभाव

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि वे पादप जो अच्छी तरह विकसित नहीं हो रहे हैं अथवा जिनमें पोषकों की कमी दिखाई

देती है नाशक कीटों से अधिक ग्रसित होते हैं उन पादपों की अपेक्षा जो इस प्रकार के अभाव से ग्रस्त नहीं होते हैं। रस चूसने वाले कुछ कीटों और कुछ वरूथियों को छोड़कर इस धारणा को मान्यता प्रदान करने वाले उदाहरण बहुत कम है। हां, यह सत्य है कि पोषक तत्वों तथा नमी के अभाव से ग्रस्त पादपों में नाशक कीट के प्रति कम सहनशीलता देखी गई है और उनमें क्षतिपूर्ति करने का अभाव होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि फसलीय पादपों को पर्याप्त नमी और पोषक तत्व प्राप्त हों जिससे वे अधिकतम उपज देने में सक्षम हों और कीट क्षति के प्रभाव को कम कर सकें।

पादप प्रतिरोध कीटों से पादपों को होने वाली क्षति के विभिन्न स्वरूपों को दर्शाता है। पादप प्रतिरोध अधिकतर कृषि जातियों की भिन्नताओं से संबंधित होता है। अतः इसे कृषि जाति जनित नियंत्रण भी कहते हैं। वे पादप जो नाशक कीट के सामान्य पोषक परिसर में नहीं आते हैं, प्रतिरोधी पादप कहलाते हैं। ऐसे पादपों को नाशक कीट के नियंत्रण के लिए उपयोग में लाते हैं। पादप प्रतिरोध कार्यक्रम में विभिन्न फसलों की किस्मों को कीटों से पहुंचने वाली क्षति के आधार पर एक-दूसरे से अलग किया जाता है।

4. कीट तथा पादप रोग

पादप रोग, रूग्ण स्वास्थ्य की वह अवस्था है जिसमें पादपों की वृद्धि में रूकावट आती है अथवा उनकी मृत्यु हो सकती है। यह स्थिति प्रायः उन विशेष कीटों के कारण होती है जो पादप कोशिकाओं के रस को चूसते हैं जिससे पादपों में बोनापन और विकृतियां आ जाती हैं। अधिकतर पादप रोग सूक्ष्मजीवियों जैसे कंवक, बैक्टीरिया और विषाणुओं (वायरस) से फैलते हैं। इन

रोगों के प्रसार में कीटों की भूमिका हो भी सकती है अथवा नहीं भी हो सकती है। कीट बहुत से रोगों के रोगवाहक के रूप में पहचाने गए हैं। कुछ पादप विषाणुओं जैसे यलो मौजेक, यलो डार्फ, मटर की पत्ती के वायरस आदि का प्रसार और संक्रमण कीटों द्वारा ही होता है। ऐसे कीट सूक्ष्मजीवियों के रोगवाहक (बैक्टर) कहलाते हैं। यदि इन कीटों का नियंत्रण कर लिया जाए तो पादप इनसे फैलने वाले रोगों से बच जाएंगे।

सूक्ष्मजीवी पादप रोगाणुओं और कीटों का पारस्परिक संबंध संयोगिक और आकस्मिक से लेकर पूर्ण अनिवार्य हो सकता है। इस संबंध की तीन प्रमुख श्रेणियां हैं :

(i) आकस्मिक संबंध : अधिकतर कीटों का शरीर रोमों और कंटकों से भरा होता है जो कवकों के बीजाणुओं और बैक्टीरिया से संसर्गित अथवा दूषित हो जाते हैं। कीट अपनी क्रियाशीलता के कारण इस संक्रमण को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त कीटों की भरण क्रिया से पादपों में घाव हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप सूक्ष्मजीवियों का पादप में प्रवेश सहज हो जाता है। यह उन सूक्ष्मजीवियों के लिए विशेष है जो पादप के बाहर सतह पर पहले से ही उपस्थित होते हैं अथवा कीटों द्वारा वहाँ पहुंचते हैं। पादप प्रतिरोध के कारण सभी घाव वायरस संक्रमण का मार्ग नहीं बनते हैं। पकते हुए फलों को कीट क्षति से संक्रमण की अधिक संभावना रहती है। यह संबंध आकस्मिक होता है। इस संबंध में कीटों को कोई लाभ नहीं होता है।

(ii) नियमित सहजीवी संबंध : इस प्रकार के संबंध में कुछ सूक्ष्मजीव, विशेष कीट जाति पर नियमित रूप से निर्भर होते हैं। कीट इन सूक्ष्मजीवियों के प्रसार में सहायक होता है साथ ही उन्हें अपने में वे परिस्थितियां प्रदान करता है जिससे उनका विकास हो

सके। इस संबंध का लाभ कीटों को भी मिलता है क्योंकि कीट इन सूक्ष्मजीवियों को भोजन के रूप में उपयोग में लाता है। इसका उदाहरण वे छाल की भृंग हैं जो कवकों के साथ सहजीवी होती हैं। ये कवक प्रायः पादपों के मुख्य रोगाणु होते हैं। इस प्रकार के नियमित संबंध वाले जीव स्वतंत्र रूप से जीवित नहीं रह पाते हैं इसलिए साथ-साथ मिलते हैं।

(iii) आंतरिक अनिवार्य संबंध : इस प्रकार के संबंध में सूक्ष्मजीव एक पादप से दूसरे पादप तक अपने प्रसार के लिए पूर्णतया कीट पर निर्भर होता है। अधिकतर पादप वायरस ऐसे ही उदाहरण हैं। इस प्रकार के संबंध में यह कहना कठिन है कि कीटों को क्या लाभ होता है। कीट पर वायरसों का कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता है। हेमीप्टेरा ग्रुप के लगभग सभी कीट इस प्रकार के संबंध में संलग्न हैं। एफिड, फुदका (लीफहोपर), थ्रिप्स की कुछ जातियां और भृंग भी इस प्रकार के संबंध को प्रदर्शित करते हैं। कुछ वरूथियां भी पादप वायरसों को फैलाते पायी गयी हैं।

दो मुख्य कीट/पादप वायरस संबंध एफिड में पहचाने गए हैं। एफिड शीतोष्ण जलवायु के अंतर्गत मुख्य रोगवाहक कीट है। एफिड के दो मुख्य संबंध निम्नलिखित हैं :

(क) अस्थाई (non-persistent) **अथवा शूकिका-जनित वायरस/कीट संबंध** : इस संबंध में कीटों के मुखांग वायरस संक्रमित पादपों पर भरण से संदूषित हो जाते हैं और वायरस के संक्रमण का प्रसार शीघ्र ही कीट द्वारा अस्वस्थ पादप से स्वस्थ पादप पर जाकर भरण करने से हो जाता है। यह वायरस का यांत्रिक संप्रेषण है। यहां कीट वायरस को एक मिनट के अंतराल में ही

पादप पर भरण करते समय प्राप्त कर लेता है पर वह लंबे समय तक संक्रामक नहीं रहता है।

(ख) स्थाई (persistent) **अथवा परिसंचारी वायरस/कीट संबंध**: इस संबंध में कीट पादप पर कई मिनटों अथवा घंटों भरण करने के बाद ही स्थाई वायरस से संक्रमित हो पाता है तथा वायरस का संक्रमण लंबे समय के अंतराल (उष्मायन अवधि) के बाद ही होता है। रोगवाहक कीट जब एक बार वायरस से संक्रमित हो जाता है तो वह वायरस को लंबे समय तक फैलाता अथवा संप्रेषित करता रहता है। कुछ कीटों में तो जीवन-पर्यंत यह क्रिया चलती है। स्थाई वायरस कीट के परिसंचारी तंत्र में पहुंच जाते हैं (इसीलिए इन्हें परिसंचारी वायरस भी कहते हैं) और वहां से अंत में लार ग्रंथियों में पहुंचते हैं। ऐसा कीट जब पादप पर भरण करता है तो वह लार के साथ वायरस को भी उसमें डाल देता है। कुछ उदाहरणों में वायरस का संवर्धन एफिड के शरीर में होता है। दोनों प्रकार के कीट वायरस संबंधों के मुख्य लक्षणों को सारणी-2 में बताया गया है।

सारणी-2: प्रमुख कीट/वायरस संबंध और उनके लक्षण

प्रकार	लक्षण
1. अस्थाई. (शूकिका-जनित) वायरस	कुछ ही समय में अधिग्रहण (पादपों पर सेकिण्डों अथवा मिनट भर में भरण से वायरस की प्राप्ति)। कुछ काल तक ही वारयस से संक्रामक होना (कुछ मिनटों अथवा घंटों तक)। सर्वांगी कीटनाशियों से नियंत्रण न होना, उदाहरण-पोटेटो वायरस वाई,

		आलू और आडू का एफिड (*माइजस परसिकी*)।
2.	स्थाई (परिसंचारी) वायरस	धीमा अधिग्रहण (मिनटों अथवा घंटों भरण के बाद)। लंबे समय तक संक्रामक बने रहना (दिनों से लेकर हफ्तों तक)। शीघ्र संप्रेषित न होना (उष्मायन अवधि की आवश्यकता)। सर्वांगी कीटनाशियों से नियंत्रण होना, उदाहरण-जौ का यलो डार्फ वायरस, बर्डचेरी एफिड।

अतिविशिष्ट वायरसों को विशिष्ट रोगवाहक कीटों की आवश्यकता होती है लेकिन एक वायरस अनेक रोगवाहक कीटों द्वारा फैल अथवा संप्रेषित हो सकता है। इसके अतिरिक्त रोगवाहक की एक किस्म अनेक प्रकार के वायरसों को फैलाती है।

कीट जनित पादप वायरसों का फैलाव विशेष रोगवाहक कीटों की अनुपस्थिति में नहीं हो पाता है। इसलिए यदि इन रोगवाहकों का सफल नियंत्रण किया जाए तो वायरसों की प्रभावी रोकथाम हो सकती है। एफिडों के संदर्भ में ऐसे समय में अथवा क्षेत्रों में पादपों को बोया जाए जब एफिड की क्रियाशीलता कम हो अथवा एफिड प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग किया जाए अथवा सर्वांगी कीटनाशियों का उपयोग कर एफिड की संख्या कम की जाए।

परागणकर्ता कीट

पादप कीट संबंधों का एक उदाहरण परागणकर्ता कीट भी हैं जो पराग के स्थानांतरण में सहायक होते हैं। अधिकतर आवृतबीजी पादपों में परागण कीटों द्वारा ही होता है। संसेचन के लिए परागण बहुत महत्वपूर्ण है। फसलीय पादपों से सामान्य उपज प्राप्त करने के लिए प्रभावी परागण आवश्यक है। पादपों में पुष्प के नर (पराग कोष) से मादा भाग के वर्तिकाग्र तक पराग कणों का पहुंचना परागण है। जिन पादपों का प्रवर्धन बीजों द्वारा होता है उनमें परागण अनिवार्य है। कुछ पादपों में "स्वपरागण" होता है। इसके अंतर्गत एक ही पुष्प के पराग कणों का उसी पुष्प के वर्तिकाग्र पर पहुंचना आता है। कुछ पादपों जैसे मटर में इस क्रिया से समुचित बीज मिलता है पर अधिकतर फसलों में इससे कम उपज मिलती है। इसके विपरीत "परपरागण" (पराग कणों का एक पुष्प से उसी किस्म के दूसरे पुष्प पर पहुंचना) से अच्छी उपज और उत्तम किस्म का बीज मिलता है।

परपरागण में कीटों की विशेष भूमिका होती है। मधुमक्खियां परागणकर्ताओं का प्रमुख समूह हैं और उपयोगिता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त बहुत-सी तितलियां, शलभ, कुछ मक्खियां और भृंग भी परागण में सहायता देते हैं। मधुमक्खियां अपने निम्नलिखित गुणों के कारण विशेष हैं :

(अ) मधुमक्खियों का रोमयुक्त शरीर पराग को सरलता से ग्रहण कर लेता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है।

(ब) मधुमक्खियां निरंतर एक समय में एक विशेष जाति के पुष्पों पर भ्रमण करती हैं।

(स) मधुमक्खियों द्वारा परागित होने वाले पुष्पों का परिसर बड़ा होता है लेकिन वे एक समय में एक प्रकार के ही पुष्पों पर जाती हैं।

इस प्रकार कीट पादप संबंध एक विशिष्ट संबंध है और पादप प्रतिरोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। विभिन्न फसलों अथवा बागानों में विभिन्न किस्मों का कीट क्षति के साथ तुलनात्मक अध्ययन उनमें पादप प्रतिरोध को स्पष्ट करेगा।

अध्याय - 3

पादपभक्षी कीट द्वारा भोजन ढूंढ़ना

पादप से कीट का संबंध जानने के लिए परपोषी-पादप क्या है? तथा इसकी ओर कीट कैसे आकर्षित होता है, जानना आवश्यक है। परपोषी-पादप वह माध्यम है जो कीट को पोषण, आश्रय तथा अण्डा देने का स्थान प्रदान करता है। पादपों का ऐसा समूह जिससे कोई कीट पोषणज रूप से संबंधित होता है, उस कीट का परपोषी परिसर कहलाता है। एमलेन (1973) के अनुसार वे कीट जातियां जो विभिन्न आवासों में सफलतापूर्वक अपने को अनुकूलित कर स्थापित कर लेती हैं अथवा विभिन्न प्रकार के खाद्यों पर भरण करती हैं, "अधिस्थितिशील" (eurytopic) अथवा "विविधाहारी" (euryphagic) कहलाती हैं।

थोरस्टेनशन (1953) के अनुसार कीट-पादप पारस्परिक क्रियाओं के पीछे निहित रासायनिक अथवा शरीरक्रियात्मक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप कीट में भोजन (भरण) संबंधी एकाहारी, अल्पभक्षी और विविधभक्षी स्थितियां उत्पन्न होती हैं।

डीथियर (1954) के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभ में सभी पादपभक्षी विविध भक्षी थे और आवास में उपस्थित विभिन्न प्रकार के पादपों पर भरण करते थे। समयकाल में कुछ विशेष

पादपों का विकास हुआ जिनमें ऐसे "द्वितीयक उपापचयज" (सेकिन्डरी मेटाबोलाइट) अथवा "विषम यौगिक" (odd compounds) उत्पन्न हुए जिन्होंने कीटों के भरण (भोजन) संबंधी व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। इस कारण कीटों ने ऐसे पादपों का परिहार (छोड़ना) करना आरंभ कर दिया। इन कीटों में से कुछ कीटों ने अपने को इन विषम यौगिकों के अनुकूल बना लिया और विषम यौगिकों के कारण उत्पन्न हुए प्रतिरोध को समाप्त कर दिया। ये पादप इस प्रकार केवल इन विशेष कीटों के लिए ही भोजन के रूप में प्रयुक्त होने लगे। साथ ही इन कीटों के प्रतिस्पर्धी कम हो गए। कुछ समय में ये विषम यौगिक भरण उत्तेजक अथवा केरोमोन के रूप में परिवर्तित हो गए। अतः एक ओर जहां विशेष पादपों का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर कीटों के समजीनी प्ररूप अथवा जीवप्ररूप (biotypes) भी सामने आए। समजीनी प्ररूपों को बिना प्रतिस्पर्धा के इन पादपों से भोजन मिला।

फ्रेंकिल (1959) के अनुसार पादप में उत्पन्न रसायनरूपी सुरक्षा जो कीटों से बचाव के लिए उत्पन्न हुई थी, वह कीट तथा पादप में अधिक निकट संबंध के निर्धारक के रूप में बदल गई। पादपों के द्वारा उत्पन्न जैव रासायनिक प्रतिरोधिता के निरंतर विकास तथा उसके अनुसार कीटों में अनुकूलन ने कीटों और पादप के विकास की दिशा को बहुत प्रभावित किया है।

कीट पादप पारस्परिक क्रियाओं के व्यावहारिक तथा शरीरक्रियात्मक घटक

पादप भक्षी कीटों द्वारा परपोषी-पादप का चयन पादप उद्दीपनों और कीट अनुक्रियाओं संबंधी घटनाओं की एक ऐसी शृंखला है, जिसकी प्रत्येक कड़ी अगली कड़ी से जुड़ी हुई है। इस प्रक्रिया के पांच मुख्य चरण होते हैं :

क्रियाविधियां पूर्ण रूप से संतुष्ट होती हैं तो उनमें तृप्ति होने तक भरण चलता रहता है।

(v) परपोषी पादप की उपयुक्तता : पादप का पोषक मूल्य तथा उसमें विषैले यौगिकों की अनुपस्थिति अंतिम रूप से लार्वो की वृद्धि तथा विकास और वयस्कों के आयुकाल तथा जननक्षमता संबंधी शरीरक्रियात्मक प्रक्रमों के लिए भोजन की उपलब्धता को अंतिम रूप से निर्धारित करते हैं। इस प्रावस्था में संवेदी क्रियाविधियों की उपयोगिता कम होती है जो परपोषी-पादप के स्वीकरण के साथ-साथ प्रतिरोध की क्रियाविधियों के लिए प्रमुख रूप से महत्वपूर्ण है।

कीट और पादप की पारस्परिक क्रिया में पादपीय घटक

पादप के भौतिक और रासायनिक घटक परपोषी पादप के चयन की प्रक्रिया की विभिन्न प्रावस्थाओं को प्रभावित करते हैं।

(i) भौतिक घटक : परपोषी पादप के कुछ आकारिक लक्षण जैसे गूदेदार होना, ऊतकों की दृढ़ता, चर्मलता, रोमिलता, कंटकों और प्रवर्धनों की उपस्थिति कीटों के सामान्य भरण अथवा अण्डनिक्षेपण में व्यवधान डाल सकते हैं। अन्य भौतिक कारक जैसे रंग और आकृति भी परपोषी पादप के चयन को कुछ सीमा तक प्रभावित करते हैं पर अपनी सामान्य प्रकृति के कारण परपोषी पादप चयन में अधिक महत्वपूर्ण घटक नहीं समझे जाते हैं। कभी-कभी इच्छित पादप के मिलने पर भी कीट अण्डे नहीं देता है क्योंकि पादप की आकृति अण्डनिक्षेपण के लिए पर्याप्त नहीं होती है। जैसे *ओटोग्रेफा प्रीकेसनिस* शलभ *टेरेक्सेकम आफिसिनेल* पादप पर अण्डे नहीं देता है, जबकि इस शलभ की सूंडियों का यह इच्छित भोजन है। पादप का रंग कुछ कीटों में परपोषी पादप को ढूंढ़ने में सहायक हो सकता है।

(i) फ्रेन्किल (1959) का "टोकन उद्दीपक सिद्धांत" (टोकन स्टीमुलाई थ्योरी) : इसके अंतर्गत परपोषी पादप का चयन एकनिष्ट रूप से परपोषी में उपस्थित "विषम" अथवा "द्वितीयक" पदार्थों के आधार पर किया जाता है।

(ii) कनैडी और बूथ (1951) का "दोहरा विभेदन अथवा द्वैत विभेदन का सिद्धांत" (डुअल डिसक्रिमिनेशन थ्यौरी); इसके अंतर्गत परपोषी पादप का चयन "पोषक पदार्थों" तथा "विषम" अथवा "द्वितीयक" पदार्थों के सम्मिलित प्रभाव से होता है।

(iii) पेंटर (1951, 1958) का सिद्धांत जिसके अंतर्गत कीटों के प्रति पादप प्रतिरोध की तीन क्रियाविधियां, अवरीयता, प्रतिजीविता तथा सहनता सम्मिलित हैं।

(iv) डीथियर (1953) का परंपरागत सामान्यीकरण का सिद्धांत जिसमें कीट "रसोग्राही तंत्र" (कीमोरिसेप्टिव सिस्टम) द्वारा अपने परपोषी पादपों को खोजते हैं।

(v) थोरस्टेनशन (1960) के अनुसार परपोषी का ढूंढ़ना अचानक होता है और चयन वहां बने रहने अथवा चले जाने से प्रभावित होता है।

(vi) हाउस (1962) का पोषक असंतुलन (न्यूट्रियन्ट इम्बेलेन्स) सिद्धांतः इसके अतर्गत कीट अपने भोजन को स्वयं ढूंढ़ते हैं।

(i) टोकन उद्दीपक अथवा प्रतीक उद्दीपक सिद्धांत : फ्रेन्किल (1953) के अनुसार कीटों के भोजन की मूलभूत आवश्यकताएं उच्च प्राणियों के लगभग समान ही होती हैं जो पादपों के ऊतकों तथा अन्य जीवित कोशिकाओं के भीतर मिलने वाले पदार्थों से पूर्ण हो जाती हैं। सभी पत्तियों की रासायनिक बनावट लगभग एक समान होती है। अतः ऐसा सोचना तर्क संगत

(ii) रासायनिक घटक : परपोषी पादप का बाह्य पर्यावरण ऐसे यौगिकों से प्रभावित होता है जो द्वितीयक उपापचयज से उत्पन्न होते हैं। इन यौगिकों का रिसना ऊतकों की बाहरी सतहों से होता है। ये यौगिक कीटों में घ्राण उद्दीपनों को उत्पन्न करते हैं जो परपोषी पादप को ढूंढ़ने तथा उसे पहचानने में मध्यस्थता करते हैं। इसके विपरीत पादप का आंतरिक माध्यम यौगिकों के ऐसे जटिल मिश्रण का बना होता है जिनमें से कुछ कीटों के लिए पोषक मूल्य के होते हैं, कुछ भरण उत्तेजक अथवा निरोधक की भांति कार्य करते हैं, कुछ विषैले होते हैं बाकी असक्रिय यौगिक होते हैं।

सामान्यतया प्राथमिक उपापचयज (primary metabolite) तथा उनके बहुलक (पोलीमर) ऐसे पोषक हैं जिन्हें कीट ऊर्जा प्राप्त करने के लिए अथवा अपनी शारीरिक-वृद्धि के लिए उपयोग में लाते हैं। द्वितीयक उपापचयज आमतौर पर "टोकन उद्दीपकों" (token stimuli) की भांति कार्य करते हैं। कीट के लिए इनका पोषक के रूप कोई महत्व नहीं होता है।

परपोषी पादप चयन संबंधी सिद्धांत

पादपभक्षी कीट किस प्रकार अपने परपोषी पादप का चयन करता है, यह एक जटिल क्रिया है। ब्रूस (1920) द्वारा प्रतिपादित मत के अनुसार "वानस्पतिक प्रवृत्ति के कारण कीट परपोषी पादप का चयन करता है। यह प्रवृत्ति पादप के रासायनिक और भौतिक उद्दीपनों के मिश्रित प्रभाव के प्रति कीट में अत्यधिक संवेदनशीलता उत्पन्न करती है। परपोषी पादप चयन के संबंध में कई सिद्धांत प्रतिपादित किए गए है जिनमें "द्वितीयक उपापचयज" (विषम पदार्थों) अथवा "पोषक पदार्थों" के महत्व को दर्शाया गया है। परपोषी पादप चयन संबंधी कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं :

इन पदार्थों की उपस्थिति का भान करने के लिए अभिग्राहक अंग मिलते हैं। जैसे-क्रूसीफेरी कुल के प्रमुख कीट *पियरिस ब्रेसिकी* की मैक्सिला पर मिलने वाला अभिग्राहक "सिनिग्रिन" नामक "द्वितीयक" पदार्थ की उपस्थिति को बताता है। परपोषी-पादप के चयन में "विषम" पादप पदार्थों की भूमिका को डीथियर (1947, 1954), बैक (1976) और शूनहोवन (1972) ने भी बताया है।

(ii) दोहरा विभेदन अथवा द्वैत विभेदन सिद्धांत : इस सिद्धांत का प्रतिपादप कनैडी और बूथ (1951) ने किया था। उनके अनुसार परपोषी पादप चयन में केवल द्वितीयक अथवा विषम पादप पदार्थों की ही भूमिका नहीं होती बल्कि "पोषक पदार्थ" और "द्वितीयक पदार्थ" दोनों ही संयुक्त रूप से परपोषी पादप के चयन को प्रभावित करते हैं।

कीट पादपों में पाए जाने वाले सामान्य पोषक पदार्थों की ओर व्यावहारिक प्रतिक्रियाएं दिखाते हैं। कई कार्बोहाइड्रेट जिनमें सूक्रोज़, ग्लूकोज़ और फ्रक्टोज विशेष हैं, अनेक पादपभक्षी कीटों के भरण को उद्दीप्त करते हैं। सूक्रोज़ सबसे प्रसिद्ध भरण उद्दीपक के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त कई अमीनोएसिड, स्टीरोल, फोस्फोलिपिड तथा कुछ जैवरसायन कीटों के भरण व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन पदार्थों में से कई महत्वपूर्ण पोषक मान वाले हैं। इन मुख्य पोषक पदार्थों के साथ कीट की प्रतिक्रिया के कारण कीट की पोषण संबंधी आवश्यकताओं और उसके परपोषी पादप चयन संबंधी व्यवहार में संबंध होता है। इससे प्रतीत होता है कि टोकन उद्दीपक "भरण आरंभक" का कार्य तथा सामान्य यौगिक जैसे सैक्रोज़ "भरण उद्दीपक" का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए क्रूसीफेरी कुल का मुख्य टोकन उद्दीपक "सिनिग्रिन" पत्ता गोभी के कीट की सूंडियों को आदंश

नहीं है कि उनके प्राथमिक पदार्थों (मुख्य पोषक पदार्थ) की रासायनिक बनावट में भिन्नताएं कीट द्वारा भरण के लिए परपोषी पादप के चयन को प्रभावित करेंगी। पादपों में बहुत से "द्वितीयक" अथवा "विषम" पदार्थ भी पाये जाते हैं जो ग्लूकोसाइड, सेपोनिन, टेनिन, ऐल्केलाइड, आवश्यक तेल तथा कार्बनिक अम्लों के अंतर्गत आते हैं। लगभग सभी "द्वितीयक" अथवा विषम पदार्थों में विशेष लाक्षणिक गंध अथवा स्वाद होते हैं जो भोजन के प्रति संवेदी प्रतिक्रियाएं दर्शाते हैं। फ्रेन्किल (1959) ने कीटों के परपोषी पादप चयन में "विषम पादप पदार्थों" की भूमिका को मोरीसी और ग्रेमिनी कुलों में विस्तार से स्पष्ट किया है। उसके अनुसार कीट पादपों की केवल आकारिकी से ही प्रभावित नहीं होते बल्कि रासायनिक संरचना से भी प्रभावित होकर उनकी ओर जाते हैं। अंत में उसने तर्क दिया कि "द्वितीयक" अथवा "विषम" पादप पदार्थ ही एकाकी रूप से पादपभक्षी कीटों को इच्छित परपोषी पादप की ओर निर्देशित करते हैं और उस पर भरण को शुरू करने के लिए पर्याप्त रासायनिक उद्दीपन भी प्रदान करते हैं।

फ्रेन्किल (1969) ने अपने इस तथ्य को संशोधित करते हुए कीटों के विकास संबंधी शरीरक्रियात्मक प्रक्रमों और व्यावहारिक प्रतिरूपों पर "द्वितीयक" अथवा "विषम" पादप पदार्थों के संभावी प्रभावों को उजागर किया। दूसरे शब्दों में पादपों से उत्पन्न इन विशेष रासायनिक पदार्थों के प्रति कीटों की अनुक्रियाएं ही अधिकतर परपोषी पादप की विशिष्टता और चयन को निर्धारित करती हैं। एल्केलाइड, फ्लेवोनाइड, टरपीन, नाइट्राइल आदि "द्वितीयक" अथवा "विषम" रासायनिक पदार्थ कीटों को परपोषी पादप की ओर बढ़ने तथा उसकी पहचान में "टोकन उद्दीपकों" (token stimuli) की भांति कार्य करते हैं। कभी-कभी कीटों के शरीर में

(ख) पोषक उद्दीपक (न्यूट्रिएन्ट स्टीमुलाई) : ये भरण उद्दीपक अथवा निवारक हैं जो आवश्यक पोषक तत्व की पूर्ति कर भी सकते हैं और नहीं भी।

कनैडी और बूथ (1951) ने परपोषी पादप चयन के लिए "सुवास उद्दीपकों" और "पोषक उद्दीपकों" पर आधारित अपने द्वैत विभेदन सिद्धांत को एफिड *(एफिस फैबी)* के उदाहरण से स्पष्ट किया। यह सिद्धांत पादप तथा कीट, दोनों को ही शरीरक्रियात्मक परिवर्तनों के अनुसार अनुकूलन का गुण प्रदान करता है तथा पादप पोषण के लिए उपयुक्त है या नहीं इसका निर्णय कीट की क्षमता पर निर्भर करता है।

(iii) अवरीयता तथा प्रतिजीविता का सिद्धांत : पेंटर (1951, 1958) ने प्रतिरोध की क्रियाविधि को तीन पक्षों-अवरीयता, प्रतिजीविता और सहनता (सह्यता) में वर्गीकृत किया है। अवरीयता का तात्पर्य है कि पादप अण्डनिक्षेपण, भोजन और आशय के लिए अनुपयुक्त है। प्रतिजीविता में पादप किस्म रासायनों की उपस्थिति के कारण कीट के सामान्य विकास को अवरूद्ध करती है अथवा उस पर हानिकारक प्रभाव छोड़ती है। सहनता पादप किस्म का वह गुण है जो उसे नाशक कीट की उपस्थिति में अपनी ही तरह की अन्य किस्मों की तुलना में अच्छी वृद्धि करने तथा भरपूर फसल देने के योग्य बनाता है। साथ ही यह किस्म अन्य किस्मों की अपेक्षा नाशक कीट के कारण हुई पादप क्षति को ऊतकों की वृद्धि कर पुनः पूरा करने का गुण रखती है। बैक (1965) ने सहनता को प्रतिरोध की क्रियाविधि नहीं माना है क्योंकि यह ऐसे जैविक संबंध को दिखाती है जो अन्य दो प्रतिरोध क्रियाविधियों से भौतिक और रासायनिक रूप में भिन्न है। इस प्रकार का वर्गीकरण पादप जनकों के लिए उचित हो सकता है पर यह प्रतिरोध की

के लिए प्रेरित करना है परंतु भरण को बनाए रखने का निर्धारण परपोषी पादप के ऊतकों में उपस्थित "भरण उद्दीपक" (सूक्रोज़ तथा अन्य पोषक पदार्थ) करते हैं (बैक 1965)। गोथिल्फ और बैक (1967) के अनुसार टोकन उद्दीपकों और भरण उद्दीपकों के मिश्रण का इन दोनों में से किसी एक की अपेक्षा अधिक योगवाही (संकर्मी) प्रभाव पड़ता है।

प्रकृति में यह कीट कभी भी अकेले टोकन उद्दीपकों अथवा सामान्य पोषक पदार्थों के संपर्क में नहीं आता है बल्कि इन कारकों के विभिन्न मिश्रणों से उत्पन्न प्रभाव के साथ वह संपर्क में आता है। अतः परपोषी पादप का चयन और कीट का भरण संबंधी व्यवहार जटिल उद्दीपन प्रतिरूपों पर आधारित होता है जो टोकन उद्दीपक, सामान्य यौगिक और पोषक पदार्थों का सम्मिलित प्रभाव है। कीट का तंत्रिका तंत्र पादप से उत्पन्न जटिल संवेदी प्रतिरूपों को ग्रहण करता है और निर्णय करता है कि कौन सा प्रतिरूप स्वीकार है अथवा नहीं। इसी पर भरण प्रक्रिया का चलते रहना अथवा रूक जाना निर्भर करता है।

पादप से उत्पन्न गंध जटिल यौगिकों का मिश्रण है। यद्यपि पादपों से अनेक वाष्पशील घटक निष्कर्षित किए गए हैं पर पादपों से निकलने वाली गंध विशिष्ट होती है। कई वैज्ञानिकों ने परपोषी पादप से निकलने वाली गंध और कीट में संबंध का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है (ग्रीन, वेरोजा और हाल 1960, जकोवसन 1996)।

सारांश में परपोषी पादप का चयन दो प्रकार के उद्दीपकों के साथ कीट की अनुक्रिया पर आधारित होता है।

(क) सुवास उद्दीपक (फ्लेवर स्टीमुलाई) : ये विशिष्ट वानस्पतिक जैवरसायनों से उत्पन्न होते हैं।

उद्दीपन (आकर्षी, विरामक, उत्तेजक, भरण उद्दीपक) उत्पन्न करता है अथवा नकारात्मक उद्दीपन (प्रतिकर्षी, दमनक, निवारक, अपमार्जक) जिससे कीट परपोषी जाति का परिहार करता है, पैदा करता है। यदि उद्दीपन सकारात्मक अनुक्रिया दिखाता है तो भोजन के लिए कीट पादप का चयन कर लेता है अन्यथा नहीं।

परपोषी पादप में फैले हुए विशिष्ट उद्दीपनों की पादपभक्षी कीटों के साथ अनुक्रिया के आधार पर डीथियर (1953) ने कीटों को तीन समूहों एकाहारी, अल्पभक्षी और विविधभक्षी में बांटा है। एकाहारी कीट केवल एक विशेष पादप पर ही भरण करता है जबकि अल्पभक्षी कीट कुछ ही पादपों पर भरण करता है। इसका कारण अन्य पादपों पर इन कीटों के लिए आवश्यक भरण उद्दीपनों की अनुपस्थिति है। विविधभक्षी कीटों के लिए उपयुक्त आकर्षी और भरण उद्दीपन विभिन्न किस्मों के पादपों में उपलब्ध होने से इनका परपोषी पादप परिसर बहुत बड़ा होता है। कई पादपों में पाए जाने वाले प्रतिकर्षी अथवा आविषालु रासायनों की उपस्थिति ही इस परिसर को और बड़ा होने से रोकती है। कीटों को अब निरंतर बढ़ रही रासायनिक जटिलता का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे में विविधभक्षिता कुछ ही परिस्थितियों में बनी रह सकती है। बहुत से कीटों ने अपने को कुछ पादपों तक ही सीमित कर लिया है (डीथियर 1954)। दूसरे शब्दों में एकाहारी कीट विविधभक्षी कीटों की अपेक्षा कुछ ही द्वितीयक पादप पदार्थों को सहन कर सकते हैं। विविधभक्षी कीट फाल वेववर्म *(डीफेन्ड्रिया कुनिया)* में प्रतिकर्षी अभिग्राहक अनुपस्थित होता है जबकि रेशम के कीट में यह उपस्थित होता है (इसीकावा और साथी 1969)। सारांश में परपोषी पादप चयन में रससंवेदी आधार की आवश्यकता होती है।

क्रियाविधि को स्पष्ट न करके कीट पर पादप के अंतिम परिणाम को दिखाता है। पादप प्रतिरोध का उपयोग नाशक कीट संख्याओं पर रोक लगाने की उचित नियंत्रण विधि है। प्रतिरोध के शरीरक्रियात्मक आधार के विस्तृत ज्ञान के बिना भी प्रयोगात्मक प्रतिरोध संभव है।

(iv) परपोषी पादप के चयन का रससंवेदी (कीमोसेन्सरी) आधार का सिद्धांत : डीथियर (1953) ने परपोषी पादप चयन के लिए दो बोध प्रस्तुत किए हैं: (i) भौतिक उद्दीपन द्वारा कीट अण्डनिक्षेपण और भरण के लिए परपोषी पादप तक पहुंचता है पर परपोषी-पादप चयन की यह प्रक्रिया रासायनिक अनुभूति द्वारा नियंत्रित होती है, और (ii) भोजन के स्रोत पादप के प्रति पादपभक्षी कीट के व्यवहार को कई प्रावस्थाओं के घटकों की शृंखला जैसे भोजन के स्रोत की ओर अग्रसर होना, आदंश अनुक्रिया, लगातार भरण अथवा भरण का रूक जाना और अंत में कीटों के बिखर जाने अथवा छितरा जाने की समीक्षा कर समझा जा सकता है। इन व्यवहारिक घटकों में से प्रत्येक के व्यक्त होने के लिए पादप से उचित तथा विशेष सम्मिश्रण के उद्दीपन का निकलना (पादप लक्षण) और कीट का उसके प्रति उचित अनुक्रिया (कीट का रसोग्राही) दिखाना आवश्यक है। परपोषी पादप के चयन की प्रक्रिया की शृंखला में एक अथवा दो घटकों को यदि पर्याप्त उद्दीपन नहीं मिलता है तो पादप प्रतिरोध उत्पन्न होता है। भरण में व्यवधान पैदा करने वाले लक्षणों को अवरीयता नामक प्रतिरोध क्रियाविधि के नाम से जाना जाता है। डीथियर और साथियों (1960) ने कीटों के भरण संबंधी व्यवहार तथा अन्य रससंवेदी अनुक्रियाओं के लिए शब्दावली बनायी है। इस शब्दावली को पर्याप्त लोकप्रियता मिली है। कीटों का पादप की ओर अग्रसर होना सकारात्मक

जैसा कि डीथियर (1947) ने हाइमेनोप्टेरा गण के अंतर्गत आने वाले परजीवियों से स्पष्ट किया है।

पादप समष्टि में आविषालु पदार्थों (द्वितीयक उपापचयज पदार्थ) के बनने में अधिकता आ सकती है। इस कारण ऐसे पादपों पर कुछ ही किस्मों के कीट भरण कर सकेंगे। समय के साथ-साथ पादपभक्षी जातियों में अनुकूलित विकास संबंधी परिवर्तन आ सकते हैं जिससे वे अविषालु पादप द्वारा दिखाई जा रही रासायनिक सुरक्षा को भेदने में अथवा उसका निराविषीकरण करने में सक्षम हो जाएंगे। पादप द्वारा प्रेरित परिवर्तन और उनकी आवृति प्रकृति में सामान्य घटना है जिसके अंतर्गत आवर्तवीजियों और कीटों में बड़े पैमाने पर विविधरूपण आया है। विकास प्रक्रिया और पारिस्थितिकी ने अपने दबाव से पादपों और कीटों में एक दौड़ बनाए रखी है।

विकास के इस क्रम में अनेक पादपभक्षी कीट पादप विशेषों से संबंधित हो गए जो समान प्रतिरक्षक रसायन रखते थे। ये प्रतिरक्षक रसायन अधिकतर कीटों के लिए अविषालु हैं। उदाहरण के लिए फाइलोद्रिया कूसीफेरा, फिलिया भृंग केपेरिडेसी, ट्रीपिओलेसी और लिमननथेसी के पादपों पर ही भरण करती हैं जबकि ये पादप प्रसिद्ध प्रतिजैविक पदार्थ, सरसों के तेल का स्रोत हैं जो अन्य कीटों पर विपरीत प्रभाव दिखाता है।

(vi) पोषक असंतुलन का सिद्धांत : हाऊस (1966) के अनुसार पोषण की उत्कृष्टता पोषक पदार्थों के संतुलन पर निर्भर करती है अर्थात भोज्य पदार्थों में आवश्यक पोषक पदार्थों का अनुपात कीटों द्वारा आपेक्षित अनुपात के बराबर होता है। पोषकों का असंतुलन कीट के उद्ग्रहण को प्रभावित करता है। एक जाति के कीट से दूसरी जाति के कीट की पोषण संबंधी आवश्यकताएं

(v) थोरस्टेन्शन का सिद्धांत : इस सिद्धांत के अनुसार कीटों द्वारा परपोषी पादप की खोज एक संयोग है और उसका चयन कीट के उस पर बने रहने अथवा चले जाने से होता है। इसके संशोधित रूप को निम्नलिखित रूप में समझाया गया है :

एफ = आई-डी+ $ई_{सन}$ ($ई_{घ्रा}$)

एफ = इष्टतम भरण अनुक्रिया, आई = भरण निरोधक, डी=अपमार्जक, ई=रसायन-अनुचलनी उद्दीपक, $ई_{सन}$ = स्वाद पोषक पदार्थ, और $ई_{घ्रा}$ = गंधीय उद्दीपक

इष्टतम भरण अनुक्रिया का अर्थ है कि पादप अथवा अवस्तर (सवस्ट्रेट) में भरण निरोधक (आई) अथवा अपमार्जक (डी) नहीं है और रसायन-अनुचलनी (रस-संवेदी) उद्दीपक (ई) उपस्थित हैं जो भरण के लिए आवश्यक होते हैं। वानस्पतिक दृष्टि से व्यापक वितरण वाले अनिवार्य भरण उद्दीपक सुस्वाद पोषक ($ई_{सन}$) हैं। किसी कीट जाति को व्यवहार के लिए वास्तविक दृष्टि से सीमित वितरण वाले तथा उपापचय के लिए महत्वहीन विशेष भरण उद्दीपकों की आवश्यकता होती है जो गंधीय उद्दीपक ($ई_{घ्रा}$) होते हैं। बहुत से कीटों में भरण प्रक्रिया तथा परपोषी पादप चयन के लिए गंधीय उद्दीपक की आवश्यकता नहीं होती है विशेषकर उन कीटों में जिनका परपोषी पादप परिसर बहुत छोटा होता है। अतः इन विशेष उद्दीपकों को सुस्वाद पोषक पदार्थों के कारण समझना उपयुक्त होगा। किसी कीट जाति में वयस्कों और लार्वो को एक ही भोजन स्रोत उपयुक्त होता है हालांकि कीट द्वारा अण्डनिक्षेपण अथवा भरण के लिए आवश्यक उद्दीपक लार्वो के साथ संपाती नहीं होते हैं। कुछ पादपभक्षी कीटों में अण्डनिक्षेपण द्वारा रस संवेदी उद्दीपक का ज्ञान हो जाता है

कीटों के व्यवहार संबंधी प्रयोगों ने दिखाया है कि कीट की मैक्सिला विशेषकर मेक्सिलरी पेल्प (स्पर्शक) निरोधक रसायनों को पहचानने में सक्षम होते हैं जबकि मुखांगों में अन्य स्थान पर उपस्थिति अंग भी इस प्रक्रिया में लगे हो सकते हैं।

वैद्युत शरीर क्रियात्मक उपायों से रसोग्राहीयों का विश्लेषण किया गया है। लेपीडोप्टेरा गण के अंतर्गत आने वाली सभी सूंडियों में रसोग्राही शृंगिकाओं अथवा कुछ मुखांगों पर उपस्थित होते हैं। *पियरिस ब्रेसिकी* नामक तितली की सूंडी अपनी प्रत्येक शृंगिका पर उपस्थित 16 घ्राण कोशिकाओं द्वारा पादप से निकलने वाली गंध का ज्ञान कर लेती है। यह एक सरल संवेदी तंत्र की उपस्थिति का उदाहरण है। गंध से इन कोशिकाओं में एक साथ क्रियात्मक विभव उत्पन्न होता है जिसकी दर कोशिका से कोशिका के बीच भिन्न होती है। जब पादप के किसी भाग अथवा रसायन की गंध शृंगिका तक पहुंचती है तो कुछ कोशिकाएं आवेश सक्रियता को बढ़ा अथवा घटा देती है जिससे प्रभावित कोशिकाओं का पूर्ण ढांचा अथवा पेटर्न (प्रतिमानद्ध पेटर्न) बदल जाता है। विभिन्न प्रकार की गंध विभिन्न प्रकार की सक्रियता पेटर्न उत्पन्न करती हैं तथा अभिग्राहकों को अपनी अपनी विशिष्टता से प्रभावित करती हैं। ये आपस में समान नहीं होती हैं पर आंशिक अतिव्यापी उद्दीपक स्पेकट्रम दर्शाती हैं (शूनहोवन और डीथियर, 1966)। शृंगिकाओं में पाए जाने वाले संवेदी अंगों के अतिरिक्त मेक्सिलरी स्पर्शकों पर भी घ्राण प्रक्रिया दिखाने वाले अंग होते हैं।

मेन्डुका सेक्सटा नामक कीट के मेक्सिलरी स्पर्शकों पर स्थित आठ संवेदिका वेसीकोनिका को इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा गया तो पाया गया कि इनमें से पांच के दूरस्थ सिरे पर छोटी खूंटी के

अलग-अलग होती हैं। कुछ कीट बहुत अधिक वरणक्षम होते हैं और उन्हीं पादपों पर भरण करते हैं जो उनके इच्छित होते हैं। हाऊस (1967) ने इसे *एगरिआ एफिनिस* नामक कीट के लार्वो के भरण व्यवहार से स्पष्ट किया था। इस कीट के लार्वो को चार प्रकार का आहार दिया गया जो पोषक मान में भिन्न थे पर एक संतुलित पोषक मान वाला आहार था। लार्वो को सभी आहारों पर भरण प्रक्रिया शुरू करने से पहले उनका आभास किया था। संतुलित मान वाले आहार पर भरण प्रक्रिया चलती रही और लार्वो का इधर उधर घूमना बंद हो गया तथा इकट्ठा होने से उनकी संख्या बढ़ गयी। इसके विपरीत अन्य तीनों आहारों पर लार्वो का घूमना जारी रहा।

परपोषी पादप के चयन के लिए प्रतिपादित सभी सिद्धांत द्वितीयक (विषम) अथवा पोषक पदार्थों के महत्व को दर्शाते हैं। व्यवहार संबंधी तथा वैद्युत शरीर क्रियात्मक अध्ययनों से लगता है कि पादपभक्षी कीट की परपोषी पादप की गंध और स्वाद का ज्ञान होना एक क्रियात्मक घटना है। पोषक पदार्थों तथा विषम पदार्थों से उत्पन्न उद्दीपन आपस में गुथे हुए जटिल संवेदी निवेश हैं जो कीट के तंत्रिका तंत्र द्वारा समझे जाते हैं। इनसे कीट को परपोषी पादप का ज्ञान होता है।

निरोधक रसायनों का प्रत्यक्ष ज्ञान

कीट द्वारा निरोधक रसायनों का प्रत्यक्ष ज्ञान किस प्रकार से होता है, इसकी खोज व्यावहारिक तौर पर तथा वैद्युत शरीर क्रियात्मकता द्वारा की गयी है। व्यवहार संबंधी अध्ययन से उन भागों को पहचाना संभव हो गया है जिन पर आवश्यक अभिग्राहक उपस्थित होते हैं। वैद्युत शरीर क्रियात्मक अध्ययन से उस क्रियाविधि का ज्ञान हुआ जो कीट में उद्दीपक और निरोधक पदार्थों में भेद कराती है।

लेपीडोप्टेरा कीटों की सूंडियों में स्वाद का भान कराने वाले स्थान मेक्सिली पर स्थित होते हैं। इन मुखांगों और शृंगिकाओं को यदि अलग कर दिया जाए तो बहुत से कीट उन पादपों को ग्रहण कर लेते हैं जो उनके परपोषी पादप नहीं होते हैं। तम्बाकू के कीट होर्नवर्म की सूंडी ने इस प्रयोग के बाद डेन्डीलिओन, प्लान्टेन और वरवेसकम का उपयोग किया जो उसके पोषक पादप सोलेनेसी कुल के अंतर्गत आने वाले पादप नहीं हैं। ऐसे कीटों की मेक्सिला का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से पता लगा कि प्रत्येक मेक्सिला में दो संवेदी स्टाइलोकोनिका होती हैं। जिनके अन्दर की ओर चार रसोग्राही कोशिकाएं होती हैं। संवेदी स्टाइलोकोनिका मुँह के खुलने के स्थान के पास होते हैं। भरण प्रक्रिया में मेक्सिला के निरंतर चलते रहने के कारण ये भोजन के मुखगुहा में जाते समय संपर्क में आते हैं जिससे उन्हें उसकी गुणवत्ता का ज्ञान हो जाता है। भोजन की पहचान में इन अंगों के महत्व को अंगच्छेदन प्रयोगों ने स्पष्ट कर दिया है।

डीथियर (1973) ने *पेपिलियो* जातियों में मेक्सिलरी अभिग्राहकों की कुछ कोशिकाओं द्वारा पादप रसों की अस्वीकृति को बताया है। कीटों की अनुक्रियाएं पोषक तथा पोषण के लिए अनुपयुक्त पादपों के बीच भेद करने में पूर्ण सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती हैं। इसीलिए अस्वीकृति की प्रक्रिया निरंतर स्पष्ट नहीं होती है। चेपमेन (1974) ने इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए भरण निरोधकों को दो श्रेणियों में बांटा है। पहली वे जो तंत्रिका कोशिका की क्रिया का दमन करती हैं। सभी कीट इस प्रकार के भरण निरोधकों के प्रति एक सा व्यवहार दिखाते हैं। दूसरी श्रेणी के निरोधकों का ज्ञान विशेष प्रकार की अभिग्राहक कोशिकाओं द्वारा होता है। इनके प्रभाव से कीट इनका परिहार करता है

समान संरचना होती है जबकि बची हुई सिरा खूंटीयुक्त न होकर सपाट होती है। इस पर छोटे गड्ढे होते हैं जो कई छिद्रों के प्रवेश द्वार को प्रदर्शित करते हैं। ऐसा संभव है कि यह घ्राण संवेदिका की भांति कार्य करती है जबकि अन्य पांच अपनी आकृति के कारण स्पर्श रसोग्राही होती हैं। इसके अतिरिक्त मेक्सिलरी स्पर्शक रस संवेदी का कार्य भी करते हैं। *बोम्बिक्स मोरी* कीट की सूंडियों के स्पर्शकों को अलग कर देने से ये "मोरिन" और सिटोस्टेरोल का बोध नहीं कर पाती हैं। मोरिन और सिटोस्टेरोल भोजन लेने (उदग्रहण) को बढ़ाते हैं। स्पर्शक केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को भरण उद्दीपन के साथ-साथ भरण निरोध का प्रभाव भी पहुंचाते हैं। भरण निरोध कैसे उत्पन्न होता है अभी स्पष्ट नहीं है।

इसके अतिरिक्त एक प्रश्न यह भी है कि क्या कीट स्पर्शकों का बारी-बारी से उपयोग कर गंध और स्वाद का आभास करता है। छोटे लार्वे में यह संभव हो सकता है क्योंकि यहां भरण के समय मेक्सिली तेजी से इधर उधर घूमती हैं। *मेन्डुका सेक्सटा* कीट के पांचवां इन्स्टार में स्पर्शक पत्ती को छूते नहीं हैं।

पियरिस ब्रेसिकी कीट के लार्वे ऐसे पादपों पर भी भरण कर सकते हैं जो परपोषी पादप नहीं है। एक प्रयोग में यह देखा गया कि एक पादप जो *पियरिस ब्रेसिकी* कीट का परपोषी पादप नहीं था कि पत्तियों पर जब पत्तागोभी का रस अथवा सिनीग्रिन (एक ग्लूकोसाइड) का घोल लगाया गया तो इस कीट के लार्वों ने उन्हें सरलता से खाया। इसी प्रकार कीटों में यह गुण उपस्थित होता है कि वे किस रसायन की ओर प्रतिक्रिया दिखाए अथवा नहीं जैसे सूंडियां सूक्रोज़ को सरलता से ग्रहण करती हैं तथा क्यूइनिन का परिहार करती हैं।

हुए भाग का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक गुठीला होता है। ये अंग विशेषतः कई स्पीशीजों की शृंगिकाओं पर पाए जाते हैं और यह भी कहा गया है कि *हाइड्रीफिलस फिसियस* और ऐग्रिगोटीज के डिंभकों के स्पर्शकों पर तथा *पेरीप्लैनेटा* और लेपिडोप्टेरस डिंभकों के स्पर्शकों पर भी ये पाए जाते हैं। समूह के रूप में और गर्त में घुसी हुई बेसिकोनिका संवेदिकाएं म्युसिडों और अन्य डिप्टेरा कीटों की शृंगिकाओं में और तितलियों के स्पर्शकों में मिलती हैं। ये शरीर के अन्य विभिन्न भागों में भी होती है जिनमें अधःग्रसनी और लेब्रम की अधिग्रसनी-सतह भी शामिल हैं।

(स) सीलोकोनिका-संवेदिकाएं : ये संवेदिकाएं बेसिकोनिक संवेदिकाओं से इस रूप में भिन्न हैं क्योंकि इनका क्यूटिक्ली प्रवर्ध अध्यावरण के सामान्य स्तर के नीचे घुस जाता है। कुछ कीटों में यह अंग बहुत गहराई में स्थित होता है और सतह से एक लंबी नली तथाकथित एम्पुलेसिया संवेदिका द्वारा जुड़ा होता है। इन संवेदिकाओं का वर्णन विभिन्न कोलियोप्टेरा, लेपिडोप्टेरा और हाइमेनोप्टेरा कीटों की शृंगिकाओं के आधार पर किया गया है।

(द) पट्ट-संवेदिकाएं अथवा रंध्र-पट्टिकाएं : यह पृथक् किस्म की संवेदिका होती हैं जो पतली क्यूटिकली पट्टिका से बनी होती हैं। यह लगभग वृताकार अथवा लंबी अंडाकार शक्ल की होती हैं। इस पट्टिका के नीचे एक छत्रक कोशिका और एक आवरक कोशिका होती है और आवरक कोशिका में द्विध्रुवी तंत्रिका-कोशिकाओं के दूरस्थ प्रवर्धों घुसे रहते हैं। ये प्रवर्ध अंत में मिल कर एक सूत्र का निर्माण करते हैं जो रंध्र-पट्टिका में जाकर समाप्त होता है। कई कीटों की शृंगिकाओं में पट्ट-संवेदिकाओं का अध्ययन किया जा चुका है जैसे ऐफिडिडी, कोलियोप्टेरा, *ऐपिस* और अन्य हाइमेनोप्टेरा और लेपिडोप्टेरा डिम्भकों में। *ऐपिस*

अथवा इनके प्रति अवरीयता दिखाता है। इस प्रकार के निरोधकों की प्रभाविता एक कीट किस्म से दूसरी कीट किस्म के बीच अलग-अलग होती है यहां तक कि कुछ में यह अनुपस्थित होती है।

रसायन संवेदनाओं और उससे संबंधित ग्राही अंगों की क्रिया का डीथियर और चैडविक (1948), फिंग्स और फिंग्स (1949) और डीथियर (1953) ने वर्णन किया है। चूंकि संरचना की दृष्टि से ग्राही अंग के भिन्न प्रकार होते हैं और अक्सर वे एक स्थान पर इस रूप में इकट्ठे होते हैं कि उन्हें पृथक् करने के प्रयोगों द्वारा सदैव यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि वे किस प्रकार की रसायन-संवेदना के माध्यम होते हैं, इसलिए सुगम यह होगा कि पहले रसोग्राही अंगों का वर्णन किया जाए और फिर विभिन्न प्रकार की संवेदी अभिक्रियाओं पर विचार किया जाए। सभी प्रकार के रसोग्राही अंगों की यह विशेषता होती है कि उनमें क्यूटिकल पाया जाता है जो कम से कम अंशतः पतली दीवार के रूप में होता है (पर कभी छिद्रिल नहीं होता) और इन अंगों में एक अथवा समूहबद्ध द्विध्रुवी तंत्रिका-कोशिकाओं से तंतु जाते हैं जिनके सहचारी दूरस्थ प्रवर्धों में छोटे-छोटे परावर्तक काय पाए जाते हैं। इन्हें संवेदी रोमों से व्युत्पन्न माना जा सकता है और इनकी निम्नलिखित किस्में हैं :

(अ) ट्रिकाइडिया आल्फैक्टोरियम संवेदिकाएं : ये वे पतली दीवार वाले रोम होते हैं जो *टैबेनस* के टार्ससों और ओष्टकों में, और *मस्का* के टार्ससों में और अनेक स्पीशीजों की शृंगिकाओं में पाए जाते हैं। कीट की संवेदिका भी इन्हीं के समान होती हैं किंतु ये अपेक्षाकृत छोटे और मजबूत रोम होते हैं।

(ब) बेसिकोनिका और स्टाइलोकोनिका संवेदिकाएं : ये कीलक–जैसे अथवा शंकु-जैसे अंग होते हैं और घ्राणपरक ट्रिकाइड संवेदिकाओं से केवल इस बात में भिन्न होते हैं कि इनके निकले

जातियों की घ्राणांद्रियों के गुण एक से होते हैं। घ्राणशक्ति की निम्नतम सीमाओं पर आयु, लिंग, पोषण-संबंधी दर्जा और पूर्व परिस्थितियों के साथ ही ताप, आर्द्रता और वायु-प्रवाह की गति का प्रभाव पड़ता है और कुछ कीटों में उनके जीवन काल में ही अनुक्रिया का सहज उत्क्रमण हो सकता है अथवा प्रयोगों द्वारा उसको प्रदर्शित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, *पिम्पला एफिकोलिस* (जो चीड़-प्ररोह माथ, *एवेटिया बुओलिऐना* का परजीवी है) की नवजात मादाएं चीड़ के सगंध तेलों द्वारा प्रतिकर्षित होती हैं परंतु लैगिक परिपक्वता प्राप्त करने पर वे उनकी और आकृष्ट हो उठती हैं और चीड़ के उन पेड़ों पर लौट आती हैं जिन पर उनके परपोषी पाए जाते हैं और उनके ऊपर अंडे देती हैं। *ड्रोसोफिला* के डिंभको के विकास को नियंत्रित करने पर इनसे उत्पन्न वयस्क पोदीने के तेल की ओर आकर्षित होते हैं अन्यथा वे इस तेल की गंध से प्रतिकर्षित होते हैं।

घ्राण-अनुक्रियाओं की एक सबसे महत्वपूर्ण बात उनकी विशेषोन्मुखता और यह तथ्य है कि कीट के जीवन में आकर्षण के कुछ विशेष आलंबन बड़ा योगदान करते हैं। जैव वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी गंधों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है: (i) लैंगिक आकर्षक के साधन, (ii) अभिज्ञापन गंध, (iii) अंडनिक्षेपण के लिए आकर्षण-स्थान और (iv) भोजन के लिए आकर्षण-साधन।

(i) लैंगिक आकर्षण के साधन : यह बहुत पहले से ज्ञात है कि कुछ नर-माथ (विशेषकर लैसियोकैम्पिडी, बाम्बिसिडी और सैटरनिडी कुलों के) स्वयं अपनी जाति की कुंवारी मादाओं की गंध से आकर्षित होते हैं और उनके इर्द-गिर्द एकत्रित हो जाते हैं। इसी प्रकार की क्रियाएं कीटों के अन्य वर्गों में भी देखी गई हैं।

मेलिफेरा के नरों की शृंगिकाओं के अंतिम आठ खंडों में इनकी संख्या विशेषतः अधिक होती है।

रसायन-संवेदों को तीन श्रेणियों सामान्य रसायन-संवेद, घ्राण-संवेद और स्वाद-संवेद में विभाजित किया गया है। स्थलीय कीटों में इनके बीच सापेक्षतः स्पष्ट भेद होता है।

(क) सामान्य रसायन-संवेद : इस संवेद के फलस्वरूप कीटों में जलन उत्पन्न करने वाले पदार्थों (जैसे क्लोरीन, अमोनिया और वाष्पशील तेलों के वाष्प) की उच्च सांद्रताओं के प्रति परिहार-प्रतिक्रिया होती है। इसका अध्ययन तो नहीं हुआ है परंतु घ्राणग्राही अंग पृथक् कर देने पर भी यह संवेद ज्यों का त्यों बना रहता है और इससे संबद्ध ज्ञानेंद्रियों का यद्यपि संतोषप्रद रूप में पता नहीं चल पाया है फिर भी वे शरीर के सभी भागों में पाई जाती हैं।

(ख) घ्राण-संवेद (गंध) : गंध-संवेद उन पदार्थों के वाष्पों के निम्न सांद्रणों द्वारा उद्दीपित होता है जो सापेक्षतः साधारण तापमानों पर वाष्पशील होते हैं, हालांकि यह परिभाषा केवल शुष्क वातावरणों में पाई जाने वाली जातियों के ही संबंध में संतोषजनक प्रतीत होती है। घ्राण-उद्दीपन आकर्षक और प्रतिकर्षक पदार्थों का महत्व होता है। किंतु कुछ कीटों में स्पर्शकों और शृंगिकाओं पर ग्राही अंग (*ऐपिस* में पट्ट-संवेदिका, अन्य कीटों में बेसीकोनिक, सीलोकोनिक और ट्रिकाइड संवेदिकाएं) पाए जाते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जिनकी बहुत हल्की गंध भी कीटों को आकर्षित कर लेती है। अतः 0.003 मिलीग्राम स्कैटाल का प्रति लिटर वायु में सांद्रण, जियोटू फीज को आकर्षित कर सकता है और *ऐपिस मेलिफेरा* जिस पर व्यापक रूप में शोध कार्य हुए हैं-सगंध-तेलों के प्रति क्रिया करती है। *ऐपिस मेलिफेरा* और मनुष्य की घ्राणशक्ति की न्यूनतम सीमाएं समान होती हैं और इन दोनों

तभी संभव हो जब कीट उस पौधे के अत्यंत निकट हो-जैसा कि डीथियर (1937) ने कुछ लेपिडोप्टेरस डिंभकों के संबंध में और चिन (1950) ने *लेप्टिनोटार्सा* के संबंध में बताया है। संभवतः स्वाद और दृश्य के उद्दीपन भी पादपभोजी कीटों द्वारा परपोषी चयन में योग देते हैं।

(ग) रस-संवेद : यह वह संवेद है जो उद्दीपक के अपेक्षाकृत उच्च सांद्रणों के प्रति अनुक्रिया द्वारा उत्पन्न होता है। यह द्रव रूप में (सामान्यतः जलीय घोल के रूप में) ग्राही अंगों के संपर्क में आता है। प्रायः ग्राही अंगों की निश्चित पहचान नहीं हो पाई है परंतु संभवतः ये बैसीकोनिक और छोटी ट्रिकाइड संवेदिकाएं होती हैं और कुछ हाइमेनोप्टेरा कीटों की शृंगिकाओं पर, मुखपूर्वी भोजन-गुहा की सतहों पर और कई कीटों के मुखांगों पर, कुछ कीटों के अंडनिक्षेपक पर और कई लेपिडाप्टेरा, डिप्टेरा तथा मधुमक्खियों में टिबिया के दूरवर्ती भागों पर पाए जाते हैं। स्वाद-संवेद के विषय में जो प्रयोग-कार्य किए गए हैं उनका आधार अधिकांशतः विभिन्न शुद्ध रसायन-पदार्थों की ग्राह्यता अथवा अग्राह्यता के प्रति उनके आचरण का अध्ययन रहा है। विभिन्न पदार्थों के प्रति किसी एक जाति की स्वाद की निम्नतम सीमाओं में और उसी पदार्थ के प्रति विभिन्न जातियों की स्वाद की निम्नतम सीमाओं में व्यापक भेद पाए जाते हैं। जब कोई जाति एक ही पदार्थ के प्रति अनुक्रिया करती है तब प्रतिक्रिया में काफी विभेद हो सकते हैं और यह कभी-कभी इस बात पर निर्भर होता है कि कौन-से वर्ग के ग्राही अंगों में उद्दीपन हो रहा है। सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो *ऐपिस, कामिया* और *कैलिफोरा*-जिनका भलीभांति अंवेषण किया गया है-के व्यवहार से पता चलता है कि अधिकांश शर्कराएं स्वीकार्य होती हैं और फ्रक्टोज, ग्लूकोज, सूक्रोज और

कुछ कीट इस गंध का बोध बड़ी दूर से कर सकते हैं-जिप्सी माथ (*लिमैन्ट्रिया डिस्पार*), के संबंध में कालिन्स और पाट्स (1932) ने यह दूरी 2 मील से भी अधिक बताई है। इन लैंगिक आकर्षण के साधनों की रासायनिक एकरूपता पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं हो पाई है और यद्यपि कई शुद्ध कार्बनिक यौगिक नर कीटों को आकर्षित करते हैं फिर भी यह निश्चयपूर्वक ज्ञात नहीं हो पाया है कि इनका स्राव मादाएं ही करती हैं।

(ii) अभिज्ञापन-गंध : सामाजिक कीट अपने घ्राण-साधनों से अपनी स्वयं की जाति अथवा संघ के सदस्यों को पहचान लेते हैं। उदाहरण के तौर पर चीटियां और मधुमक्खियां अपने संघ के सदस्यों के साथ भाई चारे का बर्ताव करती हैं किंतु अपरिचितों पर आक्रमण करती हैं। कुछ चीटियों को अपने बढ़ते हुए साथियों की गंध का बोध हो जाता है और इसीलिए वे उसी दिशा में आगे बढ़ती जाती हैं ट्राइकोग्रामा नामक चैल्सिडाइड अंड-परजीवी, परपोषी के पूर्व-परजीवीकृत अंडों को घ्राणशक्ति द्वारा पहचान लेता है।

(iii) अंडनिक्षेपण के लिए आकर्षक स्थान : अंडों के परिवर्धन के लिए उपयुक्त स्थानों में ही अंडनिक्षेपण होता है। ऐसा अक्सर इसलिए होता है कि अंडनिक्षेपण के स्थान से आने वाली गंधों से मादा उस स्थान की ओर आकृष्ट होती है। उदाहरण के लिए कई परजीवी कीट इसी तरीके से अपने परपोषियों की ओर आकृष्ट होते हैं जिन कीटों के डिंभक मृतभक्षी होते हैं। वे अमोनिया, स्कैटाल, इत्यादि गंधों की ओर आकर्षित होते हैं जो कार्बनिक पदार्थों के जीवाणु-विघटन से उत्पन्न होती हैं।

(iv) भोजन के लिए आकर्षक-साधन : पादपभक्षी कीट बहुधा अपने परपोषी पौधों में पाए जाने वाले वाष्पशील तेलों की गंध से उनकी ओर आकर्षित होते हैं। पर हो सकता है कि यह आकर्षण

प्रयास किए गए हैं। रासायनिक पादप कारकों में दो प्रमुख प्रकार के कारक एलोमोन्न तथा केरोमोन्न होते हैं (डीथियर और साथी 1960, बैक 1965 तथा ब्रिट्टाकर और फीने 1971) मुख्य रासायनिक पादप कारकों (एलीलोकेमिक कारकों) के वर्ग तथा उनका कीटों पर व्यवहार संबंधी अथवा शरीर क्रियात्मक प्रभाव सारणी-1 में दिखाया गया है :

सारणी-1 : रासायनिक पादप कारकों का कीटों के व्यवहार पर प्रभाव अथवा शरीर-क्रियात्मक प्रभाव

ऐलीलोकेमिक कारक	व्यवहारिक अथवा शरीर क्रियात्मक प्रभाव
ऐलोमोन	जो जीव इन्हें उत्पन्न करते हैं उन्हें ये अनुकूली लाभ देते हैं।
प्रतिकर्षी	कीटों को पादप से दूर करते हैं।
चलन उद्दीपक	कीट की गति को आरंभ अथवा उसे तेज करते हैं।
दमनक	कीट के आदंश अथवा छेदन को रोकते हैं।
अपमार्जक	कीट के अंडनिक्षेपण अथवा भरण को रोकते हैं।
प्रतिजैविक	कीटों के लार्वों के विकास और उनकी सामान्य वृद्धि में व्यवधान उत्पन्न करते हैं और साथ ही वयस्कों की प्रजनन क्षमता तथा आयुकाल को कम करते हैं।
एन्टीजीनोटिक्स	कीटों के सामान्य परपोषी पादप चयन व्यवहार में व्यवधान डालते हैं।

माल्टोज आदि कुछ शर्कराओं का बोध तो सापेक्षतः निम्न सांद्रणों में ही हो जाता है, पर गैलेक्टोज, मैनोज और ऐरैबिनोज जैसी शंकराओं के प्रति अपेक्षाकृत उच्चतर सांद्रणों में ही प्रतिक्रिया होती है। सांद्रण काफी प्रबल होने पर अन्य बहुत प्रकार के पदार्थों का भी (जिनमें अम्ल, लवण, ऐल्कोहल, एस्टर, ऐमिनो-अम्ल और तेल शामिल है) प्रतिकार कर दिया जाता है। किंतु कभी-कभी पानी अथवा तनु शर्करा-घोलों की अपेक्षा अम्लों और लवणों के तनु-घोलों को पसंद किया जाता है। अन्य कीटों से संबंधित आंकड़ों से इन व्यापक वक्तव्यों की पुष्टि होती है यद्यपि इसमें भी कई अपवाद हैं। उदाहरणार्थ *ऐग्रोटिस* जातियों के डिंभक जंतु-प्रोटीनों के प्रति, वसा और कुछ वसा-अम्लों के सोडियम लवणों तथा शर्कराओं के प्रति अनुक्रिया दिखाते हैं और यह काटने की क्रिया द्वारा प्रदर्शित होती है। कई पादपभोजी कीटों की परपोषी विशिष्टता अंशतः पौधों में पाए जाने वाले विशिष्ट रससंवेदी आकर्षण साधनों पर आधारित प्रतीत होती है।

रससंवेदी उद्दीपकों की जैव-क्रिया की तुलना उनके भौतिक रासायनिक गुणों के साथ करके, उनकी क्रियाविधि के बारे में कुछ बातों का पता लगाने के प्रयत्न किए गए हैं पर अब तक कोई ऐसे परिणाम नहीं निकले जिनका आधारभूत महत्व हो। फिर भी फ्रिंग्स (1946) ने पता लगाया है कि *पेरिप्लैनेटा अमेरिकाना* के मुखांगों पर पाए जाने वाले ग्राही अंगों में विविध श्रेणियों के लवणों से उद्दीपन पैदा होता है और वह धनायनों की गतिशीलता के अनुपात में होता है।

पादप उद्दीपनों और कीट अनुक्रियाओं में संबंध

परपोषी पादप चयन में विभिन्न कीट अनुक्रियायें उत्पन्न होती हैं। इन्हें पादप उद्दीपनों के साथ संबंधित करने के कई

होने चाहिए। इनमें यदि कोई व्यवधान होता है तो पादप प्रतिरोध उत्पन्न हो सकता है। यह केरोमोन की प्रक्रिया में कमी आने अथवा एलोमोन प्रक्रिया में वृद्धि होने के कारण भी हो सकता है।

प्रतिरोधी लक्षणों पर आनुवंशिक नियंत्रण होता है, फिर भी कुछ लक्षण पर्यावरण जनित परिस्थितियों से प्रभावित होकर घटते बढ़ते हैं। इन परिस्थितियों में प्रतिरोध की क्रियाविधियों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है (i) पारिस्थितिक प्रतिरोध जो पर्यावरण संबंधी कारकों से आता है और (ii) आनुवंशिक प्रतिरोध जो आनुवंशिक कारकों से प्रभावित होता है।

(1) पारिस्थितिकीय प्रतिरोध :

(i) ऋतुजैविक या परिघटनात्मक अतुल्यकालिकता (phenological asynchrony) : किसी अल्पभक्षी कीट के लिए पादप की उचित अवस्था का चयन प्रायः उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सही परपोषी का चयन करना। एक लार्वे को यदि अपनी सामान्य वृद्धि के लिए पुष्पीय संरचनाओं की आवश्यकता है और वे उपलब्ध नहीं हैं तो वह परपोषी पादप की पत्तियों को नहीं खायेगा भूखा मर जाएगा। पादप और कीटों की ऋतुजैविकी एक समान (तुल्यकालिक) होनी चाहिए जिससे कीट को आवश्यकतानुसार पादप संरचना उपलब्ध हो। यदि पादप वृद्धि के ढाँचे में उलटफेर कर कीट और परपोषी पादप ऋतुजैविकी में व्यवधान अथवा अतुल्यकालिकता उत्पन्न कर दी जाए तो यह स्थिति ऐसे प्रतिरोध को उत्पन्न करेगी जिसे परपोषी परिहार कहते हैं (पेंटर 1951)।

कुछ विशेष पादप जातियों की जल्दी अथवा देर से बुवाई करके अतुल्यकालिकताएं उत्पन्न की जा सकती हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण अमेरिका के इलीनोइस में सोयाबीन की जल्दी पकने वाली किस्मों को लगाना है। ये किस्में सितंबर के आरंभ में

केरोमोन	प्राप्त करने वाले जीव को अनुकूली लाभ देते हैं।
आकर्षी	कीटों को परपोषी पादप की ओर अग्रसर अथवा आकर्षित करते हैं।
विरामक	कीट की गति को रोकते अथवा मंद करते हैं।
उत्तेजक	आदंश, छेदन अथवा अंडनिक्षेपण को प्रदर्शित करते हैं।
भरण उद्दीपक	भरण की निरंतरता को बढ़ाते अथवा बनाये रखते हैं।

आकर्षी, विरामक तथा प्रतिकर्षी घ्राण उद्दीपन हैं जो परपोषी पादप को ढूंढ़ने तथा पहचानने को प्रभावित करते हैं। उत्तेजक, भरण उद्दीपक तथा अपमार्जक रससंवेदी उद्दीपन हैं और कीट के आदंश और भरण के बनाए रखने को प्रभावित करते हैं। विभिन्न प्रकार के उद्दीपन ऐलीलोकेमिकों तथा पादपभक्षी कीटों के बीच जटिल संबंध को दर्शातें हैं। वास्तव में एलीलोकेमिक पादपों और उनसे संबंधित कीटों के बीच पारिस्थितिक अनुक्रियाओं में प्रमुख भूमिका निभाते हैं जिनमें पादप-पादप अनुक्रियायें, पादप रोगाणु प्रतिक्रियायें तथा पादप-पादपभक्षी के साथ परपोषी पादप-पादपभक्षी-परजीव्याभ अनुक्रियाएं सम्मिलित हैं।

परपोषी पादप चयन तथा प्रतिरोध की क्रियाविधियां

परपोषी पादप के चयन प्रक्रम का प्रत्येक चरण पादपीय घटकों द्वारा संचालित होता है। कीट की सामान्य वृद्धि और विकास के लिए ये घटक उचित समय पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध

लेते हैं। यदि कीट ऐसी जातियों पर प्रभावित होने वाली अवस्था पर आक्रमण करता है तो वह अधिक मात्रा में ग्रसित होती हैं। पादप जातियों का दीर्घ अथवा लघुकालिक होना आनुवंशिक नियंत्रण के अंतर्गत आता है। अतः प्रजनन द्वारा शीघ्र अथवा देर से पकने वाली किस्मों का विकास करके अतुल्यकालिकताओं को बढ़ाना प्रतिरोध कार्यक्रम का प्रभावी घटक हो सकता है।

(ii) प्रेरित प्रतिरोध : कुछ विशेष पर्यावरणजन्य स्थितियां पादप की शरीरक्रिया को इस सीमा तक बदल देती हैं कि पादप कीट के लिए अनुपयोगी हो जाता है। इन परिस्थितियों के अंतर्गत सस्यीय प्रयास जैसे उर्वरक देना और सिंचाई देना अपनाएं जाते हैं। इनके द्वारा पादपों के अंदर अधिक मात्रा में गुणात्मक अथवा मात्रात्मक परिवर्तन होते हैं, जो कीटों की अनुक्रियाओं को इस प्रकार प्रभावित करते हैं कि वे इन पादपों का परपोषी की भांति उपयोग नहीं कर पाते हैं। पादपभक्षी कीट पादपों में उपस्थित पोषकों की मात्राओं से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। प्रायः यह परिवर्तन उस स्थिति में होते हैं जहां उर्वरकों को जड़ों द्वारा ग्रहण किया जाता है। कभी कभी पादपों की पत्तियों पर छिड़के गए खनिज पोषकों का भी प्रभाव दिखायी पड़ता है। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश उर्वरकों का उपयोग फसलों में सामान्य रूप से किया जाता है और तीनों ही कृषि पारिस्थितिक तंत्र के अभिन्न अंग हैं। पादप में इन तीन पोषकों का संतुलन क्रान्तिक होता है जिसमें हेरफेर कीटों को प्रभावित करता है और पादप उन्हें प्रतिरोध दिखाते हैं। इस प्रकार के कई उदाहरण एफिडों में देखें जा सकते हैं (सिंह, 1970, वानएम्डन, 1966, रोडरीगोज 1960)।

ही पक जाती हैं जिससे ये वीनलीफ भृंग के प्रकोप से बच जाती हैं। क्योंकि इस भृंग का प्रकोप सितंबर के आरम्भ में शुरू होता है। इस समय तक अधिकांश संख्या में सोयाबीन के पादप परिपक्व होकर कटाई के लिए तैयार होते हैं जिससे उन्हें हानि नहीं पहुंच पाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि परिपक्व पादपों की पत्तियां इस कीट का पर्याप्त भोजन नहीं है। मध्य इलीनोइस में फसलीय मौसम के उत्तरार्ध में सोयाबीन को लगाने से इस कीट के प्रकोप से बचाया जा सकता है (कोगन और साथी 1974)। इसी प्रकार तम्बाकू के होर्नवर्म *(मेन्डुका सेक्सटा)* के अण्डनिक्षेपण पर तंबाकू की किस्मों की आकृतियों, गूदेदार प्रकृति तथा परिपक्वता का प्रभाव पड़ता है। मौसम के आरंभ में बोयी गई तंबाकू की फसल पर यह कीट अधिकतम अण्डे देता हैं जिनसे निकलने वाले कीट देर से बुवाई की गई फसल को जून के बाद बहुत अधिक हानि पहुंचाते हैं क्योंकि पहले बोयी गयी फसल जल्द पक जाती है।

कुछ उदाहरणों में बहुप्रज जातियां विभिन्न पीढ़ियों में विभिन्न प्रकार से कीट ग्रसन दिखाती हैं। ऐवरेट और साथियों (1968) के अनुसार अमेरिका के मध्य पश्चिम भाग में देर से लगाई गई मक्के की फसल यूरोपियन मक्का वेधक (*आस्ट्रेनिआ नूबिलेलिस*) की प्रथम पीढ़ी से बहुत कम ग्रसित होती है लेकिन वेधक की दूसरी पीढ़ी की सूंडियां इसे बहुत हानि पहुंचाती हैं। ज्वार की फसल को यदि जुलाई के प्रथम सप्ताह में बोया जाए तो उस पर शूट फलाई (*Atherigona soccata*) का प्रकोप कम होता है (प्रेम किशोर और जोतवानी 1982)।

पेंटर (1961) के अनुसार अतुल्यकालिकताएं आभासी प्रतिरोध (induced resistance) का अच्छा उदाहरण हैं। इस क्रियाविधि से पादप ग्रहणशील होते हुए भी स्वयं को कीट के आक्रमण से बचा

अध्याय - 4

प्रतिरोध के प्रकार और वर्गीकरण

पादप और कीट के बीच अनुक्रियाओं से स्पष्ट हुआ है कि कीटों को बड़े पैमाने पर परपोषी पादप उपलब्ध हैं। प्रकृति में पादपों की परिवर्तनशीलता और कीटों के प्रति अनुक्रियाओं की तीव्रता प्रतिरोध की विभिन्न श्रेणियों का आधार हैं। प्रतिरोध के विभिन्न प्रकार भी इन्हीं के आधार पर परिभाषित किए गए हैं। प्रतिरोध के प्रकार पादपों के उन विशेष गुणों को स्पष्ट करते हैं जिनके द्वारा पादप कीट क्षति का परिहार करते हैं अथवा उसको रोकते हैं अथवा उसे सहन करने में सक्षम होते हैं। प्रतिरोध का वर्गीकरण कीट को पादप पर जीवित रहने, वृद्धि तथा प्रजनन करने में मिली सफलता अथवा असफलता पर निर्भर करता है। वर्गीकरण गुणात्मक और परिमाणात्मक सीमा में परपोषी पादप की सापेक्षिक क्षति को भी वर्णित करता है।

परपोषी पादप प्रतिरोध वह गुण है जो एक पादप अथवा पौधे को कीट की उन संख्याओं के प्रकोप से बचने, उसे सहन करने अथवा उसके द्वारा होने वाली क्षति से पुनः स्वस्थ होने जाने में समर्थ बनता है जबकि उसी पर्यावरण में इस कीट जनसंख्या द्वारा उसी जाति के अन्य पादपों को अधिक हानि पहुंचेगी। यह

(2) आनुवंशिक प्रतिरोध

ऋतुंजैविक या परिघटनात्मक अतुल्यकालिकता और प्रेरित प्रतिरोध की अभिव्यक्ति केवल पारिस्थितिक कारकों के कारण ही होती है और पर्यावरण के नियंत्रण में होती है। जबकि आनुवंशिक प्रतिरोध के अंतर्गत वे क्रिया विधियां आती हैं जो वंशागत लक्षणों पर आधारित होती हैं जिनकी अभिव्यक्ति पर्यावरण से प्रभावित तो हो सकती है लेकिन पर्यावरण के नियंत्रण में नहीं होती है।

आनुवांशिक प्रतिरोध का वर्गीकरण पेंटर (1951) ने अवरीयता, प्रतिजीविता, सह्यता शीर्षकों के अंतर्गत किया है। विशेष वर्णन आगे दिया गया है।

1. प्रतिरोध की विभिन्न तीव्रताओं को प्रदर्शित करती श्रेणियां

कीटों और पादपों के बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं की तीव्रताएं विस्तृत आयाम लिए होती हैं। कीटों के संदर्भ में पारस्परिक क्रियाओं में भिन्नताओं के फलस्वरूप पादप कीटों के लिए पूर्णतया पर्याप्त अथवा अपर्याप्त परपोषी हो सकते हैं। इसके विपरीत पादप जातियों के संदर्भ में जितनी कम कीट जातियां अथवा उनकी बहुतायत होगी, उतना ही कम प्रभाव उनके द्वारा पादप पर पड़ेगा तथा पादप अधिक प्रतिरोधी प्रतीत होगा। पादपों में प्रतिरोध का मूल्यांकन प्रायः उसी जाति की ग्रहणशील किस्म को निरीक्षक अथवा परीक्षक (कंट्रोल) के रूप में लगाकर किया जाता है। पादप असंक्राम्यता कीटों की पूर्ण अपर्याप्तता को दर्शाती है। असंक्राम्यता बहुत बिरले ही परपोषी पादपों में मिलती है। परपोषी पादप और असंक्राम्यता एक दूसरे को आपस में अलग करते हैं। वे पादप जो परपोषी नहीं है प्रतिरोध के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किए जाते हैं अतः उन्हें असंक्राम्य समझा जा सकता है। एक असंक्राम्य पादप परपोषी नहीं होता है।

पेंटर (1951) के अनुसार प्रतिरोध की तीव्रताओं को निम्न श्रेणियों में रखा जाता है :

(i) असंक्राम्यता (Immunity) : यह पादप की वह अवस्था है जो उन परिस्थितियों को दर्शाती है, जिनमें एक विशेष कीट एक पादप किस्म पर न भरण करता है और न ही उसे क्षति पहुंचाता है। इस पादप किस्म को असंक्राम्य किस्म तथा इस अवस्था को असंक्राम्यता कहते हैं।

(ii) उच्च प्रतिरोध (High resistance) : इस प्रकार का प्रतिरोध पादपों की उन विशेषताओं से उत्पन्न होता है जिनके कारण किन्हीं दी

गुण पादपों में जैव-रासायनिक अथवा आकृतिक विशेषताओं के कारण आता है तथा इनसे कीटों के व्यवहार तथा उपापचय क्रियाएं प्रभावित होती हैं। स्नेलिंग (1941) ने पादप प्रतिरोध में उन लक्षणों को सम्मिलित किया है जिनसे पादप में कीट के आक्रमण का परिहार करने, सहन करने अथवा पुनः स्वस्थ हो जाने का गुण आता हैं, विशेषकर उन परिस्थितियों को जब उसी जाति के दूसरे पादपों को कीट का यह आक्रमण अधिक क्षति पहुंचायेगा। स्नेलिंग (1941) की अपेक्षा पेंटर (1951) ने प्रतिरोध की अधिक व्यापक परिभाषा का उपयोग किया है। इसके अनुसार परपोषी पादप का प्रतिरोध उसके वंशागत गुणों का वह परिमाण है जो कीट द्वारा पहुंचायी गई क्षति की श्रेणी की चरम सीमा को प्रभावित करता है। व्यावहारिक कृषि में प्रतिरोध उस अवस्था को दर्शाता है जिसमें कीट की उपस्थिति में भी पादप की एक विशेष किस्म दूसरी अन्य किस्मों की तुलना में अच्छी और अधिक उपज देगी। इससे स्पष्ट होता है कि यह विशेष किस्म कीटों द्वारा होने वाली क्षति को सहन करने में दूसरी किस्मों की अपेक्षा सक्षम है। बैक (1959) ने प्रतिरोध की परिधि को रोकते हुए बताया कि यह एक पादप जाति, प्रजाति, क्लोन अथवा व्यष्टि की वे सामूहिक वंशागत विशेषताएँ हैं जिनके द्वारा वह स्वयं को एक कीट जाति, प्रजाति, समजीनी प्ररूप अथवा व्यष्टि द्वारा परपोषी की भांति उपयोग में लाने से रोकती है। यह परिभाषा कीट द्वारा पादप को परपोषी की भांति उपयोग में लाने से संबंधित कीट पादप पारस्परिक क्रियाओं के क्षेत्रों कम करती है तथा इसमें पादप के उस गुण का समावेश नहीं होता जिसके द्वारा वह कीटों द्वारा होने वाली क्षति से अपने को पुनः स्वस्थ बनाता है।

पादपों को उत्पन्न करती हैं जो साधारण रूप से क्षतिग्रस्त होते हैं।

2. प्रतिरोध की क्रियात्मक श्रेणियां

कीट पादप अनुक्रियाओं का वर्णन करते समय प्रायः पर्यावरण के प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया जाता है, जबकि ऐसा करना आवश्यक होना चाहिए। इससे प्रतिरोध की अभिव्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण पादप अथवा कीट को समान रूप से अथवा भिन्न भिन्न रूपों से प्रभावित कर सकता है, जिसके कारण पादपों में कीटों से होने वाली क्षति की मात्रा कम, अधिक अथवा अस्पष्ट हो सकती है।

पेंटर (1951) ने प्रतिरोध से संबंधित कुछ ऐसी विशिष्ट घटनाओं को वर्गीकृत किया है जो वंशागत विशेषकों (traits) पर आवश्यक रूप से निर्धारित नहीं होती हैं।

आभासी प्रतिरोध (Pseudoresistance) : आभासी प्रतिरोध वह दशा है जिसमें ग्रहणशील परपोषी पादप क्षणिक विशेषताओं के कारण प्रतिरोध दिखाता है। आभासी प्रतिरोध दिखाने वाली किस्में कृषि के लिए महत्वपूर्ण होती हैं पर इन्हें उन किस्मों से अलग रखा जाना चाहिए जो सदैव विभिन्न वातावरणों में प्रतिरोध दिखाती हैं। आभासी प्रतिरोध निम्नलिखित तीन प्रकारों का हो सकता है :

(i) परपोषी परिहार (Host Evasion) : विशेष परिस्थितियों में परपोषी पादप अपनी ग्रहणशील अवस्था को शीघ्रता से पार कर लेता है अथवा उस समय में पूरी कर लेता है जब कीटों की संख्या कम रहती है अथवा उनकी क्रियाशीलता कम होती है। कुछ किस्में जल्दी पक कर कीटों द्वारा होने वाली क्षति से बच जाती हैं। इस कारक को आर्थिक कीट विज्ञान में बहुत ही प्रभावी ढंग से

हुई परिस्थितियों में विशेष कीट द्वारा पादप किस्म को बहुत कम क्षति पहुंचती है।

(iii) निम्न प्रतिरोध (Low resistance) : यह प्रतिरोध पादप में उपस्थित उन विशेषताओं को दर्शाता है, जिनके कारण पादप किस्म को औसत संभावित क्षति से कम क्षति पहुंचती है।

(iv) ग्रहणशीलता (Susceptibility) : जब पादप किस्म को कीट द्वारा औसत अथवा औसत से भी अधिक क्षति होती है तो यह अवस्था ग्रहणशीलता और किस्म ग्रहणशील कहलाती है।

(v) उच्च ग्रहणशीलता (High susceptibility) : जब पादप किस्म को विशेष कीट से बहुत अधिक क्षति पहुंचती है तो यह अवस्था उच्च ग्रहणशीलता कहलाती है तथा ऐसी किस्म को उच्च ग्रहणशील किस्म के नाम से जाना जाता है।

पादप प्रतिरोध के क्षेत्र में इन पदों का उपयोग खेतों में उनके पीछे उपस्थित क्रियाविधियों का विश्लेषण किए बिना ही किया गया है। माध्यमिक स्तर का प्रतिरोध साधारण प्रतिरोध (moderate resistance) के रूप में जाना जाता है। यह उपरोक्त किन्हीं तीन स्थितियों में से एक के कारण हो सकता है।

साधारण प्रतिरोध के स्तर वाली पादप किस्म में आकृतिक रूप से सभी पादप समान होते हैं पर शरीर क्रियात्मक लक्षणों की विषमताओं के कारण कुछ में उच्च तथा दूसरों में निम्न स्तर का प्रतिरोध होता है। इसके विपरीत साधारण रूप से प्रतिरोधी किस्म ऐसे पादपों द्वारा बनी होती है जिन्हें एक क्लोन से प्राप्त किया जाता है। ये क्लोन ऐसी अपूर्ण प्रभावी जीनों के लिए विषमयुग्मज होते हैं जो समयुग्मजी होने पर उच्च प्रतिरोध प्रदान करते हैं। साधारण प्रतिरोध स्तर वाले पादप भी उन जीनों के लिए समयुग्मजी हो सकते हैं जो उपस्थित पर्यावरण संबंधी परिस्थितियों में ऐसे

है तो पहले ज्ञान को छोड़ देना पड़ा है क्योंकि उपलब्ध ज्ञान की अपेक्षा पादप और कीट का संबंध अधिक जटिल है।

पेंटर (1931, 1941, 1951) ने एक अनुमानित उपगमन सामने रखा था जो प्रतिरोध के मूलभूत कारणों के अध्ययनों और घटनाओं की सिर्फ श्रेणीबद्धता के बीच व्यवहारिक सिद्ध हुआ। पेंटर (1951) ने इसे प्रतिरोध की क्रियाविधि कहा।

3. परपोषी-पादप प्रतिरोध की क्रियाविधि

(Mechanism of resistance)

पेंटर (1951) के अनुसार प्रतिरोध की क्रियाविधि को तीन मुख्य प्रकारों अथवा श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

(i) वरीयता अथवा अवरीयता (Nonpreference or Preference): वरीयता अथवा अवरीयता पादप लक्षणों के प्रति कीट की अनुक्रियाएं है जिनमें अंडनिक्षेपण, भोजन अथवा आश्रय, अथवा तीनों के लिए कीट एक विशेष पादप को उपयोग में लाने के लिए उसके पास आते हैं (वरीयता) अथवा उससे दूर चले जाते हैं (अवरीयता)। कभी-कभी इस वरीयता अथवा अवरीयता को पादपीय गुण मान लिया जाता है जो ठीक नहीं है। इस उलझन से बचने के लिए कोगन तथा ओर्टमान (1978) ने इसके स्थान पर दूसरे पद (एन्टीजीनोसिस) को सामने रखा है। यह प्रतिजीविता (antibiosis) के समानांतर पद है जो दर्शाता है कि पादप का बुरे परपोषी (bad host) होने के कारण परिहार किया गया है।

पादपभक्षी कीटों को जब एक अथवा एक से अधिक वैकल्पिक भोजन स्रोत मिलते हैं तो वे अनुकूल वरीयता दिखाते हैं। अपर्याप्त परपोषी पादपों का अक्सर पूर्णतया बहिष्कार (परिहार) कर दिया जाता है। कुछ कीट तो उचित भोजन संबंधी उद्दीपनों की अनुपस्थिति में ऐसे आहारों पर भरण नहीं करते हैं और कभी-

उपयोग में लाया गया है। जल्दी पकने वाली फसलों की देर से बुवाई करके यह ज्ञात किया जा सकता है कि उसमें उपस्थित प्रतिरोध वास्तविक है अथवा आभासी है।

(ii) प्रेरित प्रतिरोध (Induced resistance) : प्रेरित प्रतिरोध पादपों में कुछ परिस्थितियों अथवा पर्यावरण के कारण पैदा होता है। ये परिस्थितियां भूमि में उपस्थित जल अथवा भूमि उर्वरकता के कारण हो सकती हैं। इस प्रकार का प्रेरित प्रतिरोध उद्यान कृषि के लिए अधिक महत्वपूर्ण होता है। इस प्रतिरोध को कीटों के प्रति पादप के जन्मजात प्रतिरोध से अलग करके समझा जाना चाहिए।

(iii) पलायन (Escape) : कीटों के प्रकोप में कमी से कभी-कभी पादप क्षति से बच जाते हैं। इस अवस्था को पलायन कहते हैं। कीटों द्वारा अधिक प्रकोप के समय भी कभी-कभी ग्रहणशील किस्म में कुछ पादप इस प्रकोप से बच जाते हैं। इन पादपों में वास्तविक प्रतिरोध है अथवा नहीं इसके लिए उनकी संततियों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

प्रतिरोध के प्रकारों को उनके कारणों के अनुसार वर्गीकृत करने के प्रयास किए गए हैं। विश्लेषणात्मक तकनीकियों की अपर्याप्तता अथवा पर्याप्त यंत्रों के अभाव में वे प्रयास सीमित सीमा तक ही बढ़ पाए हैं। इसके पीछे आर्थिक सहायता का अभाव भी एक कारण रहा है। इस सबके चलते रहते भी प्रतिरोध के लिए प्रजनन कार्यक्रम को प्राथमिकता दी गई है जिससे प्रतिरोध के स्रोतों को नियंत्रण कार्यक्रमों में प्रयुक्त किया जा सके। प्रतिरोध के कारणों को खोजने को अधिक प्राथमिकता न मिलने से इस विषय पर अधिक ज्ञान उपलब्ध नहीं है और जो है वह अधिक गहन नहीं है। जब कभी इस दिशा में विस्तृत अध्ययन किया गया

अंडनिक्षेपण के लिए वरीयता का मापन प्रतिरोधी अथवा ग्रहणशील पादपों पर मादा कीट द्वारा दिए गए अंडों की गणना करके किया जा सकता है। पाठक (1970) के अनुसार धान का तनावेधक प्रतिरोधी किस्मों की तुलना में ग्रहणशील किस्मों पर 10 से 15 गुना अधिक अंडों के समूह देता है। मैक्सवेल और साथियों (1969) ने कपास में एक निवारक अथवा अपमार्जक (deterrent) ढूंढ़ा है, जो अभी तक पहचाना नहीं गया है। प्रजनन द्वारा इस अपमार्जक को जब ऊपरी भूमि की कपास के जर्मप्लाज्म में स्थानांतरित किया गया तो बहुत सी ऐसी लाइनें छांटी गई, जिन पर उगाई जा रही प्रमाणीकृत वाणिज्यीय जातियों की अपेक्षा कीट का 25 से 40 प्रतिशत कम अंडनिक्षेपण हुआ।

कीट परपोषी पादप संबंधों में भरण उत्तेजकों के संबंध में अधिक ज्ञान अर्जित किया जा चुका है, पर भरण वरीयता को प्रभावित करने वाली प्रतिरोध की निकटतम क्रिया विधियों के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है (फ्रेन्किल 1969, शुनहोवन 1968-1972, डीथियर 1970)। इस संबंध में तीन वैकल्पिक स्थितियों की कल्पना की जा सकती है।

(1) परपोषी पादप में पाए जाने वाले केरोमोन्नों का अनुपस्थित होना अथवा प्रतिरोध किस्मों में उनका प्रभाव सीमांतर से कम होना।

(2) प्रतिरोधी किस्मों में भी परपोषी में पाए जाने वाले केरोमोनों के समान पूरकों का होना लेकिन विरोधी यौगिकों की उपस्थिति में उनके प्रभाव का अवरोध होना।

(3) प्रतिरोधी किस्मों में एलोमोनों का उपस्थिति होना।

इन स्थितियों में से कुछ को *हीबिस्कस सिरियाकस* के उदाहरण से दर्शाया जा सकता है। इन पादपों में भरण दमनक अथवा

कभी तो भरण के अभाव में वे मर भी जाते हैं। इस प्रकार का प्रयोग खरपतवारों के जैविक नियंत्रण कार्यक्रमों में करके देखा गया है (जोंलफर और हेरिस 1971)।

वरीयता का ऐसा ही प्रदर्शन कीटों द्वारा अंडनिक्षेपण के लिए स्थान ढूंढ़ने के समय दिखाई देता है। अपरिपक्व अवस्थाओं की भरण वरीयता और वयस्क मादा द्वारा अंडनिक्षेपण के लिए वरीयता ऐसी दो व्यावहारिक अनुक्रियाएं हैं जो सदैव नहीं पर अक्सर संपाती हो जाती हैं। कुछ तितलियों में ऐसे उदाहरण देखे गए हैं जहां वयस्क ऐसे पादपों पर अंडे देते हैं जो लार्वो के लिए विषैले होते हैं। इसके विपरीत वयस्क उन पादपों का परिहार करते हैं जो लार्वों को भरण और विकास के लिए पर्याप्त भोजन प्रदान करते हैं। यह संभव हो सकता है कि एक प्रकार के ही पादप उद्दीपन भोजन के चयन तथा अंडनिक्षेपंण के लिए स्थानों को ढूंढ़ने संबंधी अनुक्रियाओं को संचालित करते हों। कुछ प्रकरणों में दूसरे कारक भी इसके लिए उत्तरदायी होते हैं।

भरण वरीयता को प्रभावित करने वाले प्रतिरोध कारकों को कई प्रकरणों में पहचाना गया है। किस्हावा और मैंगलिट्ज (1965) ने एल्फाल्फा तथा क्लोवर के कुछ क्लोनों द्वारा एफिड के लिए दिखाए जाने वाले प्रतिरोध का मापन किया है उन्होंने पाया कि प्रतिरोधी पादपों की पत्तियों की अपेक्षा ग्रहणशील पादप की पत्तियों पर अधिक एफिड एकत्रित हो गए। कई कीट विज्ञानियों ने वयस्क कीट में वरीयता का अध्ययन सोयाबीन की कई किस्मों तथा लाइनों में किया है। उन्होंने अपने द्वि-वरण प्रयोगों द्वारा कई स्तर की वरीयता को मैक्सिकन वीन भृंग तथा सोयाबीन लूपर के उदाहरणों से स्पष्ट किया। (वान डूइन और साथी, 1972, कोगन, 1972)।

उसके जीवन में व्यवधान पहुंचाना अथवा उसे नष्ट कर देना है। प्रतिजीविता में वे सभी प्रतिकूल प्रभाव समाविष्ट होते हैं जिन्हें पादप कीट के जीवन पर डालता है, जैसे उत्तरजीविता, परिवर्धन तथा जनन पर प्रभाव डालना।

प्रतिजीविता उन सभी प्रतिकूल शरीर क्रियात्मक प्रभावों को दर्शाती है, जो स्थायी अथवा अस्थायी प्रवृत्ति के हो सकते हैं तथा कीट के पादप पर भरण करने से उत्पन्न होते हैं। अस्थायी प्रकृति की प्रतिजीविता को प्रतिरोधी किस्म पर भरण कर रहे कीट का स्थानांतरण ग्रहणशील किस्म पर करके दर्शाया जा सकता है। ग्रहणशील किस्म पर आते ही कीट में प्रतिजीविता के प्रभाव शीघ्रता से समाप्त हो जाते हैं और वह सामान्य शरीरक्रियात्मक अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत स्थायी प्रतिजीविता की उपस्थिति में ऐसा नहीं हो पाता है। प्रतिरोधी पादप पर भरण करने से कीटों में प्रतिजीविता संबंधी निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं :

(क) आरंभिक इन्सटारों के (लार्वा) की मृत्यु।
(ख) असामान्य वृद्धि दर।
(ग) अंतर्ग्रहित भोजन अथवा पाचित भोजन का असामान्य परिवर्तन।
(घ) प्यूपा बनने में असफलता।
(ड) प्यूपे से वयस्क के निकलने में असफलता।
(च) कुरचित अथवा छोटे आकार के वयस्कों का उत्पन्न होना।
(छ) भोजन के संचय में असफलता और जिससे शीत-निष्क्रियता में असफल होना।
(ज) प्रजनकता में कमी आना।
(ङ) जनन क्षमता में कमी आना।
(ट) व्यवहार में अनियमितता।

निवारक (अपमार्जक) उपस्थित होते हैं। इन पादपों में जब बाह्यदल पुंज को पुष्पों से अलग कर दिया गया तो कपास की भृंग बोलवीविल ने इन पादपों पर कपास के पादपों की भांति ही भरण तथा अंडनिक्षेपण किया। उन पादपों पर कोई भरण नहीं हुआ जिनके फूलों से बाह्यदल पुंज अलग नहीं किया गया था। जब बाह्यदल पुंज का निष्कर्षण किया गया तो एक जल घुलनशील अवाष्पशील पदार्थ अलग किया गया, जो कि बोलवीविल के भरण को तेजी से रोकने में समर्थ था। प्रकृति में बोलवीविल द्वारा *हीबिस्कस सिरियाकस* का परिहार एक निम्न स्तर के आकर्षी, उच्च स्तर के प्रतिकर्षी और अधिक सक्रिय भरण निवारक (जिन्हें बाह्य दल से निष्कर्षित किया गया) द्वारा होता है। आकर्षी, प्रतिकर्षी और भरण निवारक (अपमार्जक) की उपस्थिति पादप में भरण उत्तेजकों की तीव्रता को दबा देती है, जिससे बोलवीविल इस पादप पर भरण नहीं करती है।

खेतों में कुछ ऐसी स्थितियां देखी गई हैं जब वरीयता प्राप्त परपोषी की अनुपस्थिति में कीट अवरीयता प्राप्त परपोषी पर भी भरण अथवा अंडनिक्षेपण कर सकते हैं। इसके पीछे संभवतः यह कारण हो सकता है कि प्रतिरोध के वे कारक जो कि व्यावहारिक क्रिया विधियों को प्रभावित करते हैं कीट द्वारा द्वितीय महत्व के समझे जाते हैं। इस क्रिया विधि का सूक्ष्म प्रभाव कीट समष्टि पर भी पड़ता है साथ ही आंशिक रूप से अवरीयता प्राप्त पादपों अथवा अधिक वरीयता प्राप्त पादपों पर भी पड़ता है। अपने इस गुण के कारण इस क्रियाविधि को सस्य नियंत्रण विधियों के अंतर्गत उपयोग में लाया जा सकता है।

(ii) प्रतिजीविता (Antibiosis) : इस क्रियाविधि का अभिप्राय पादप द्वारा कीट को भरण से रोकना, हानि पहुंचाना अथवा

इस किस्म पर कीट की नवजात मादायें भरण करती हैं तो उनके अंडाशय पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते हैं तथा बहुत कम परिपक्व अंडे उनसे निकलते हैं (पाठक 1970)।

पोषकों के प्रभावों से उत्पन्न प्रतिजीविता कभी-कभी भोजन ग्रहण करने तथा उसके उपभोग में सूक्ष्म भिन्नताओं के कारण आती है। कोगन (1972) ने इन प्रभावों को सोयाबीन की 21 प्रतिरोधी और ग्रहणशील किस्मों तथा अन्य फलीयुक्त फसलों पर मेक्सिकन वीन भृंग के भरण से दर्शाया था। इस अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि सबसे अच्छा परपोषी, *फेसियोलस वल्गेरिस* तथा प्रतिरोधी किस्म सोयाबीन लाइन पी आई 229358 थी।

मक्का की विभिन्न जातियों के नवोद्भिद अपनी अधिक नवजात अवस्था में यूरोपियन मक्का वेधक के लिए प्रतिरोधी होते हैं। जैसे जैसे ये परिपक्व होते हैं तो इनमें से कुछ ग्रहणशील हो जाते हैं तथा कुछ प्रतिरोध बनाये रखते हैं। इनका कारण वेधक के लिए विषैले पदार्थ की उपस्थिति है। यह पदार्थ नवजात नवोद्भिदों तथा मक्का की प्रतिरोधी लाइनों के ऊतकों में उपस्थित होता है तथा इसे **डिम्बोआ** (Dimboa) कहते हैं। क्लून और ब्रिन्डले (1966) के अनुसार फिनलेण्ड के निवासी विरटानेन और साथियों ने इसकी उपस्थिति बतायी थी। क्लुन तथा रोबिन्सन (1969) ने मक्के के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में अनेक ऊतकों से डिम्बोआ की सांद्रताओं का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि इसकी सबसे अधिक सांद्रता जड़ों में थी। इसके बाद सांद्रता के क्रम में तना, पत्तियों के ऊपरी चक्र फिर अन्य पत्तियां थीं। अलग अलग अंतःप्रजातों में इनकी सांद्रताएं भिन्न थी। नवोद्भिदों में डिम्बोआ की उच्च सांद्रता मक्के के नवजात पादपों में यूरोपियन मक्का वेधक के विरुद्ध दिखाये जाने वाले प्रतिरोध को स्पष्ट

इन लक्षणों के संभावित क्रियात्मक स्पष्टीकरण निम्नलिखित हो सकते हैं :

(1) विषैले उपापचयजों जैस ऐल्केलोइड, ग्लूकोसाइड, क्वीनोन्स की उपस्थिति।
(2) अनिवार्य पोषकों की अनुपस्थिति अथवा कम मात्रा का होना।
(3) पोषकों का असंतुलित अनुपात।
(4) प्रतिउपापचयजों (antimetabolites) की उपस्थिति जो कि अनिवार्य पोषकों को अनुपलब्ध बनाते हैं।
(5) ऐसी एंजाइमों की उपस्थिति, जो सामान्य पाचन प्रक्रमों को रोकते हैं, जिसके फलस्वरूप पोषकों का उपभोग नहीं हो पाता है।
(6) प्रचुरणी ऊतक अथवा तेजी से निकलते स्रातों की उपस्थिति से कीट के जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रभाव।

प्रतिजीविता संभवतया सबसे अधिक दिखायी देने वाली प्रतिरोध क्रियाविधि है। प्रतिजीविता के उदाहरण निम्नलिखित हैं।

पोषण संबंधी प्रतिजीविता के उदाहरणों में स्कोट और गुथरी (1966) के अनुसार एस्कोरबिक अम्ल के साथ एक अथवा दो अन्य संघटकों की अनुपस्थिति मक्के के अतःप्रजातों को ऐसा प्रतिरोध प्रदान करती है, जिसकी क्रियाविधि प्रतिजीविता है। चिप्पेनडेल और बैक (1964) ने भी मक्के की पत्तियों में एस्कोरबिक अम्ल की उपस्थिति को पत्ती कारकों के रूप में पहचाना। यह ऐसा कारक है जिसकी यूरोपियन मक्का वेधक के लार्वे को अपनी सामान्य वृद्धि के लिए आवश्यकता होती है। दूसरा पोषक संबंधी प्रतिजीविता का प्रभाव धान की प्रतिरोधी किस्मों में एस्पारेजिन की कमी के कारण उत्पन्न होता है। धान की **"मुदगो"** (Mudgo) किस्म धान के कीट ब्राउन प्लांट होपर के लिए प्रतिरोधी है। जब

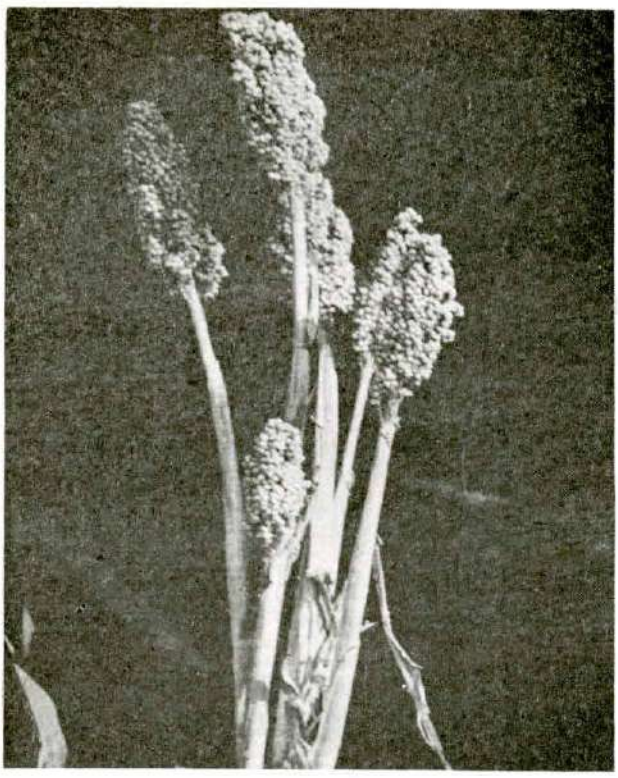

चित्र-2 : ज्वार की कृषि किस्म ई 623

वहां से टूट जाते हैं अथवा उनकी बालियों में दाने अच्छे नहीं पड़ते हैं। इस कीट का आक्रमण यदि बाली की अवस्था के समय होता है तो वह पादप से मिलने वाली उपज को अत्यधिक कम कर देता है अथवा पादप पुष्पावलि-वृंत से टूट जाता है। इस कृषि किस्म पर बूटलीफ अवस्था के समय जब ज्वार तना वेधक का प्रकोप हुआ तो ग्रसित पादप के शीर्ष पर पार्श्व से प्ररोह अथवा

करती है। वे अंतः प्रजात जो अपने विकास के बाद की अवस्थाओं में डिम्बोआ की उच्च सांद्रताएं रखते हैं, वेधक के प्रतिरोधी होते हैं। मक्का में डिम्बोआ की उपस्थिति इयरवर्म *हीलियोथिस जिया* के लिए भी इसे प्रतिरोधी बनाती है (रीड और साथी 1972)।

(iii) सह्यता अथवा सहनता (Tolerance) : कुछ पादपों में कीटों द्वारा हुई क्षति को पूरा करने का गुण अथवा एक विशेष कीट जनसंख्या स्तर, जो अधिक ग्रहणशील परपोषी को हानि पहुंचाने में सक्षम होता है, को सहन करते हुए भी पर्याप्त मात्रा में उपज देने का गुण होता है। इस गुण को सहयता अथवा सहनशीलता कहते हैं।

सह्यता उत्पन्न होने के कारण निम्नलिखित है :

(1) पादप का सामान्य ओज।

(2) क्षतिग्रस्त ऊतकों की पुर्नवृद्धि।

(3) तनों में उपस्थित दृढ़ता, जिससे उनके गिरने में कमी आना।

(4) अतिरिक्त शाखाओं का बनना।

(5) कीट द्वारा पादप के अजैव भागों का प्रभावी उपयोग।

प्रेमकिशोर और जोतवानी (1979) के अनुसार ज्वार की कृषि किस्म "ई 623" ज्वार के तना वेधक के प्रति सहनता का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस किस्म को ज्वार की देशी और विदेशी जातियों के संकरण से उत्पन्न किया गया है। इसकी वंशावली (आई एस-3687 X ऐसपुरी X आई एस-3922 X कराड लोकल) है। (चित्र-2)

इस किस्म को जब खेत में लगाया गया तो इसमें बाली आने से पहले अर्थात् बूटलीफ (बाली का रक्षावरण) अवस्था पर ज्वार तना वेधक का प्रकोप पुष्पावलि-वृंत (peduncle) पर अधिक हुआ। आमतौर पर किसी भी ग्रहणशील किस्म के ग्रसित पादप या तो

प्रारंभ में लगने वाले कीटों के कारण कम हो जाती तो शेष पादप अधिक शाखाएं उत्पन्न कर मरे हुए पौधों द्वारा खाली स्थानों को भर देते हैं और इनसे होने वाली उपज लगभग सामान्य होती है।

प्रतिरोध की ये तीनों श्रेणियां स्वेच्छाधारी तथा अनिश्चित प्रकार की हैं। सभी प्रतिरोध की घटनाएं स्पष्ट रूप से इन तीनों श्रेणियों मे से किसी एक में स्थान नहीं पा सकती हैं। कभी-कभी अवरीयता को प्रतिजीविता भी समझ लिया जाता है। जैसे कि कुछ कीटों के प्रारंभिक 'इन्स्टार' पादप को परपोषी के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। सभी क्रियाविधियों का आधार भौतिक अथवा रासायनिक घटक होते हैं।

सहनता को प्रायः निम्न प्रतिरोध समझ लिया जाता है, जबकि यह कीटों के प्रकोप के प्रति पादप अनुक्रियाओं का ऐसा सामूहिक गुण है जो सहनता प्रदान करता है। ये पादप अनुक्रिया में वंशागत विशेषक (*heritable trait*) हैं। जो जैविक रूप से बहुत अधिक महत्वपूर्ण तथा व्यावहारिक मूल्य के हैं। सहनता को भी प्रतिजीविता तथा अवरीयता क्रियाविधियों के समान ही एक क्रियाविधि समझना चाहिए, परंतु उनके समकक्ष होते हुए भी इसका रूप उनसे भिन्न है। ये उत्कृष्ट प्रतिरोध श्रेणियां आपस में एक-दूसरे को अलग नहीं करती हैं परंतु अपने संयुक्त प्रभाव से प्रतिरोध की अभिव्यक्ति को अधिक बढ़ा सकती हैं। जैसे एक अवरीयता प्रदर्शित करने वाला परपोषी प्रतिजीविता का प्रभाव भी डालता है। इसी प्रकार ये उस अनुभूति में भी एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं जहां एक मध्यम स्तर अथवा अत्यधिक सहन क्षमता वाले परपोषी पादप को कीट हानि से किसी भी सीमा तक बचने के लिए अवरीयता अथवा प्रतिजीविता के गुणों को दर्शाने की आवश्यकता न पड़े। इसके विपरीत एक अत्यधिक अवरीयता प्राप्त अथवा अत्यधिक

शाखाएं निकलती हैं। यह पार्श्व में निकली शाखाएं प्ररोह के साथ बढ़ती हैं तथा स्वस्थ बालियों को जन्म देती हैं। ऐसी बालियों की परिपक्वता का समय सामान्य परिपक्वता के समय के लगभग बराबर होता है। इस लिए इन्हें काटकर उसी प्रकार पैदावार ली जाती है जैसी की मुख्य प्ररोह से ली जाती है। इस कृषि किस्म में पार्श्व से बनने वाली बालियों की संख्या 2 से 6 तक पाई गई है। इन बालियों से मिलने वाली उपज सामान्य बाली से मिलने वाली उपज से भी अधिक होती है।

ज्वार की अनेक किस्मों द्वारा ज्वार के प्ररोह वेधक कीट, शूटफ्लाई के लिए प्रतिरोधी सहनता का प्रदर्शन जाना माना है, पर ज्वार की ई-623 किस्म का ज्वार तना वेधक के प्रकोप के प्रति सहनता और वह भी पुष्पावलि-वृंत पर बूटलीफ अवस्था में अपने आप में अनुपम है (प्रेमकिशोर और जोतवानी-1979)।

विजमान और साथियों (1972) ने मक्के की प्रतिरोधी जातियों में भुट्टों की सिल्क पर ईयरवर्म, *हीलियोथिस जिया* के लार्वो को सामान्य रूप से भरण करते तथा विकसित होते हुए पाया गया। इन लार्वो ने भुट्टों के अंदर प्रवेश नहीं किया था। भुट्टों में परागण के बाद सिल्क का कोई विशेष कार्य शेष नहीं रहता है। प्रतिरोधी तथा ग्रहणशील संकरों से समान संख्या में ईयर वर्म के लार्वो को भरण करते एकत्रित किया गया, लेकिन प्रतिरोधी किस्मों पर कम क्षति पाई गई।

सहनता के संदर्भ में सामुदायिक क्षतिपूर्ति का एक उत्कृष्ट उदाहरण सोयाबीन से दिया जा सकता है। यहां समुदाय में उपस्थित पादपों में से कोई पादप ग्रहणशील हो सकता है, परंतु पादपों का पूरा समुदाय कीट के प्रकोप को प्रभावी रूप से सहन कर लेता है। यदि सोयाबीन फसल की पादप संख्या मौसम के

प्रतिजीविता वाली किस्म को विशेष कीट के विरुद्ध सहनता की अधिक आवश्यकता नहीं होगी। प्रतिजीविता तथा अवरीयता परपोषी चयन की प्रक्रिया में कीट संख्याओं पर दबाव डालती है, जबकि सहनता की स्थिति में ऐसा नहीं होता है।

4. अन्य महत्वपूर्ण प्रतिरोध संबंधी पद

कुछ प्रतिरोध संबंधी पदों को पादप रोगविज्ञान में अधिकता से प्रयुक्त किया गया है। ये पद अब कीटों के प्रति परपोषी पादप प्रतिरोध के क्षेत्र में भी उपयोग में लाए जा रहे हैं :

(i) उर्ध्वाकार अथवा विशिष्ट प्रतिरोध (Vertical resistance): इस प्रकार के प्रतिरोध को नाशक जीव जाति के कुछ समजीनी प्ररूपों (biotypes) के विरुद्ध अभिव्यक्त किया जाता है (वानडर प्लेंक, 1968) यह एकोद्भवी (monogenic) अथवा अल्पजीनी (oligogenic) प्रतिरोध है।

इस प्रकार के प्रतिरोध में एक फसल की विभिन्न कृषि किस्में एक जाति के कीट के विभिन्न समजीनी प्ररूपों से ग्रसित होने पर अलग अलग पारस्परिक क्रिया दिखाती हैं। दूसरे शब्दों में कीट के एक समजीनी प्ररूप के विरुद्ध जहां कुछ कृषि किस्में प्रतिरोधी होती है और उनमें ग्रसन कम होता है वहीं दूसरी कृषि किस्में ग्रहणशील होती है और उनमें ग्रसन अधिक होता है। उर्ध्वाकार प्रतिरोध समजीनी प्ररूप विशिष्ट होता है तथा मुख्यजीनों अथवा अल्पंजीनी द्वारा नियंत्रित होता है। यह प्रतिरोध अधिक स्थिर और स्थायी नहीं होता है।

(ii) क्षैतिज अथवा सामान्य प्रतिरोध (Horizontal resistance): इस प्रकार के प्रतिरोध को नाशकजीव जाति के सभी समजीनी प्ररूपों के विरुद्ध समान रूप से अभिव्यक्त किया जाता है (वानडर प्लेंक 1968)। यह अनेकजीनी प्रतिरोध (polygenic) है।

इस प्रकार के प्रतिरोध में एक फसल की विभिन्न कृषि किस्में एक ही जाति के कीट के विभिन्न समजीनी प्ररूपों से ग्रसित होने पर भी एक समान पारस्परिक क्रिया दिखाती है। दूसरे शब्दों में एक विशेष परपोषी पादप द्वारा दिखाए जाने वाले प्रतिरोध का स्तर कीट के सभी समजीनी प्ररूपों के विरुद्ध समान रहता है अर्थात् वह एक के विरुद्ध प्रतिरोधी है तो सभी के लिए प्रतिरोधी होगा और यदि ग्रहणशील है तो सभी के लिए ग्रहणशील होगा। क्षैतिज प्रतिरोध समजीनी प्ररूपों विशिष्ट नहीं होता है साथ ही सामान्य प्रतिरोध भी कहलाता है। यह प्रतिरोध स्थिर तथा स्थायी होता है।

(iii) अतिग्रहणशील प्रतिरोध (Hypersenstive resistance): इस प्रकार का प्रतिरोध ऊतक क्षय (necrosis) के कारण उत्पन्न होता है, जो एक तीव्र तथा तेज अनुक्रिया है जिसके कारण ग्रसित ऊतकों की असामयिक मृत्यु हो जाती है तथा आक्रमण करने वाला कारक असक्रिय होकर स्थान विशेष का होकर रह जाता है (मुलर 1959)।

इनके अतिरिक्त परपोषी पादप अध्ययन में निम्नलिखित दो पदों का भी प्रयोग किया जाता है।

(iv) फील्ड प्रतिरोध (Field resistance) : इस प्रकार का प्रतिरोध खेतों में दिखाई देता है। यह प्रयोगशाला अथवा ग्रीन हाउस में मिलने वाले प्रतिरोध से भिन्न होता है। इसमें नवोद्भिद् प्रतिरोध के साथ ही साथ परिपक्व पादप द्वारा दिखाया जाने वाला प्रतिरोध भी निहित हो सकता है। सभी स्थानीय समजीनी प्ररूपों के प्रति इस प्रतिरोध के अंतर्गत प्रतिरोध की सभी श्रेणियों जैसे अवरीयता, प्रतिजीविता और सहनता तीनों ही उपस्थित हो सकती हैं।

(v) बहुल प्रतिरोध (Multiple resistance) : इस प्रकार के प्रतिरोध की उपस्थिति के कारण कृषि किस्म सब प्रकार के नाशक जीवों तथा पर्यावरण जनित खतरों से अपने को बचाने में समर्थ है। इस प्रतिरोध को दिखाने वाली जीनों को प्रजनन के कई चक्रों में प्रतिरोधी पादप को अनुकूलित पादप से प्रतीप-संकरित कर स्थापित किया जाता है। एल्फाल्फा की किस्म "कन्जा" जीवाणु जनित मुरझाना, धब्बेदार एल्फाल्फा एफिड और मटर के एफिड, के लिए प्रतिरोधी है।

5. प्रतिरोध की वंशागति

वंशागति के अनुसार (वानडर प्लेंक 1968) प्रतिरोध को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

(i) एकोद्भवी प्रतिरोध (Monogenic resistance) : पादपों में इस प्रकार का प्रतिरोध एकल जीनों द्वारा दर्शाया जाता है।

(ii) अल्पजीनी प्रतिरोध (Oligogenic resistance) : यह प्रतिरोध कुछ जीनों द्वारा नियंत्रित होता है।

(iii) अनेकजीनी प्रतिरोध (Polygenic resistance) : इस प्रकार के प्रतिरोध को अनेक जीन नियंत्रित करती हैं।

पादप द्वारा प्रतिरोध की अभिव्यक्ति सभी जीनों का संयुक्त प्रभाव होता है। वे जीन जो प्रमुख रूप से प्रतिरोध से संबंधित हैं वे अपने को विभिन्न तरीकों से अभिव्यक्त कर सकती हैं। अब तक जिन पादप प्रतिरोधों का विश्लेषण किया गया है, वे अल्पजीनी अथवा अनेक जीनी प्रतिरोध सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार के प्रतिरोधों को एकोद्भवी (मोनोजीनी) प्रतिरोध से अच्छा समझा जाता है क्योंकि नए समजीनी प्ररूपों के उत्पन्न होने पर यह प्रतिरोध अपनी आनुवंशिक संवेदनशीलता के कारण टूट जाएगा।

एकोद्भवी अथवा अल्पजीनी प्रतिरोध को "मुख्य जीन प्रतिरोध" (major gene resistance) भी कहते हैं और अनेक जीनी प्रतिरोध को "गौण जीन प्रतिरोध" (minor gene resistance) के नाम से भी जाना जाता है।

इन दोनों पदों को सावधानी से समझने की आवश्यकता है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि सभी अल्पजीनी मुख्य जीन ही हों साथ ही सभी अनेक जीनी गौण जीन ही हों अर्थात् इन दोनों प्रतिरोधों के बीच स्पष्ट रेखा खींचना संभव नहीं है। एकल-जीन प्रभाव इतने स्पष्ट नहीं होते हैं कि जीन की पहचान कर उसे ढूंढ़ लिया जाए। प्रायः जीनों के प्रभाव का अध्ययन विसंयोजित (पृथक) होती पादप समष्टियों पर कीट के समजीनी प्ररूपों के प्रकोप को माप कर किया जाता है अथवा कीट की उत्तर जीविता, वृद्धि और प्रजनन पर पादप के प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(i) बहुरेखीय प्रतिरोध (Multiline resistance) : यह प्रतिरोध समान लक्षणों वाले लेकिन जीन प्ररूपी भिन्नताओं वाले शुद्ध वंशक्रमों के मिश्रण से उत्पन्न होता है।

जीन प्ररूपी भिन्नताएं शुद्ध वंशक्रमों के घटकों के बीच प्रायः उर्ध्वाकार प्रतिरोध से आती है। कई प्रतिरोधी लाइनों के बीजों को मिलाकर बोने से बहुरेखीय लाइन बनती हैं। इन प्रतिरोधी लाइनों की उन जीनों में भिन्नता होती है जो प्रतिरोध दिखाती हैं। खेत में लगी बहुरेखीय लाइन आनुवंशिक रूप से समान कृषि किस्म से अलग नहीं होती है पर नाशक कीट पर यह आनुवंशिक रूप से सामान्य कृषि किस्म की अपेक्षा बहुरेखीय प्रतिरोधी होने के कारण अधिक प्रभाव डालती है।

6. प्रतिरोध में जीन अभिव्यक्ति

दूसरे विशेषकों (traits) की भांति प्रतिरोध को भी परिवर्तनशील जीन अभिव्यक्ति से पहचाना जा सकता है। जीन अभिव्यक्ति दो प्रकार से होती है।

(क) आंतर-युग्मविकल्पी अभिव्यक्ति (Intra-allelic) : यह अभिव्यक्ति तीन प्रकार की होती है।

(i) अप्रभावी (Recessive) : प्रतिरोधी तथा अतिसंवेदनशील जनकों से उत्पन्न एफ$_1$ (F_1) संकर (पहली पीढ़ी के संकर) ग्रहणशील होते हैं।

(ii) प्रभावी (Dominant) : प्रतिरोधी तथा ग्रहणशील जनकों से उत्पन्न एफ$_1$ (F_1) संकर प्रतिरोधी (resistant) होते हैं।

(iii) अपूर्ण प्रभावी (Incompletely dominant) : प्रतिरोधी तथा ग्रहणशील जनकों से उत्पन्न एफ$_1$ (F_1) संकर माध्यमिक स्तर के प्रतिरोधी होते हैं।

(ख) अंतरा-युग्मविकल्पी अभिव्यक्ति (Inter-allelic expression) : यह अभिव्यक्ति भी तीन प्रकार की होती है।

(i) योज्य (Additive) : दो अयुग्मविकल्पी जीन एक ही लक्षण को प्रभावित करती हैं तथा एक दूसरे के प्रभाव को बढ़ाती है।

(ii) पूरक (Complementary) : दो और अधिक जीन आपस में मिलकर विशेषक (trait) की अभिव्यक्ति को नियंत्रित करती हैं। इनमें से कोई भी जीन स्वयं में अप्रभावी होती है।

(iii) प्रबल (Epistatic) : एक जीन दूसरी जीन की अभिव्यक्ति को रोकती है।

अध्याय - 5

कीट व्यवहार और पादप प्रतिरोध

किसी भी जीव समष्टि की प्रजनन क्षमता सदैव उस आवास की क्षमता से अधिक होती है जो उसे वहन अथवा आधार प्रदान करता है। इसके कारण नवजातों को वयस्क अवस्था तक पहुंचने के लिए अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना होता है। विशेष कर कीटों में जहां जैविक विभव बहुत अधिक होता है वहीं उनके 95 प्रतिशत नवजातों अथवा प्रारंभिक अवस्थाओं की मृत्यु हो जाती है। इसके पीछे जैविक तथा अजैविक कारकों की परस्पर क्रिया होती है। जब किसी कीट जाति को एक ऐसे पर्यावरण में प्रवेश कराया जाता है जो आंशिक रूप से जैविक तथा अजैविक कारकों की अनुपस्थिति दिखाता है तो कुछ प्रतिवाद भी मिलते हैं। जैविक और अजैविक कारक कीट समष्टि को संतुलित स्तर पर रखते हैं। इन कारकों की अनुपस्थिति में कीट जाति अथवा अन्य नाशक जीव जातियों का अचानक प्रादुर्भाव हो सकता है। पारिस्थितिक तंत्र में विक्षोभ के कारण कीट संख्याएं कृषि में क्षति पहुंचाने के स्तर तक पहुंच जाती है जो एक ही क्षेत्र में एक ही फसल के बार-बार लगाए जाने तथा एक-सी रासायनिक बनावट वाली कृषि किस्मों को अधिकतर लगाने से आता है।

1. अपरिपक्व अवस्था की उत्तरजीविता को संकट

पादप भक्षी कीटों की नवजात अथवा अपरिपक्व अवस्थाओं को जीवन के लिए बड़े पैमाने पर प्रतिकूल कारकों का सामना करना पड़ता है। इन कारकों में प्रमुख रूप से तापक्रम, वर्षा, भूमि का प्रकार आदि घनत्व स्वतंत्र कारक और रोग, परजीविता, अंतराजातीय संघर्ष आदि घनत्व आश्रित कारक आते हैं। कीट व्यवहार और पादप प्रतिरोध के अंतर्गत पादप प्रतिरक्षा क्रियाविधियां महत्वपूर्ण हैं जो जैविक तथा घनत्व स्वतंत्र होती है।

(i) पादप प्रतिरक्षा साधन : एक कीट के विरूद्ध सबसे अधिक ग्रहणशील पादप भी अपने अंदर प्रतिरक्षा साधन रखता है। इस पर भरण करती कीट अवस्था पूरी की पूरी संख्या में जीवित नहीं रहती है अथवा अधिकतर नष्ट हो जाती है। यूरोपियन मक्का बेधक (*ओस्ट्रीनिया नूविलेलिस*) के विरुद्ध प्रतिरोध कार्यक्रमों में मक्के की प्रमाणिक ग्रहणशील अंतः प्रजात किस्म "डब्लू एफ 9" का उपयोग प्रतिरोधी किस्मों के साथ तुलना करने के लिए किया गया है। प्रयोगशाला में "डब्लू एफ 9" पर जब बेधक के नवजात लार्वों को पोषित किया गया तो उनमें से 80 प्रतिशत की मृत्यु 6 दिनों में ही हो गई (बैक और लिली 1949)। इन अनुसंधानों से यह भी स्पष्ट हुआ कि अन्य अतःप्रजातों की तुलना में "डब्लू एफ 9" में बेधक के विरूद्ध आयु से संबंधित ग्रहणशीलता तेजी से कुछ सीमा तक ही बढ़ती है। टिंगे और साथियों (1975) ने देखा कि 21 दिन पर "डब्लू एफ 9" में 60 प्रतिशत और प्रतिरोधी किस्मों पर 100 प्रतिशत लार्वों की मृत्यु हो गई।

आहार की दृष्टि से देखा जाए तो परपोषी पादप का स्तर प्रयोगशाला में बनाए गए संतुलित आहारों की अपेक्षा निम्न कोटि का होता है। बैक (1974) के अनुसार लेपीडोप्टेरा गण के अंतर्गत

आने वाले कई पादपभक्षी परपोषी पादप की अपेक्षा प्रयोगशाला में बनाए गए कृत्रिम आहार पर तेजी से विकसित हुए साथ ही उनके शरीर का भार, प्रजनकता और आयुकाल बढ़ गए। ये आहार पादपीय भौतिक और रासायनिक प्रतिरक्षा कारकों से रहित थे। इसके अतिरिक्त इनमें शायद संवेदी कारकों जैसे आकर्षी और उद्दीपकों की भी कमी थी जो प्राकृतिक अवस्था में जीवित रहने के लिए आवश्यक होते हैं।

(ii) कृषि-समस्या : कीट की उत्तरजीविता और परपोषी पादप के उपभोग का निर्धारण करने वाले कारकों के बीच अस्थिर संतुलन होता है। एक ऐसी कृषि किस्म जो प्रतिरोधी आंकी गई है पादप प्रतिरक्षा की दृष्टि से ग्रहणशील कृषि किस्म से कुछ ही भिन्न हो सकती है। कोई भी विशेषता यदि परपोषी पादप के उपभोग को रोकती है तो चाहे उसका प्रभाव थोड़ा ही क्यों न हो कृषि में परपोषी-पादप प्रतिरोध की व्यावहारिकता के लिए बहुत प्रभावी सिद्ध हो सकती है।

कीटों के व्यवहार में परपोषी पादप के उपभोग की दृष्टि से अनुकूलन आए हैं। इन जटिल घटनाओं को समझने के लिए कीट और पादप के बीच की अनुकूलन संबंधी पारस्परिक क्रियाओं की विकास प्रवृत्ति को समझना होगा। इसका कृषि से संबंधित महत्व प्रभावी तथा स्थाई प्रतिरोधी पादप किस्मों का विकास करना है।

2. परपोषी-पादप विशिष्टता

प्रकृति में लगभग एक करोड़ कीट जातियों में से लगभग आधी पादपभक्षी हैं (ब्रूस 1946)। कोई भी एक पादप सभी पादपभक्षी कीटों के लिए ग्रहणशील नहीं है और न ही एक कीट सभी पादप जातियों का उपभोग परपोषी-पादप के रूप में कर सकता है। इस सब के होते हुए भी एक बहुत बड़े पैमाने पर परपोषी-पादप

विशिष्टताएं दृष्टिगोचर होती हैं। विभिन्न पादप जातियों पर सामान्य रूप से भरण करने वाला कीट टिड्डी अथवा लोकस्ट जातियां हैं (उदाहरण-*सिस्टोसरका ग्रीगेरिया* और *लोक्स्टा माइग्रेटोरिया*) और केवल एक ही पादप जाति के विशेष भागों पर भरण करने वाला विशिष्ट कीट, नोरदर्न कार्न रूटवर्म (*डआब्रोटिका लोंगीकोर्निस*) भी है।

(i) विशिष्टता की श्रेणियां : पादपभक्षी कीटों की तीन श्रेणियां एकाहारी, अल्पभक्षी और विविधभक्षी परपोषी-पादप के परिसर की विशिष्टता पर निर्भर करती हैं। परपोषी पादप विशिष्टता को इस आधार पर और विभाजित किया जा सकता है कि कीट किस भाग का उपयोग कर रहा है जैसे - लीफ माइनर, तनाबेधक, रुट मेगट आदि अथवा लार्वा और वयस्क अवस्थाओं की भरण विशिष्टताओं में भिन्नताएं। उदाहरण के तौर पर नोरदर्न कार्न रूटवर्म के लार्वे एकाहारी होते हैं पर वयस्क विविधभक्षी होते हैं। विभिन्न कीट जातियां एक पादप, अथवा पादप के ऊतकों को वर्ष के विभिन्न समयों पर अथवा पादप के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में उपभोग करते हैं। जैसे- जैक पाइन सॉफ्लाई चीड़ की पुरानी नीडलों पर ही भरण करती हैं। जबकि नई नीडल पर भरण नही करती है। इसके विपरीत विंटरमाथ (*ओपेरोटेरा ब्रूमेटा*) के लार्वे ओक के पेड़ की नयी पत्तियों को खाते हैं जबकि परिपक्व पत्तियों में टेनिन की उपस्थिति लार्वों के लिए अपचकारी होती है।

(ii) विकास संबंधी परिवर्तन : पादपभक्षी कीटों की परपोषी विशिष्टताएं ऐसे बहुआयामी प्रतिबिंबों का समूह है जो कीट समष्टियों को स्थान और समय में अलग करता है। संक्षेप में कई समूहों के कीटों के परपोषी-पादप परिसर में उत्परिवर्तनों से अधिक अलगाव आया जिससे नयी पादप जातियों का विकास हुआ।

पादप विशिष्टताओं की इस विविधता ने साधनों का बंटवारा और पारिस्थितिक गर्तस्थ के एक बड़े समूह के उपयोग को स्वीकारते हुए अंतराजातीय संघर्ष को कम किया। यह तथ्य इस सिद्धांत को बल देता है कि परपोषी विशिष्टता विविधभक्षी प्रवृत्ति से एकाहारी प्रवृत्ति की ओर आई है (डीथियर 1954)। यह विवाद का विषय है कि एकाहारी प्रवृत्ति अच्छी है अथवा विविधभक्षी प्रवृत्ति, साथ ही उच्च श्रेणी की विविधभक्षी प्रवृत्ति के शरीरक्रियात्मक, पारिस्थितिक और विकास संबंधी लाभ अथवा हानि क्या हैं?

विविधभक्षी कीट सरलता से एक पादप से दूसरे पादप पर चले जाते हैं जो एक प्रकार से परपोषी-पादप न होकर खाद्य पादप हैं। इसका अर्थ है कि विविधभक्षी कीट जाति पर पादप-संबंधित चयन दबाव कम होता है उन कीटों की अपेक्षा जो उच्च श्रेणी की पादप विशिष्टता दिखाते हैं। विविधभक्षी कीटों में पादपों के बीच इच्छित पादपों का भेद करने का गुण अधिक विशिष्ट नहीं होता पर पादप रसायनों के हानिकारक प्रभावों को विघटित करने के लिए उपापचयी तंत्र बहुत अधिक विकसित होता है और क्षमता में बहुत बड़ा होता है (फीने 1975)।

3. परपोषी-पादप चयन

परपोषी-पादप चयन ऐसी व्यावहारिक शृंखला है जिसके द्वारा कीट परपोषी तथा अपोषक पादप के बीच अंतर करता है। परपोषी पादप वरीयता भी व्यावहारिक प्रक्रिया है जिसमें कीट अपने परपोषी-पादप परिसर में से कुछ पादपों को अन्य पादपों में से छांट लेता है। परपोषी पादप चयन मादा कीट की प्रक्रिया है जिसमें वह अंडे देने के लिए उपयुक्त पादप को ढूंढ़ती है। यूरोपियन मक्का तनाबेधक की मादा मक्का, ग्लेडियोलस, हरी मिर्च, यहां तक की आलू पर भी अंडे दे सकती है। यह इन एकांतर पादपों

की उपस्थिति पर निर्भर करेगा पर इन सभी पादपों की उपस्थिति में वह केवल मक्के पर ही अंडे देगी। इसलिए यूरोपियन मक्का तना वेधक के लिए मक्का इच्छित अथवा वरीयता वाला परपोषी पादप है।

(i) व्यवहार एक अनुक्रमिक क्रिया : परपोषी चयन क्रियात्मक व्यवहार है जो सरल व्यावहारिक अनुक्रियाओं का एक क्रम है। इस क्रम की प्रत्येक क्रिया कीट को ऐसी स्थिति में लाती है जहां उपयुक्त उद्दीपन उसे अगली क्रिया के लिए उत्साहित करता है। व्यावहारिक घटकों के ऐसे कालिक प्रतिरूप (पेटर्न) आंतरिक इच्छाओं से संबंधित होते हैं जैसे अंडा देने अथवा भोजन की इच्छा। उदाहरण के लिए भूखे लीफ हापर छोटे क्रम वाले उद्दीपन/अनुक्रिया प्रक्रम द्वारा अपने परपोषी पादप को ढूंढ़कर उस पर भरण करते हैं।

नूओरटेवा (1952) के अनुसार लीफ हापर का पादप की ओर उड़ान मार्ग पादप के रंग से उद्दीप्त होता है, पादप पर उनका उतरना घ्राण उद्दीपक से प्रेरित होता है, शूण्डिका द्वारा ऊतकों का परीक्षण पत्तियों के रंग और स्पर्श उद्दीपनों से प्रेरित होता है, ऊतकीय अम्लता से उत्पन्न उद्दीपन उसका वल्कल (फ्लोयम) तक मार्गदर्शित करते हैं और अंत में वल्कल रस से उत्पन्न भरण उद्दीपक लगातार भरण को प्रेरित करते हैं।

परपोषी पादप के चयन में प्रयुक्त होने वाले व्यावहारिक क्रम कभी-कभी बहुत जटिल होते हैं। जोहरेन (1968) के अनुसार पत्तागोभी की रूटफ्लाई (*हाइलेमिया ब्रेसिकी*) बहुत विस्तृत व्यवहार संबंधी क्रमों की शृंखला को पारकर परपोषी पादप का चयन कर पाती है। इन क्रमों की शृंखला निम्नलिखित है : (1) पादप तक उड़ान (दृष्टि और घ्राण उद्दीपकों से प्रेरित) (2) पत्ती की सतह

पर उतरना (दृष्टि और घ्राण उद्दीपक) (3) पत्ती की सतह पर घूमना (रसायन से उत्पन्न स्पर्श उद्दीपक) (4) तने के साथ घूमना (पत्ती और तने की शिराओं से उत्पन्न स्पर्श उद्दीपक) (5) पादप आधार के पास भूमि पर चारों ओर घूमना (स्पर्श उद्दीपक) (6) अंड निक्षेपक का बाहर निकालना (स्पर्श और संभवतः घ्राण उद्दीपक) (7) गति का रुकना और अंड निक्षेपक का भूमि में डालना (स्पर्श उद्दीपक) (8) पिछले पैरों से भूमि खोदना (भूमि की नमी, प्रकाश की तीव्रता और स्पर्श उद्दीपक संबंधी कारक) (9) अंड निक्षेपण (भूमि की नमी, प्रकाश की तीव्रता और स्पर्श संबंधी कारक)।

परपोषी पादप के चयन से संबंधित व्यावहारिक क्रियाएं सामान्य घटनाएं हैं जो यह दिखाती हैं कि परपोषी पादप अंड निक्षेपण अथवा भरण अथवा दोनों ही के लिए स्वीकार हैं अथवा नहीं। अपनी उड़ान से एक हरी सतह पर पहुंचने पर एफिड अपनी शूण्डिका से माध्यम का निरीक्षण करता है। यदि इस क्रिया के अंतर्गत उपयुक्त रसायनिक उद्दीपक नहीं मिलता है तो एफिड अपनी शूण्डिका को पीछे खींच लेता है और उड़ान शुरू कर देता है जब तक वह दूसरे हरे माध्यम को छू नहीं लेता है। जहां निरीक्षण प्रक्रिया फिर दोहराई जाती है। एक व्यावहारिक क्रम तभी टूटता है जब अगली क्रिया के लिए उचित उद्दीपन नहीं मिलता है। इससे कीट फिर अपनी पुरानी प्रावस्था में आ जाता है। कीट को कई व्यवहार संबंधी चरणों अथवा "जांच स्थलों" से गुजरना पड़ता है जिनमें प्रत्येक विशेष प्रकृति का उद्दीपन उत्पन्न करता है। इस कारण कीट के लिए अनुपयुक्त निर्णय के अवसर खत्म हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कीट किसी ऐसे पादप पर अंडे नहीं देता जो परपोषी पादप नहीं है। इस प्रणाली में प्रत्येक

चरण पर उद्दीपक की प्रकृति आपेक्षिक रूप से सरल हो सकती है। अतः कीट को हर चरण पर साधारण निर्णय लेने होते हैं जिससे वह एक जटिल निर्णय लेने से बच जाता है।

(ii) प्रकीर्णन और खोज : प्रकीर्णन (बिखरना) से कीट संख्या का समान रूप से वितरण होता है साथ ही नए क्षेत्रों में भी अतिक्रमण हो सकता है। खोजी प्रवृत्ति से पादपों से उत्पन्न उद्दीपनों के संपर्क में आने की अधिक संभावना रहती है जिसकी परिणिती अंड निक्षेपण अथवा भरण में होती है।

इधर उधर जाने की प्रवृत्ति केवल वयस्क कीट तक ही सीमित नहीं होती है बल्कि नवजात लार्वों में भी देखी जाती है। कई नवजात लार्वे अंडों से निकलने के बाद चारों ओर बिखरते हैं जब तक कि उद्दीपकों का प्रभाव उन्हें स्थिर होकर भरण के लिए बाद्य नहीं करता है। प्रकीर्णन और खोज संबंधी क्रियाओं में भेद करना अक्सर कठिन होता है। वे अपने अंदर समाये प्रेरक बल और उपस्थित उद्दीपनों के प्रति कीट की क्रिया में भिन्न होते हैं। जैसे सपक्षक एफिड हरी पत्तियों के प्रति नकारात्मकता और नीले आकाश की ओर सकारात्मकता दिखाते हैं और नीले आकाश की ओर उड़ पड़ते हैं तथा घंटों इधर उधर उड़ते रहते हैं। जब प्रकीर्णन व्यवहार परिवर्तित होता है तो वे हरी पत्तियों अथवा हरे पादपों पर उतरते हैं। यदि वह पादप जिस पर कीट उतरा है अपोषक पादप है तो एफिड फिर प्रकीर्णन व्यवहार दिखाते हैं और उड़ान जारी हो जाती है। इस प्रकीर्णन और खोज में एकांतरण तब तक चलता रहता है जब तक एफिड परपोषी पादप को ढूंढ़ नहीं लेता है। इसी प्रकार एक अंडे देती तितली जब अपने अंडे विभिन्न पादपों पर एक-एक करके देती है तो प्रकीर्णन और खोज क्रिया के बीच एकांतरण दिखाती है।

खोज व्यवहार सदैव प्रकीर्णन से जुड़ा नहीं होता है, जब किसी भरण करते कीट को भोजन से अलग कर दिया जाए अथवा अलग हो जाए अथवा भोजन खत्म हो जाए अथवा इसके भरण व्यवहार में विकास संबंधी अंतर आ जाए तो यह फिर से खोजी हो जाता है अथवा खोज संबंधित व्यवहार दिखाता है जो किसी प्रकार प्रकीर्णन व्यवहार से संबंधित नहीं होता है। अंडनिक्षेपण व्यवहार में प्रकीर्णन और खोजी क्रियाओं के संबंध में स्पष्ट भेद नहीं किया जा सकता है।

(iii) अभिमुखता तथा पहचानना : भौतिक और रासायनिक कारक मिलकर अंडे देने वाली मादा को संभावी परपोषी पादप की ओर निर्देशित करते हैं। कीट पहले अभिमुखता व्यवहार (पादप की ओर आना) फिर पहचान व्यवहार दिखाता है जिससे पादप परपोषी की भांति स्वीकृत अथवा अस्वीकृत कर दिया जाता है। अधिकतर कीटों में भोजन के स्रोतों से अभिमुखता के लिए आवश्यक चलना और पहचान व्यवहार नियंत्रित होते हैं। कुछ जातियों में अंडे परपोषी पादप के पास नहीं मिलते हैं जैसे बहुत सी लोकस्ट जातियां और टिड्डे भूमि में अंडा देते हैं और उनको अंडनिक्षेपण के लिए किसी पादप उद्दीपक की आवश्यकता नहीं होती जो अंडनिक्षेपण व्यवहार छोड़े। हेस्पेरीडी और हेपिएलिडी कुलों की तितलियां अपने अंडों को उपयुक्त वनस्पति पर उड़ते समय छोड़ देती हैं। अधिकतर कीट जातियों में अंडे उन्ही पादपों पर दिए जाते हैं जो लार्वों के परपोषी पादप हैं जिससे अंडों से निकलने वाले नवजात लार्वे भोजन के लिए कठिन और दुर्गम खोज से बच सकें।

भौतिक कारक : कीटों का परपोषी पादप की ओर आना तथा उसे पहचानना भौतिक कारकों के प्रभाव से होता है जिसमें

दृष्टि और स्पर्श उद्दीपन सम्मिलित हैं। कीट अपनी गति के समय रंग और आकारों की पहचान कर लेता है। तितलियां मकरंद की खोज में पीले, नीले और कुछ स्थितियों में परा-बैंगनी रंगों की ओर आकृष्ट होती हैं। इसके अतिरिक्त जब वे अंड-निक्षेपण के लिए स्थान ढूंढ़ रही होती हैं तब हरा रंग उन्हें वहां उतरने के लिए बाध्य करता है। अनेक कीट जातियां पीले रंग की ओर आकर्षित होती हैं। विविधभक्षी करेवियन (वेस्टइंडीज) फल मक्खी (fruit fly) नारंगी और पीले रंग की और आकर्षित होती हैं। वे फल जिन पर यह फल मक्खी आक्रमण करती है इन्हीं रंगों के होते हैं (ग्रीनी और साथी 1977)। क्रिंग (1972) के अनुसार हरी पत्तियों से परावर्तित होता प्रकाश पीले रंग का आभास देता है जिससे कई सफेद मक्खियां और एफिड इस पीले परावर्तित प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं। इन कीटों ने पीले कागजों अथवा पीला रंग की गई सतहों पर आकर्षित होकर दिखाया है कि पीले रंग कीटों को पादपों की ओर आकर्षित करने के लिए उद्दीपक का कार्य करता है। वयस्क कीटों में लार्वो की अपेक्षा रंगों में भेद करने की क्षमता अधिक होती है। लेकिन लेपीडोप्टेरा गण की सूंडियों (इल्लियां) तथा कोलिओप्टेरा गण के भृंगकों में रंग का भेद करने की अच्छी क्षमता होती है।

वोलर और प्रोकोपी (1976) ने बताया कि पादप का आकार अथवा आकृति कीट को पादप की ओर आने के लिए प्रेरित करते हैं। फल मक्खियों ने अंडनिक्षेपण के लिए उपयुक्त स्थान ढूंढ़ने के समय इस प्रकार का व्यवहार दिखाया। मुल्करन (1969) के अनुसार भोजन की खोज में कीटों की कई किस्मों की सूंडियां उर्ध्वाकार आकृतियों की ओर मुड़ती हैं। इसी प्रकार लोकस्ट (टिड्डी) और ग्रासहोपर भी क्षैतिज आकृतियों की ओर कभी न

मुड़कर उर्ध्वाकार आकृतियों की ओर ही बढ़ते हैं। रात्रिचर कीट अंधकार की अपेक्षा धीमे प्रकाश में अधिक क्रियाशील रहते हैं और विभिन्न आकृतियों से प्रभावित होते हैं। तम्बाकू का होर्नवर्म शलभ अंडनिक्षेपण के लिए स्थान ढूंढ़ने के लिए उड़ान के समय स्पष्ट आकृतियों (जैसे पादप) की ओर आकर्षित होता है। इन कीटों की आंखों पर यदि अपारदर्शी पेंट लगा दिया जाए तो वे आकृतियों अथवा अपने परपोषी पादप को ढूंढ़ नहीं पाते हैं (यामामोटो और जेन्किन्स, 1972)। अतः कीटों का भोजन अथवा अंडनिक्षेपण के लिए पादपों की ओर जाना बहुत कुछ दृष्टि संबंधी कारकों पर निर्भर करता है।

कीट जब पादप की ओर आता है तब स्पर्श उद्दीपनों का प्रभाव शुरू होता है। इनके प्रभाव से पादपों की पहचान होती है जो अंडनिक्षेपण अथवा भरण से पूरी हो जाती है। मादा कीट जिस माध्यम अथवा सतह पर अंडे देने वाली होती है उसके भौतिक लक्षण प्रायः बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। कीट के अंडनिक्षेपण पर यांत्रिक अभिग्राहक होते हैं जो स्पर्श उद्दीपनों से उत्पन्न संवेदी अनुभूति को ग्रहण करते हैं। कई उदाहरणों में पत्तियों की रोमिलता अंडनिक्षेपण के लिए महत्वपूर्ण पाई गई है। अंडनिक्षेपण के लिए कुछ कीट अरोमिल सतहों को तथा कुछ कीट बहुत अधिक रोमिलता वाली सतहों को पसंद करते हैं। सतह के अन्य लक्षण भी अंडनिक्षेपण को प्रभावित करते हैं। गुप्ता और थोरस्टेनशन (1960) के अनुसार डायमंड बैक शलभ (diamand back moth) तथा अन्य कीट जातियों को अंडनिक्षेपण के लिए ऐसी सतह की आवश्यकता होती है जिसमें दरारें हों।

पत्तागोभी की जड़मक्खी जब अपने अंडे परपोषी पादप की सतह के पास भूमि पर देती है तो उसे भूमि के विशेष आकार के

कणों की आवश्यकता होती है। इसका निर्णय भूमि से उत्पन्न स्पर्श उद्दीपनों को प्राप्त करने के बाद अंडनिक्षेपक करता है (जोहरेन, 1968)। अंडनिक्षेपण की अपेक्षा भरण के लिए पादप के चयन में स्पर्श कारकों की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि पादपों के भौतिक लक्षणों का परपोषी पादप चयन में और सफलतापूर्वक उपभोग में महत्व नहीं है। बहुत सी स्थितियों में यह पाया गया है कि कठोर शूकिकाओं, घनी रोमिलता और पत्तियों के कठोर किनारे पादप का उपयोग करने में बाधक होते हैं। कई कीटों द्वारा कृत्रिम आहारों, जिनके भौतिक लक्षण प्राकृतिक परपोषी पादपों से भिन्न होते हैं, का भरण के लिए उपभोग यह दर्शाता है कि भोजन की पहचान में स्पर्शकारक भी एक गौण भूमिका निभाते हैं। कीटों के मुखांगों पर स्थित अनेक यांत्रिक अभिग्राहक काटने, चबाने और निगलने की यांत्रिकी में क्रियाशील होते हैं। चूषक कीट जैसे एफिड को संभवतः अपने अत्यधिक विशिष्ट और कोमल मुखांगों द्वारा जांचने की क्रिया से उत्पन्न यांत्रिक बलों की निगरानी के लिए संवेदी प्रकृति के यांत्रिक अभिग्राहक तंत्र की आवश्यकता होती है।

रासायनिक कारक : एक पादप जाति के लिए शायद ही कोई एक भौतिक कारक आवश्यक होता है जबकि रासायनिक लक्षण उच्च कोटि की विशिष्टता दिखा सकता है। अतः यह कहना आश्चर्यजनक नहीं होगा कि वह रासायनिक उद्दीपन भरण और अंडनिक्षेपण के लिए पादप के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका रखता हो। वाष्पशील रसायन काफी दूरी से कीटों को पादपों की ओर आने को प्रभावित करते हैं (घ्राण उद्दीपन)। इसी के साथ-साथ जब कीट पादप के भौतिक स्पर्श में आता है तो ये आदंश, जांचना और अंडनिक्षेपण को उद्दीप्त करते हैं। अंतिम

पहचान प्रक्रम जिसमें पादप का चुनाव अथवा परिहार किया जाता है, वह अवाष्पशील रसायनों की स्पर्श रसोग्राहियों पर क्रिया से संपन्न होता है।

कीट जब परिपोषी पादपों को ढूंढ़ रहे होते हैं तो घ्राण उद्दीपनों के मिलने पर क्रियाशील हो जाते हैं और गंध स्रोत की ओर चल देते हैं। पादप की ओर कीट के जाने की क्रिया विधि अभी पूर्ण रूप से मालूम नहीं हो पाई है पर इतना स्पष्ट है कि गंध उन्हें पादप की ओर जाने के लिए प्रभावित करती है जिससे अन्य उद्दीपनों जैसे वायु की दिशा और दिखने वाले लक्ष्य की गंधों की ओर जाने की अनुक्रिया के पीछे छिपी क्रियाविधियां अभी आंशिक रूप से ज्ञात हैं पर इतना स्पष्ट है कि गंध दूसरे उद्दीपनों को आरंभ करने की भूमिका निभाती है। जब इधर-उधर घूमते हुए कीट गंध की परिधि में घुसते हैं तो दृष्टि प्रेरक उद्दीपन का उपयोग गंध की दिशा की ओर करते हुए बढ़ना शुरू कर देते हैं। कीटों की गति कभी-कभी तेज होती है तथा निश्चित एनीमोटेक्सिस दिखाती है (कनैडी 1977)। जब तक कीट गंध की परिधि में रहता है तब वह लगभग सीधा अथवा टेढ़ा मेढ़ा उड़ान पथ बनाए रखता है। यदि वह इस परिधि से उड़ते उड़ते बाहर निकल जाता है तो फिर इधर उधर उड़ना अथवा घूमना शुरू कर देता है जो इसे फिर गंध की परिधि में ले आता है। इस प्रकार का अभिमुखता संबंधी व्यवहार अंडनिक्षेपण अथवा भरण की खोज के समय दिखाई पड़ता है।

कीट जब गंध स्रोत के पास आता है तो गंध की सांद्रता का अनुपात अधिक हो जाता है जिसे मापा जा सकता है। इससे रासायनिक अभिमुखता उत्पन्न होती है (कनैडी 1977)। आकर्षित करने वाली गंध की अधिक सांद्रता गति को रोक भी सकती है

(विरामक अथवा अवरोधक प्रभाव) जिसके फलस्वरूप उड़ते हुए कीट को उतरने पर बाध्य करती है (हाऊस 1968)। पादपों के पास आने पर कीट घ्राण संबंधी अतिरिक्त सूचना प्राप्त कर पादपों के बीच भेद कर लेता है। मिचेल, 1977 के अनुसार पत्ता गोभी के खेतों में पत्ता गोभी की तितली (cabbage butterfly) को कुछ पादप अंड निक्षेपण के लिए अधिक अच्छे लगते हैं। इसके पीछे इन पादपों में वाष्पशील रसायन एलिल नाइट्रिल की उपस्थिति है जो पत्ता गोभी की तितली को आकर्षित करता है। पादप परपोषी है अथवा नहीं इसके बीच भेद थोड़ी दूरी (5 से 20 से.) से ही हो पाता है। तंबाकू क़ा होर्नवर्म शलभ लगभग हर बार तंबाकू के पादप पर ही जाता है लेकिन कभी अपोषक पादप पर भी उतर जाता है तो फौरन वहां से हट जाता है।

उपयुक्त परपोषी पादप की ओर अभिमुखता तथा परपोषी पादप और अनुपयुक्त पादप में भेद करने के लिए बहुत अधिक विकसित संवेदी तंत्र की आवश्यकता होती है। इसके लिए कीट का ऐसे पादप से उठ रही गंध के प्रति अनुक्रिया दिखाना आवश्यक है जो मिश्रित वनस्पति के बीच स्थित है। विशिष्ट पादप गंध कभी भी एक यौगिक नहीं होती है बल्कि कई जटिल वाष्पशील यौगिकों का मिश्रण होती है। आलू के पादपों से उठने वाली गंध पत्तियों के एल्कोहल और एल्डीहाइडों का विशेष मिश्रण है। इनमें से अकेला एक पादप के लिए महत्व का नहीं होता है। कोलोरेडो आलू भृंग यौगिकों के मिश्रण की ओर आकर्षित होती है जो आलू का पादप उत्पन्न करता है। कभी-कभी पादप के जटिल वाष्पशील मिश्रण का एक घटक कीट अभिमुखता को प्रभावित करता है। अल्फा-पाइनीनी शंकुधारियों द्वारा उत्पन्न टरपीनों में से एक है जो शंकुधारियों पर निवास कर रही कीट जातियों पर तीव्र अनुक्रिया

दिखाता है। शंकुधारी पादपों पर आक्रमण करने वाले अधिकतर कीट सरसों के तेलों की ओर विशेष रूप से आकर्षित होते हैं। ये तेल शंकुधारी पादपों में व्यापक रूप में उपस्थित होते हैं। इन जटिल यौगिकों को प्रभावी "टोकन उद्दीपक" अथवा "प्रतीक उद्दीपक" कहते हैं क्योंकि ये परपोषी पादप की उपस्थिति की सूचना देते हैं।

एक बार जब कीट का पादप से भौतिक संबंध बन जाता है तब टार्ससों, शृंगिकाओं, मुखांगों अथवा अंडनिक्षेपण पर उपस्थित रसोग्राही पादप सतह में रासायनिक लक्षणों से उत्पन्न उद्दीपनों को ग्रहण करते हैं। कीटों की विशेष गतिविधियां रसायनिक उद्दीपनों को बढ़ा देती हैं। उदाहरण के लिए तितलियों में अंडनिक्षेपण के समय अगले पैरों द्वारा सतह को थपथपाना अथवा खुरचना, अथवा लोकस्ट (टिड्डी) में मेक्सिलरी और लेवियल स्पर्शकों की "ड्रमिंग" (ड्रम बजने के समान ध्वनि)। पत्ता गोभी की तितली के टार्सस पर उपस्थित रसोग्राही सिनेग्रिन की ओर अनुक्रिया दिखाते हैं (मा और शूनहोवन, 1973)।

सतह का परीक्षण छूने अथवा अंडनिक्षेपण से भेदने, अथवा आदंश और मुखांगों से जांच "रासायनिक कारकों" के प्रभाव से होती है जो कि "उत्तेजक" की भांति कार्य करते हैं। ये गंध कारकों के समान होते हैं जो कीटों को पादप की ओर आकर्षित करते हैं। यदि सतह परीक्षण के शुरू में ही पादप से मिलने वाला उद्दीपन यह बताता है कि परपोषी स्वीकार है तो भरण अथवा अंडनिक्षेपण की क्रिया शुरू हो जाती है। ये "रासायनिक कारक" उद्दीपक है। यदि सतह के प्रारंभिक परीक्षण में अस्वीकार पादप की सूचना मिलती है तो व्यवहार संबंधी प्रतिमान (पैटर्न) में व्यवधान आ जाता है और कीट पादप को छोड़ देता है। इस

प्रकार के उद्दीपक "अपमार्जक" अथवा "निवारक" हैं। जबकि "आकर्षी", "प्रतिकर्षी" और अनेक "उत्तेजक" घ्राण पदार्थ हैं और उद्दीपक और अपमार्जक प्रायः रससंवेदी होते हैं। अधिकतर महत्वपूर्ण "भरण उद्दीपक" सामान्य पोषक पदार्थ जैसे शर्करा और अमीनो अम्ल होते हैं ना कि परपोषी पादप विशेष यौगिक होते हैं।

टोकन उद्दीपक और पोषक पदार्थ : परपोषी विशिष्टता और परपोषी चयन कीटों की ऐसे रसायनों के प्रति अनुक्रियाओं से निर्धारित होते हैं जो कुछ पादपों के समूहों की लाक्षणिक विशेषता है (फ्रेन्किल 1969)। इस प्रकार के पदार्थ जैसे टारपीन, फ्लेबोनाइड, एल्केलाइड, नाइट्राइल आदि कीटों के पादपों की ओर आने और परपोषी पादप की पहचान में टोकन उद्दीपकों का कार्य करते हैं। इन कारकों के प्रभाव को ग्रहण करने के लिए कीटों के विभिन्न अंगों पर अभिग्राहक होते हैं। जैसे पत्ता गोभी की तितली की "मेक्सिली पर सिनिग्रिन" का ज्ञान करने के लिए अभिग्राहक होते हैं (शूनहोवन, 1967)।

पादपों में पाए जाने वाले सामान्य पोषक पदार्थ की ओर भी कीट व्यावहारिक अनुक्रियाएं दिखाते हैं। कई कार्बोहाइड्रेट जिनमें सूक्रोज़, ग्लूकोज और फ्रक्टोज विशेष हैं अनेक पादप भक्षी कीटों के भरण को उद्दीप्त करते हैं। सूक्रोज़ सबसे प्रमुख भरण उद्दीपक माना गया है। इसके अतिरिक्त कई अमीनो अम्ल, स्टीरोल, फोस्फोलिपिड तथा कुछ अन्य जैव-रसायन भी कीटों के भरण संबंधी व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन पदार्थों में से कई महत्वपूर्ण पोषक मूल्य के होते हैं। इन मुख्य पोषक पदार्थों के प्रति कीटों की क्रिया यह स्पष्ट करती है कि परपोषी के चयन से संबंधित व्यवहार और कीट की पोषण संबंधी आवश्यकताओं में

संबंध है। इससे आभास होता है कि टोकन उद्दीपक भरण आरंभक का कार्य तथा सामान्य पोषक पदार्थ जैसे सूक्रोज़ भरण उद्दीपक का कार्य करते हैं। क्रूसीफेरी कुल के पादपों में सिनिग्रिन की उपस्थिति टोकन उद्दीपक का कार्य करती है तथा पत्ता गोभी की तितली की सूंडियों को पादपों पर आदंश (काटने के लिए) को प्रेरित करती है जबकि भरण को चलाने के लिए परपोषी पादप के ऊतकों में उपस्थित सूक्रोज़ तथा अन्य पोषक पदार्थ दोनों मिलकर एक की अपेक्षा अधिक प्रभावी भरण उद्दीपक होते हैं (गोथिल्क और बैक 1967)।

कीट टोकन उद्दीपकों अथवा पोषक पदार्थों में से अकेले किसी के संपर्क में नहीं आता है बल्कि इनके मिश्रणों के विभिन्न अनुपातों से उसका संपर्क होता है। अतः परपोषी का चयन और कीट का भरण व्यवहार जटिल उद्दीपन प्रतिरूपों (पैटर्न) पर आधारित होता है। टोकन उद्दीपनों और पोषक पदार्थों से उत्पन्न जटिल संवेदी प्रतिरूपों को कीट का तंत्रिका तंत्र ग्रहण करता है तथा निर्णय लेता है कि कौन सा प्रतिरूप स्वीकारना है। इसी पर भरण क्रिया का चलते रहना अथवा रुक जाना निर्भर करता है। इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि विभिन्न कीट जातियां चाहें वे अतिव्याप्त पादप विशिष्टता वाली हों, विभिन्न संवेदी कारकों के प्रति अनुकूलित होती हैं। इसलिए एक ही पादप के संवेदी निवेश के भिन्न प्रतिरूपों को प्राप्त करती हैं (शूनहोवन और साथी 1972)। इस प्रकार परपोषी पादप का चयन साधारण उद्दीपनों पर आधारित न होकर जटिल रासायनिक पैटर्न पर आधारित होता है जिसमें पादपों से उत्पन्न उद्दीपनों का कीट द्वारा हर प्रावस्था में विश्लेषण कर निर्णय लिया जाता है कि उद्दीपन पर्याप्त है अथवा नहीं।

व्यक्तिगत परिवर्तनशीलता : एक ही जाति के कीटों के व्यवहार में भिन्नताएं वंशागत परिवर्तनशीलता अथवा विभिन्न परिस्थितियों से कीटों का सामना होने से आती हैं। कई कीट जातियों में परपोषी वरीयता आनुवंशिक परिवर्तनशीलता के कारण आती है। *पेपीलियों* वंश की तितलियों को उनके पसंद आ सकने वाले चार परपोषियों पर अंड निक्षेपण संबंधी वरीयता देखने के लिए रखा गया तो स्पष्ट हुआ कि जहां अधिकतर तितलियों ने *प्यूसीडेनम* पादप को अंडनिक्षेपण के लिए सबसे अधिक पसंद किया वहीं कुछ तितलियों ने *एन्जेलिका* पादप को अंडनिक्षेपण के लिए पसंद किया (विलकुन्ड, 1974) की एक ही जाति के कीटों की समष्टि में कुछ विपथगामी कीटों की उपस्थिति समजीनी प्ररूप या जीव प्ररूप (biotype) को जन्म देने वाली हो सकती है जो विशेष किस्म के पादप प्रतिरोध को पार कर जाएंगे।

लार्वो का भरण व्यवहार भी व्यक्तिगत परिवर्तनशीलता को दिखाता है जो प्रतिरोध को पार कर लेता है। शूनहोवन (1977) ने जब *मेन्डूका सेक्सटा* के भूखें लार्वो को *डेन्डीलियोन* पादप की पत्तियों को खाने के लिए दिया तो अधिकतर लार्वो ने एक बार आदंश करने के बाद उन्हें नहीं खाया। कुछ लार्वे ऐसे भी थे जिन्होंने कुछ देर के बाद उनको खाया लेपीडोप्टेरा आर्डर के लार्वो (सूंडियों) में ऐसा लगता है कि भोजन के लिए उपयुक्त पादप की वरीयता व्यक्तिगत रूप से परिवर्तित हो सकती है जो अनुभव पर आधारित होती है। यदि लार्वो को एक परपोषी पादप पर कई दिनों तक पाला जाए फिर उनकी पसन्द के अन्य परपोषी पादपों पर उन्हें पाला जाए तो वे पहले परपोषी पादप की ओर अधिक झुकाव दिखाते हैं। जर्मी और साथियों (1968) के अनुसार व्यवहार की यह सुघट्यता अल्पभक्षी जातियों (जैसे तंबाकू का होर्नवर्म) और विविध भक्षी जातियों जैसे कोर्न वर्म, में देखी गई है।

अंडनिक्षेपण की वरीयता और भोजन का चयन : कीटों के कुछ गुणों जैसे लेपीडोप्टेरा और डिप्टेरा में वयस्क कीटों की पोषण संबंधी आवश्यकताएं लार्वो से भिन्न होती हैं। इसलिए जब वयस्क अंडा देने के लिए स्थान ढूंढ़ते हैं तो उन्हें पादप में पोषण की पर्याप्तता संबंधी सूचना नहीं मिलती है जबकि लार्वे भरण के समय ऐसे कारकों के प्रति संवेदी होते हैं। वयस्क मुख्यतः टोकन उद्दीपकों (प्रेरक) के प्रति अनुक्रिया दिखाते हैं अतः लार्वो की अपेक्षा अपने परपोषी परिसर तक ही सीमित रहते हैं। वयस्क और लार्वो द्वारा दिखाया जाने वाला दो प्रकार का व्यवहार विभिन्न आंतरिक प्रेरणाओं और आनुवंशिक कारकों से नियंत्रित होता है। *पेपिलियो* जाति की तितली के नवजातों लार्वो को जब चार भिन्न परपोषी पादप खाने को दिए गए तो उन्होंने किसी भी परपोषी के प्रति विशेष वरीयता नहीं दिखाई जबकि वयस्कों (तितलियाँ) ने अंडनिक्षेपण के लिए स्पष्ट वरीयता दिखाई। विकलन्ड (1974) के अनुसार लार्वो द्वारा भोजन योग्य पादपों की उपयोगितां और वयस्क द्वारा अंडनिक्षेपण की वरीयता विभिन्न-विभिन्न जीनों के समूह द्वारा निर्धारित की जाती हैं। यहां तक कि उन जातियों में भी जहां वयस्क कीट और अपरिपक्व अवस्थाएं एक ही प्रकार के पादपों पर भरण करती हैं वयस्कों द्वारा अंडनिक्षेपण के लिए स्थान का चयन और लार्वो द्वारा भरण के लिए स्थान का चयन विभिन्न व्यावहारिक प्रेरणाओं से संचालित होते हैं जो उद्दीपनों के विभिन्न समूहों की प्रक्रिया का परिणाम है।

ऐसा उल्लेख है कि कुछ कीट जातियों में ऐसी अभिरूचि उत्पन्न हो जाती है कि वे उन्हीं पादपों पर अंडनिक्षेपण करें जिन पर उनकी लार्वा अवस्था ने भरण किया है। इस परिकल्पना को होपकिन्स का परपोषी चयन सिद्धांत कहते हैं। परीक्षणों से अभी

यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है। यदि भरण और अंडनिक्षेपण दोनों ही व्यावहारिक और आनुवंशिक रूप से भिन्न तंत्र हैं तो होपकिन्स का परपोषी चयन सिद्धांत अतर्कसंगत संकल्पना है।

पादप प्रतिरक्षा : अधिकांश पादप भक्षी कीट अपने परपोषी पादप के अंदर अथवा ऊपर रहते हैं। पादप उन्हें भोजन ही नहीं बल्कि आश्रय और आवश्यक सूक्ष्म आवास भी प्रदान करते हैं। पादप की प्रकृति कीटों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि वे भोजन की आवश्यकता के कारण अपने को पादपों में उपस्थित आहार के अनुसार ढालने के दबाव में रहते हैं। कीट पादपों के लिए अधिक कल्याणकारी नहीं होते हैं लेकिन कीट-पादप पारस्परिक क्रियाएं पादपों की संख्या और पारिस्थितिक तंत्र के लिए महत्वपूर्ण हैं (मेटसन और एडी, 1975)। जर्मी, (1975) के अनुसार विकास की प्रक्रिया में अनेक चयनात्मक दबावों के कारण पादपों में अनुकूलन हुए हैं। इन चयनात्मक दबावों में कीट ग्रसन एक सूक्ष्म घटक है। कीट ग्रसन की अपेक्षा अंतर और अंतरा जातीय पादप प्रतिस्पर्धा, पर्यावरण के अजैविक घटक (जल, पोषक पदार्थ, प्रकाश आदि) तथा सूक्ष्म जैविक रोगाणु चयन संबंधी वे बड़े दबाव है (डीथियर 1970) जिनसे अनुकूलन हुआ है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पादप भक्षी तथा अन्य कीट अधिक महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि पादप में हुए अनुकूलनों का एक भाग पादप भक्षी कीटों के दबाव के कारण ही हुआ है।

पादपों ने पादपभक्षियों, रोगाणुओं और प्रतिस्पर्धी पादपों के विरुद्ध रक्षातंत्र का विकास किया है जिसके अंतर्गत बड़े पैमाने पर भौतिक लक्षणों और रसायनों की उपस्थिति सामने आई है। ये पादपों को प्रतिकर्षी, आविषालु तथा उपभोग के अयोग्य बनाते हैं।

पेंटर (1975) के अनुसार कीट ग्रसन के विरुद्ध पादप की भौतिक सुरक्षा (आकृतिक अनुकूलन) कीटों के व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है अथवा अपरिपक्व अवस्थाओं को इससे पर्याप्त सुरक्षा नहीं मिलती है। अनेक उदाहरणों में जैसे नवजात अवस्थाओं और ऊतक वेधकों को पादप के ऊतकों की दृढ़ता प्रतिरोध दिखाती है। ऊतकों की यह दृढ़ता रेशे की अधिकता अथवा सिलिका की उपस्थिति के कारण हो सकती है। रोमों तथा ट्राइकोम की उपस्थिति परपोषी पादप के उपभोग में बाधक होती है। कभी-कभी पादप द्वारा दिखाए जा रहे प्रतिरोध का मुख्य कारण भी होती है।

उच्च पादपों के ऊतकों में अनेक जैवरसायन होते हैं जो प्रतिरक्षा का कार्य करते हैं। इन रसायनों में ऐल्केलाइड, स्टीरोइड, फीनॉल, सेपोनिन, टेनिन, रेसिन, एसेन्सीयल (आवश्यक) तेल, अनेक कार्बनिक अम्ल तथा अन्य यौगिक सम्मिलित हैं। पादपों में इन रसायनों की उपापचयी भूमिका गौण होती है। अतः इन्हें "द्वितीयक पादप रसायन" अथवा "गौण पादप रसायन" कहते हैं। ये उपापचय के उपजात हैं जो प्रतिरक्षा में लगे होते हैं। (फ्रेन्किल 1959, 1969) मुलर (1976) के अनुसार ये रसायन मूलरूप से "अर्थहीन पदार्थ" थे जो आकस्मिक रूप से प्रतिरक्षा मूल्य के सिद्ध हुए। नवीनतम शोधों से सिद्ध हुआ है कि पादपों में ऐसे रसायनों में से अनेक प्रतिरक्षा के अतिरिक्त महत्वपूर्ण उपापचय क्रिया भी दिखाते हैं (रोविनसन 1974, हेफ्टमेन, 1975, सीग्लर और प्राइस, 1976) यदि ये रसायन केवल प्रतिरक्षा के गुण वाले ही हों तब भी वे पादप की उत्तरजीविता अथवा बने रहने के लिए मुख्य रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ-साथ वे पादप और पादप भक्षी के उद्विकास की सफलता में विशेष महत्व के होते हैं। व्हिटाकर (1970) ने द्वितीयक अथवा गौण पादप

रसायनों को "एलीलोकेमिक" कहा। एलीलोकेमिक की परिभाषा देते हुए उसने बताया कि "ये अपोषक गुणों वाले रसायन हैं जो एक जाति के जीव द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं और दूसरी जाति के जीव की वृद्धि, स्वास्थ्य, व्यवहार अथवा संख्या को प्रभावित करते हैं। एलीलोपेथी, फाइटोएलेक्सिन का पैदा होना, आकर्षी, प्रतिकर्षी, अपमार्जक, उद्दीपक, निरोधक और आविषालु एलीलोकेमिक अथवा एलीलोकेमिक पारस्परिक क्रियाओं का उदाहरण है।

कीट-पादप पारस्परिक क्रियाओं की दृष्टि से एलीलोकेमिक रसायनों से उत्पन्न प्रभावों के दो वर्ग होते हैं :

(1) एलोमोन : इस प्रकार के एलीलोकेमिक रासायन पादप पैदा करते हैं। इन रासायनों से पादपों को अनुकूली लाभ होता है अर्थात इनकी उपस्थिति से पादप कीटों को प्रतिरोध दिखाते हैं।

(2) केरोमोन : इस प्रकार के एलीलोकेमिक रासायन पादप द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं पर पादप भक्षी कीटों को इनसे अनुकूली लाभ होता है। पादपों में इनकी उपस्थिति पादप भक्षियों को इन पादपों का परपोषी की भांति उपभोग करने में सहायता करती है।

प्रारंभ में सभी एलीलोकेमिक रासायन पादपों को प्रतिरक्षा का गुण प्रदान करते थे यानी वे एलोमोन थे लेकिन इनका केरोमोन की भांति उपयोग पादप भक्षी कीटों में विकास प्रक्रिया के अंतर्गत हुए अनुकूलनों के कारण होने लगा। इससे पादप भक्षी कीट पादप को परपोषी की भांति पहचान कर उसका उपभोग करने लगे।

एलीलोकेमिक रासायन कीटों के व्यवहार और उपापचय को प्रभावित करते हैं। व्यवहार और उपापचय एक दूसरे पर आधारित प्रक्रम हैं, अतः एलीलोकेमिक रसायनों द्वारा उत्पन्न व्यावहारिक

तथा उपापचयिक प्रभावों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार प्रतिरोध की श्रेणियां अवरीयता (व्यावहारिक) और प्रतिजीविता (शरीर क्रियात्मक-उपापचयिक) भी एक-दूसरे पर विभिन्न डिग्रियों तक आधारित हैं।

कीट-पादप सह-विकास : कीट और पादप के बीच सह-विकासीय संबंध की विवेचना करें तो स्पष्ट होता है कि पादपों ने श्रेष्ठ एलोमोन रसायन उत्पन्न किए जिनको कीटों ने निष्प्रभावित कर दिया अथवा उनका केरोमोन की भांति उपभोग किया। उद्विकास के समय हुए अचानक उत्परिवर्तन अथवा आनुवंशिक पुनः संयोजन से एक एलोमोन की उत्पत्ति हुई होगी। इस रसायन ने पादप को अतिरिक्त लाभ दिया जिससे वह पादप भक्षी कीट द्वारा उत्पन्न प्रभाव को अन्य पादपों की अपेक्षा अधिक सहन कर सका। पादप के लिए अनूकूली प्रभाव का होने के कारण यह एलोमोन उस पादप जाति की पूरी समष्टि यहां तक कि वंश के लिए विशेष लक्षण के रूप में उभरा। पादप में इस प्रकार का अनुकूलन कीट के लिए अवरोधक सिद्ध हुआ। यदि कीट में पादप के समान परिवर्तन नहीं होते हैं तो पादप कीट के परपोषी परिसर से बाहर हो सकता है। कीट समष्टि में भी अचानक हुए उत्परिवर्तन और आनुवंशिक पुनः संयोजन से उत्परिवर्ती कीट की उत्पत्ति हुई। यह उत्परिवर्ती कीट एलोमोन की उपस्थिति से सुरक्षित पादप जाति का उपभोग कर पाने में सफल रहा। इस प्रकार पादप में उपस्थित एलोमोन इस उत्परिवर्ती कीट के लिए केरोमोन में बदल गया। इस प्रकार की सहगामी विकास प्रक्रिया से उत्परिवर्ती कीट को यह लाभ मिला कि वह उस पादप विशेष का उपभोग कर सका जिसका उपभोग उसी की जाति के दूसरे कीट तथा अन्य पादप भक्षी कीट और जीव नहीं कर सके। इसके परिणाम स्वरूप

परपोषी की प्रजातियों, कीट के समजीनी प्ररूपों और नई जातियों की उत्पत्ति हुई।

इस तथ्य की व्याख्या की जाए तो "टोकन उद्दीपक" जिनके द्वारा कीट उपयुक्त परपोषी पादप को पहचानता है, केरोमोन (आकर्षी, प्रतिकर्षी) हैं। ये केरोमोन दूसरी पादप भक्षी जातियों पर एलोमोन की भांति ही प्रभाव डालते हैं क्योंकि उनमें अनुकूलित परिवर्तन नहीं हुए हैं।

कीट ग्रसन को रोकने के लिए एलोमोन का व्यावहारिक तथा शरीर क्रियात्मक प्रभाव उत्पन्न करना आवश्यक है जिससे कीट के सामान्य व्यवहार में अवरोध आए और एलोमोन का प्रभाव प्रतिकर्षी उद्दीपक के रूप में दिखाई दे। इसके विपरीत कीट की व्यावहारिक और *उपापचयिक* सक्षमताओं में ऐसे विपरीत अनुकूलन हों जिनके कारण एलोमोन सकारात्मक व्यावहारिक उद्दीपक हो शीघ्रता से निम्नीकृत हो जाए अथवा जिसका जैव रासायनिक रूप में उपयोग किया जाए। कीट व्यवहार को प्रभावित करने वाले रसायनों के अंतर्गत अनेक पदार्थ आते हैं (हेडिन और साथी, 1974)। बैक और रीज (1976) ने भी अनेक ऐसे पादप यौगिक बताए हैं जो विपरीत शरीरक्रियात्मक प्रभाव डालते हैं।

एलोलोकेमिक रसायन के व्यावहारिक और शरीरक्रियात्मक प्रभाव का सबसे अच्छा उदाहरण काली स्वेलोटेल तितली, *पेपिलियो पोलीजीनिस* के व्यवहार तथा वृद्धि पर सिनिग्रिन का प्रभाव है (एरिकसन और फीनी, 1974)। सिनिग्रिन सरसों के तेल का ग्लाइकोसाइट है। इसमें जैविक महत्व का भाग एग्लूकोन, एलिल आइसोथिओसाइनेट है जो कूसीफेरी कुल के पादपों की पत्तियों में पाया जाता है। सिनिग्रिन कई कीटों को टोकन उद्दीपक के रूप में प्रभावित करता है जिससे वे कीट क्रूसीफेरी पादपों को

परपोषी पादप के रूप में पहचानते हैं। *पेपिलियो* जातियां क्रूसीफेरी कुल के पादपों पर भरण नहीं करती हैं पर अम्बेलीफेरी कुल के पादपों का उपभोग करती हैं जहां उनके टोकन उद्दीपक पैदा होते हैं। जब पेपिलियो के लार्वे सीलरी की पत्तियों (अम्बेलीफेरी कुल का पादप) पर भरण करते हैं तो उनकी वृद्धि में रुकावट आती है तथा बड़ी संख्या में मृत्यु हो जाती है। इसका कारण है सीलरी पादप की पत्तियों में सिनिग्रिन नामक रसायन एलोमोन के समान व्यवधान उपस्थित करता है जिससे काली स्वेलोटेल तितली के लार्वे क्रूसीफेरी कुल के पादपों का परपोषी की भांति उपभोग नहीं कर पाते हैं। क्रूसीफेरी कुल के पादपों का उपभोग करने के लिए इन तितलियों को तीन प्रकार के अनुकूलनों की आवश्यकता होगी : (क) व्यवहार में अनुकूलन जिससे इन पादपों पर अंड निक्षेपण हो सके, (ख) ऐसा व्यावहारिक अनुकूलन जो लार्वों को इन पादपों पर भरण करने की स्वीकृति दे, और (ग) उपापचयिक अनुकूलन जिससे सिनिग्रिन के अवयव एलिल आइसोथिओसाइनेट के विषाक्त प्रभाव कम अथवा दूर हो सकें। सिनिग्रिन जहां पत्ता गोभी के एफिड, *ब्रीबीकोर्नी ब्रेसिकी* का भरण उद्दीपक है वहीं मटर के एफिड *एसिरथोसिफोन पाइसम* के लिए अपमार्जक है। मटर का एफिड लेग्यूमिनोसी कुल के पादपों पर भरण करता है।

पादप में आए अनुकूलन के अनुसार कीटों के रूपांतरित होने का उत्तम उदाहरण "केनवेनाइन" का कीट वृद्धि पर प्रभाव है। एल-केनावेनाइन एल-आरजिनाइन का तुल्य रूप (समान्तर) है जो अधिक विषाक्त होता है। एल-केनावेनाइन की विषाक्तता सामान्य प्रोटीन संश्लेषण के भंग होने से आती है। अधिकतर ऐसे जीव जो अनुकूलित नहीं हुए है एल-आरजिनाइन के स्थान पर एल-केनावेनाइन को संरचनात्मक प्रोटीनों में समाविष्ट कर लेते हैं जिससे त्रुटिपूर्ण

और शरीर क्रियात्मकता की दृष्टि से असमर्थ प्रोटीन बनते हैं। एल-केनेवाइन कुछ फलीदार पादपों के बीजों में नाइट्रोजन भंडारण का प्रमुख केन्द्र हैं जो बीजों के शुष्क भार का 8 से 10 प्रतिशत तक होता है। इसकी विषाक्तता शक्तिशाली एलोमोन की भांति प्रभाव डालती है जिससे कीट और उच्च जंतु इन बीजों को नहीं खाते हैं। जबकि ब्रैकिडी कुल की भृंग, *केरीडिस ब्रेसिलिएन्सिस* केवल *डिओक्लिआ मेगाकार्पा* के बीजों को ही खाती हैं जिनमें केनावेनाइन होता है। इसके लार्वो में उपस्थित "आरजिनिल-टी आर एन ए सिन्थिटेज" एल-आरजिनाइन और एल-केनावेनाइन के बीच भेद करने में सक्षम है, एल-केनावेनाइन कीट की प्रोटीन में समाविष्ट नहीं होती है (रोसेनथल और साथी, 1975)। इसके अतिरिक्त इस भृंग के लार्वे एल-केनावेनाइन का अवक्रमण (अपघटन) कर नाइट्रोजन के स्रोत के रूप में दूसरे उपापचयिक प्रक्रमों में उपभोग करते हैं (रोसेनथल और साथी, 1977)। इस प्रकार पादप में एलोमोन की उपस्थिति संबंधी अनुकूलन के विपरीत कीट में भी उसके प्रति अनुकूलन हो जाता है।

पादप भक्षी के विरुद्ध एलोमोन अवरोध के रूप में केनावेनाइन का उपयोग एक सरल पादप प्रतिरक्षा योजना है। इसके अतिरिक्त बीजों में नाइट्रोजन का भंडारण उन्हें कीटों से बचने का अतिरिक्त लाभ देता है। इसके साथ साथ पादप में चल रही जैव रासायनिक प्रतिक्रियाओं के बीच ऐसे उपापचयजों की उत्पत्ति हो सकती है जो एलोमोन के समान प्रतिरक्षा प्रदान करने का गुण रखते हों। पादप में इन माध्यमिक उपापचयजों का चयन उसे प्रतिरक्षा संबंधी अनुकूलन प्रदान करेगा। दोनों ही परिस्थितियों में एलोमोन शरीर क्रियात्मक कार्य के साथ पादप प्रतिरक्षा का कार्य भी करेगा।

पादप प्रतीयमान (प्रत्यक्षता) : पादप सुरक्षा संबंधी क्रियाविधि का कैसे विकास हुआ है, यह स्पष्ट नहीं है लेकिन इस दिशा में हुए नवीनतम अनुसंधानों से पता चलता है कि यह कीट परपोषी विशिष्टताओं के साथ-साथ विभिन्न समष्टियों (कीट संख्याओं) के घनत्वों और पादप जातियों के अनुक्रमणीय स्तर पर आधारित हो सकता है (फीनी 1975, 1976, रोड्स और केट्स, 1976)। कुछ बहुवर्षी (बारहमासी) पादप, बड़े वृक्ष और घासें एक पारिस्थितिक तंत्र में निरंतर बने रहते हैं। इनके संबंध में यह स्पष्ट आभास रहता है कि ये अवश्य ही प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित होंगे। ऐसी वनस्पति कीटों तथा अन्य पादप भक्षियों को सदैव उपलब्ध होती है। इन पादपों (पादप प्रतीयमान) की उपस्थिति का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इनके अतिरिक्त ऐसे पादप भी होते हैं जिनका पूर्वानुमान किसी स्थान विशेष पर पहले से अथवा पूर्ण रूप से नहीं किया जा सकता है। अतः इस प्रकार के पादप अपने परपोषी-विशेष शत्रुओं के आक्रमण से बच जाते हैं। इन पादपों को क्षण भंगुर अथवा क्षणिक अथवा अल्पकालिक पादप भी कहते हैं। पर्यावरण में उपस्थित पादपभक्षी कीट जातियां परपोषी-पादप विशिष्टताओं के कारण भिन्नताएं लिए होती हैं जिसमें सामान्य रूप से एक से अधिक पादपों पर भरण करने वाली कीट जातियों से लेकर विशेष अथवा विशिष्ट कीट जातियां आती हैं। ये विशिष्ट कीट पादप प्रतीयमान (प्रत्यक्ष पादप) जातियों में से एक के लिए विशेष हो सकते हैं अथवा अनेक अल्पकालिक पादप जातियों में से किसी के लिए विशेष हो सकते हैं। सामान्यतः कीट का भरण परिसर बड़ा होता है जिसमें विभिन्न पादप होते हैं जिनमें से कुछ प्रत्यक्ष पादप अथवा अल्पकालिक पादप हो सकते हैं।

पादप प्रतिरक्षक रासायनों का संश्लेषण और पादप संरचनाओं में उनका भण्डारण पादप कुछ उर्जा खर्च करके करता है। इसका

अर्थ है पादप सुरक्षा का मूल्य होता है यह सुरक्षा अथवा प्रतिरक्षा उपापचयज प्रक्रम के बाद आती है। इस प्रकार, उद्विकास के समय कीटों से बचने के लिए पादपों की प्रतिरक्षा क्रियाविधि ऐसी रही होगी कि उपापचय से उत्पन्न ऊर्जा को कम से कम खर्च कर अधिक से अधिक सुरक्षा मिले। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अधिकतर पादप प्रतिरक्षा रासायनों का उद्भव उपापचयिक प्रक्रियाओं से हुआ है।

बहुवर्षी पादप (पादप प्रतीयमान) कीटों के निरंतर बने रहने से अधिक भरण दबाव में रहते हैं उन पादपों की अपेक्षा जो अल्पकालिक होते हैं लेकिन प्रतिरक्षण के लिए अधिक ऊर्जा का व्यय कर सकते हैं। ये पादप अल्पकालिक पादपों की अपेक्षा पाचन और स्वांगीकरण के अवरोधक की अधिक सांद्रता पर निर्भर होते हैं। इनमें प्रमुख टेनिन और रेजिन होते हैं। ये पदार्थ अधिक विषैले नहीं होते हैं लेकिन अंतर्ग्रहित पादप भाग के पाचन में बाधक होते हैं। इससे कीट की वृद्धि धीमी हो जाती है और वह सामान्य भी नहीं रहता है। अल्पकालिक पादपों अथवा उनके भागों जैसे पुष्पकलिकाओं में अधिक विषैले पदार्थों की सांद्रता (ऊतकों का 0.02 से 1.0 प्रतिशत शुष्क भार) कम होती है। यह मात्रा उन्हें सामान्य पादप भक्षियों से बचाने में पर्याप्त होती है लेकिन ये पदार्थ उन विशेष कीटों से प्रतिरक्षा कर पाने में प्रभावी रूप से सक्षम नहीं होते हैं जो पादप जातियों के समान अनुकूलित हो गए हैं अथवा उनसे उत्पन्न प्रतिरक्षा रसायनों का परपोषी-पादप की पहचान करने के लिए टोकन संदीपनों (केरोमोन) की भांति उपयोग करते हैं। परपोषी-विशिष्ट कीट से पादप का बचाव केवल आक्रमण से बचे रह जाने अथवा पलायन से ही हो पाता है। जबकि उसी पादप के विशेष आविष (टाक्सिन) और निवारक ऐसे

अन्य कीटों को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं जो पादपों के अनुसार अनुकूलित नहीं हुए हैं। आविष और निवारकों में एल्केलाएड, फीनोल और सेपोनिन प्रमुख होते हैं। इनकी उत्पत्ति उपापचय प्रक्रम के अंतर्गत होती है जिसमें पादप को बहुत कम ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है।

कृषि में महत्व : पादप और कीट के सह-विकास का कृषि में महत्व परपोषी पादप प्रतिरोध की दृष्टि से बहुत अधिक है। प्रकृति में अल्पकालिक पादपों को स्थान विशेष पर ढूंढ़ना कठिन होता है लेकिन कुछ विशेष कृषि परिस्थितियों में वे उसी स्थान पर अपनी समष्टि (कीट संख्या) के अधिकतम घनत्व अथवा अधिक संख्या के कारण वर्ष दर वर्ष बने रहने के कारण उपलब्ध हो सकते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में पादप विशेष कीटों द्वारा ढूंढ़ लिया जाएगा। इस प्रकार के कीट पादप के प्रतिरक्षा रसायनों को केरोमोनो की भांति उपयोग कर परपोषी-पादप की उपस्थिति की पहचान करते हैं तथा प्रतिरक्षा रासायनों को उपापचय द्वारा अविषैला कर देते हैं। फसलीय पादप की प्रतिरक्षा इधर उधर खाते फिरते पादपभक्षियों के विरूद्ध होती है। ये पादप समय तथा उपापचय क्षमता के अभाव में प्रतिरक्षक रसायन को प्रतीयमान अथवा अनुमानित पादप की रासायनिक सुरक्षा के लिए उत्पन्न ही कर पाते हैं। इसी कारण कृषि क्षेत्र में एक इच्छित अल्पकालिक फसल से कीटों के कारण आपेक्षित गुणवत्ता और पैदावार नहीं मिल पाती है। अनाज और सब्जियों की फसलें ऐसे विशेष उदाहरण हैं।

कीटों और पादप की प्रतिरक्षा से उत्पन्न परपोषी पादप विशिष्टताओं के विभिन्न नमूनों से ऐसी कृषि व्यूहरचना की जा सकती है जिसमें कीट-प्रतिरोधी पादपों का विकास और उनका

उपयोग सम्मिलित होगा। कीट प्रतिरोध की स्थिरता और उसको बनाए रखना कृषि व्यूहरचना का आवश्यक अंग होना चाहिए। कीट-पादप पारस्परिक क्रियाओं का इतिहास बताता है कि कोई भी पादप प्रतिरक्षा क्रियाविधि असंक्राम्य नहीं समझी जा सकती है क्योंकि इसके प्रति पादप भक्षी कीटों की एक अथवा अधिक जाति प्रतिकारक अनुकूलन दिखाती हैं। अतः यह आवश्यक है कि पादप की प्रतिरक्षा क्रियाविधि में विविधता हो। इसके लिए आवश्यक है कि किसी भी आनुवंशिक लाइन अथवा किस्म अथवा जाति में विविधता लिए कुछ प्रतिरक्षा तंत्र का समावेश किया जाए जिससे उसे एक साल के बाद दूसरे साल एक कृषि क्षेत्र में उपयोग में लाया जा सके। इसका उदाहरण व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण गेहूं की किस्मों में हेसियन फ्लाई, *माइटिओला डेस्ट्रेक्टर* के विरुद्ध स्थाई प्रतिरोध का प्रदर्शन है जो आनुवंशिक विविधता का अनुपम उदाहरण है।

कीट की परपोषी पादप विशिष्टता तथा पादप की आनुवंशिक विविधता और सघनता का पादप प्रतिरोध की स्थिरता पर प्रभाव पड़ता है। सबसे अधिक अस्थिर वह पादप प्रतिरोध होगा। जिसमें प्रतिरक्षा तंत्र का समावेश एकाहारी कीट से बचाव के लिए किया गया है। प्रतिरोधी पादप का कीट द्वारा उपभोग कई संततियों तक बहुत कम हो पर धीरे-धीरे चयनात्मक दबाव के कारण कीट समष्टि उसके अनुसार अनुकूलित हो जाती है। एकाहारी कीट के प्रति प्रतिरोध की अस्थिरता एक कीटनाशी की प्रभाविकता के कम हो जाने के समान ही है जहां कीट की सारी संख्या अथवा समष्टि प्रतिवर्ष उसी कीटनाशी के प्रभाव में होती है। अतः अच्छी व्यूहरचना वह होगी जिसमें दुनिया के सभी स्थानों से एकत्रित जर्मप्लाज्म अथवा जननद्रव्य का अवलोकन स्थिर प्रतिरोध के लिए किया

जाए। इस अवलोकन में आनुवंशिक रूप से भिन्न प्रतिरक्षा तंत्र की खोज की जानी चाहिए तथा उसका उपयोग विभिन्न सस्य गुणों वाले पादपों में किया जाना चाहिए जिससे स्थिर प्रतिरोध युक्त उत्तम सस्य गुणों वाली जातियों का विकास किया जा सके। यहां यह आवश्यक है कि प्रतिरोध की खोज केवल एक कीट के विरुद्ध ही न की जाए बल्कि कई मुख्य कीटों के विरुद्ध की जाए। इससे समय और धन का खर्च कम होगा। पादप में प्रतिरक्षा तंत्र की विविधता पादप प्रतिरोध को विविधता प्रदान करेगी जिससे सर्वभक्षी कीट ऐसे प्रतिरोध को क्षति नहीं पहुंचा पाएंगे। यह कीट व्यवहार ही है जो पादप के विभिन्न लक्षणों को स्पष्ट करता है अथवा उनमें परिवर्तन लाता है जिनका उपयोग कर कीट प्रतिरोधी जाति का विकास किया जा सकता है।

अध्याय - 6

पादप प्रतिरोध के आधार

प्रत्येक पादप जन्मजात रूप से किसी न किसी पादपभक्षी के लिए प्रतिरोधी होता है। प्रतिरोध का परास घटनात्मक अतुल्यकालिकताओं (phenological asynchronies) से उत्पन्न कालगत पलायन क्रियाविधियों से लेकर घातक जटिल कार्बनिक अणुओं (जिनके लिए जीन उत्तरदायी होते हैं) के जैव संश्लेषण तक हो सकता है। दोनों स्थितियों के बीच विस्तृत आयाम वाले जैव-रासायनिक और आकृतिक लक्षण हैं जिनसे पादपभक्षी के व्यवहार अथवा उपापचयिक प्रक्रम में व्यवधान आता है और वह पादप का परपोषी के रूप में उपभोग नहीं कर पाता है। प्रतिरोध की दृष्टि से वे लक्षण जो कृषि किस्मों को कीटों के भरण अथवा अण्डनिक्षेपण के लिए अनुपयुक्त बनाते हैं और विभिन्न प्रकार के प्रतिरोधों के लिए उत्तरदायी होते हैं, दो समूहों अथवा मुख्य आधारों में विभेदित किए जा सकते हैं :

(i) आकृतिक आधार

(ii) जैव-रासायनिक आधार

(i) आकृतिक आधार

आकृतिक या भौतिक प्रतिरोध कारक भौतिक रूप से चलन प्रक्रियाओं और विशेषकर परपोषी के चयन, भरण, अन्तर्ग्रहण,

पाचन, संगम और अंडनिक्षेपण में हस्तक्षेप या विरोध करते हैं। ये भौतिक रोधक अथवा प्रतिकर्षी जिनमें त्वचारोम (trichome), आधारीय मोम, सिलिकीकरण, अथवा ऊतकों का दृढ़ीकरण प्रमुख है, वास्तव में आनुवंशिक रूप से संचालित जैव रसायनिक प्रक्रमों की अभिव्यक्ति हैं। इसके अतिरिक्त कीटों के व्यवहार तथा उपापचयिक प्रक्रमों को प्रभावित करने वाले एलोमोन आकृतिक संरचनाओं (जैसे त्वचारोम तथा शल्क) पर उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार आकृतिक और रसायानिक प्रतिरोध कारक एक प्रकार से आपस में प्रतिरक्षा के लिए गुंथे रहते हैं।

(क) सुदूर कारक (Remote factors) : पादप रंग और आमाप वे दो सुदूर कारक हैं जो पादपभक्षियों के परपोषी चयन संबंधी व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं, जिससे कुछ मात्रा का प्रतिरोध दिखाई देता है।

रंग : परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि पादपों के रंगों का दूरगामी प्रभाव नहीं होता। कैनेडी और साथियों (1961) तथा मेजोखिनपोर्सी निकोव (1969) के अनुसार एफिड तथा अन्य स्टर्नोरिंहचा पर रंगों का प्रभाव पादप के पास आने पर पड़ता है। अधिकांश एफिड ऐसी पत्तियों की ओर आते हैं जो 500 से 600 एन.एम. की दूरी से पीला हरा रंग परावर्तित कर रही होती हैं। पंख वाले (सपक्षक) एफिड 500 एन.एम. की दूरी से रंग परिवर्तित कर रही किसी भी जाति की पत्तियों की ओर आकर्षित हो सकते हैं। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि वे रंग की ओर न जाकर इस अवस्था को शरीर-क्रियात्मक रूप से उपयोगी वृद्धि अवस्था समझकर उसकी ओर आकर्षित होते हैं। कार्टियर (1963) के अनुसार मटर का एफिड (*Acyrthosiphon pisum*) हरे पादपों की अपेक्षा पीले हरे पादपों को अधिक वरीयता देता है। इसी प्रकार की प्रतिक्रियाएं कीटों के दूसरे समूहों में भी पाई गई हैं।

कुछ कीटों में रंग विशिष्ट प्रतिरोध भी मिलता है। स्टीफेन्स (1957) के अनुसार कपास के हरे और लाल पौधे एक साथ उग रहे होते हैं तो बाल वीविल *(एन्थोनोमस ग्रेन्डिस)* लाल पौधों की अपेक्षा हरे पौधों की ओर अधिक आकर्षित होती है। इसी प्रकार पत्ता गोभी का कीट *पियरिस* रेपी ब्रसल स्प्राउट की लाल पत्तियों की अपेक्षा हरी पत्तियों की ओर अधिक आकर्षित होता है (डुन और कैम्पटन 1976)। पेरीग्रिन और केटलिंग (1967) के अनुसार जई की ऐसी किस्में, जिनके अन्तर्भूस्तरीयों के आधार लाल तथा रोमिल थे, फ्रिट मक्खी, *ओसीनेला फ्रिट* के प्रकोप से कम प्रभावित होती है।

आकृति

फसलों में कोई भी प्रतिरोध क्रियाविधि पादप आकृति से सीधे संबंधित नहीं पाई गई है, फिर भी कुछ आकृतिक लक्षण अन्य प्रतिरोध कारकों से जोड़े जा सकते हैं। वेरिस (1958) के अनुसार *हाइलेमिया फ्लोरेल्स* नामक कीटों के मेगट शलजम के पौधे की भूमि से ऊपर की आकृति से प्रभावित नहीं होते हैं बल्कि उसकी जड़ों की आकृति उन्हें प्रभावित करती है। शलजम की दृढ़, गोल और लम्बी जड़ों वाली किस्में पतली जड़ों वाली किस्मों की अपेक्षा अधिक सहनता दिखाती पाई गई। इस स्थिति में जड़ों की आकृति प्रतिरोध का आधार बनती है जिसे प्रतिरोध के लिए प्रजनन कार्यक्रम में उपयोग किया जाना चाहिए।

(ख) निकटवर्ती अथवा संपर्क कारक (Close-range or contact factors)

पादपभक्षी जब पादप के संपर्क में आता है तब पादपों में उपस्थित अधिकतर भौतिक रक्षा कारक अपना प्रभाव दिखाते हैं। विभिन्न प्रकार के संपर्क कारक और उनके द्वारा उत्पन्न प्रभाव

(जिनके कारण प्रतिरोध प्रदर्शित होता है) सारणी-1 में दिखाए गए हैं।

सारणी-1 : पादप में उपस्थित आकृतिक अथवा भौतिक कारक तथा उनका प्रभाव

पादप कारक	कीट पर प्रभाव
(1) कोशिका भित्तियों का मोटा होना, ऊतकों की अधिक दृढ़ता	कीटों के भरण तथा अंड-निक्षेपण में व्यवधान
(2) तनों का ठोसपन तथा अन्य लक्षण	(1) कीटों की भरण तथा अंड-निक्षेपण क्रियाविधियों में व्यवधान (2) अंडों का निर्जलीकरण
(3) क्षतिग्रस्त ऊतकों में प्रचुरोद्भवन	प्रारंभिक क्षति करने के बाद कीट की मृत्यु
(4) आधारीय मोम का एकत्रण	उपनिवेशन (कॉलोनी) तथा अंडनिक्षेपण पर प्रभाव
(5) सिलिका की उपस्थिति	अध्यावरण में खरोचें, भरण क्रिया में व्यवधान
(6) त्वचारोम (ट्राइकोम)	भरण, पाचन, अंडनिक्षेपण, गति, आसंजन आदि पर प्रभाव, ग्रंथिल त्वचारोमों के ऐली-लोकेमिकों के विषैले तथा विदारी प्रभाव, शरण का स्थान।

(7)	अतिविशिष्ट अंगों में शारीरिक परिवर्तन	कई प्रकार के प्रभाव जैसे कम उत्तरजीविता, मृत्यु आदि
(8)	पर्णछद तथा तने से बना गहरा अक्ष	अक्ष में पानी भरने से नवजात लार्वों की मृत्यु
(9)	निचली पत्तियों का गिरना	नवजात लार्वों को आश्रय न मिलना
(10)	सहपत्रों की संकीर्णता तथा मुड़ा होना	उत्तरजीविता पर प्रभाव
(11)	हस्क का कसा होना	भरण पर प्रभाव

संपर्क कारक कीटों के सामान्य भरण अथवा अंडनिक्षेपण को अवरुद्ध करते हैं, साथ ही अन्य मर्त्यता कारकों की भांति भी प्रक्रिया दिखाते हैं।

कोशिका भित्तियों की स्थूलता

पादप कोशिका भित्तियों में सेलुलोज और लिग्निन के निक्षेपित अथवा एकत्रित हो जाने के कारण वे स्थूल हो जाती हैं। इस कारण ऊतक दृढ़ हो जाते हैं और कीटों के मेंडीविलों की फाड़ने की क्रिया का प्रतिरोध करते हैं। साथ ही कीटों की सूंड़िका अथवा अंडनिक्षेपक के अंतवेधन में बाधा उपस्थित करते हैं। टेन्टन (1962) के अनुसार दृढ़ ऊतक वाली पत्तियों पर भरण करने के कारण सरसों की भृंग में (*Phaedon cochleariae*) में भरण दर और लार्वों की वृद्धि कम हो जाती है। इसी प्रकार कुथवर्ट और डेविस (1972) के अनुसार लोबिया की फली की भित्तियों की मोटाई अधिक होने से लोबिया की भृंग उनको भेद नहीं पाती है और ऐसी फलियों वाली किस्में प्रतिरोध दर्शाती हैं।

धान की स्थूल अधोत्वचीय सतहें धान को तनावेधक का प्रतिरोधी बनाती है (पटनाकामजोर्न और पाठक 1967)। ब्लम (1968) ने ज्वार की शूट फ्लाई के प्रति ज्वार की जातियों में प्रतिरोध का कारण तरुण पत्तियों के मध्य चक्र की कोशिका भित्तियों का लिगनीकृत होना बताया।

पादप ऊतकों का प्रचुरोद्भवन

कपास में कीट क्षति के विरुद्ध प्रतिरक्षा आरंभ हो जाती है, जिससे कोशिकाओं का अधिक संख्या में उत्पन्न होना अथवा प्रचुरोदभवन होता है। कपास की कुछ किस्मों में क्षतिग्रस्त ऊतकों की तेजी से बढ़ रही कोशिकाओं के कारण पिंकबालवर्म की सूंडियां कुचली जाती हैं अथवा उनमें डूब जाती हैं। यह अनचाहा सस्य संबंधी लक्षण है जिसे प्रभारी प्रजनन कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है (एडकिसन और साथी 1962)।

तने का ठोसपन

ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां तनों की संरचना में थोड़ी या अधिक भिन्नता उन्हें कीटों के लिए अनुपयुक्त बनाती है। तने के ऊतकों की बनावट बहुत से तना बेधकों के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए उत्तरदायी होती है। गेहूं की कई जातियों में ठोस तने की उपस्थिति तने की सा-फ्लाई के विरुद्ध प्रतिरोध उत्पन्न करती है। कुछ विशेष परिमाण में तने का ठोसपन अंडों को क्षतिग्रस्त तथा निर्जलीकृत कर देता है तथा इससे लार्वों की गति भी क्षीण हो जाती है (वालाश और साथी 1973)। अग्रवाल (1969) के अनुसार गन्ने के बेधक (*डायट्रिया सेकेरेलिस*) के प्रथम तथा द्वितीय अन्तरूपों (मोल्टों) पर पत्तियों की मध्य रेखा की दंतिकाओं संवहन बंडल, कोशिका भित्तियों का काष्ठीय होना और स्केलेरनकाइमा कोशिकाओं के कई स्तरों का उस समय प्रभाव

पड़ता है जब वे तनों में प्रवेश से पहले पत्तियां खाते हैं। इसके फलस्वरूप प्रतिरोध उत्पन्न होता है। बड़ी अवस्था की सूड़ियां जब तने को वेधकर अंदर प्रवेश करती हैं तो तने की छाल की कठोरता और तलने की रेशेदार अंश प्रतिरोध दिखाते हैं। ये प्रतिरोध के मुख्य कारक हैं।

होव (1949) के अनुसार कुकुरविट जातियों के पादपों के कठोर और काष्ठीय तनें तथा उनमें पास पास उपस्थित दृढ़ संवहन बंडल कद्दू की बेल के बेधक (*मेलिटिआ कुकुरविटा*) की इल्लियों के प्रवेश तथा भरण को प्रतिरोध दिखाते हैं।

पादपों के इन संरचनात्मक अथवा आकृतिक लक्षणों पर पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है जिससे उनमें भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। प्रतिरोध के लिए प्रजनन कार्यक्रमों में ऐसी किस्मों का विकास किया जाना चाहिए जो इन आकृतिक भिन्नताओं का ध्यान रखें।

त्वचारोम

त्वचारोम एक कोशिकीय अथवा बहुकोशकीय रचनाएं होती हैं जो पत्तियों, प्ररोहों और जड़ों की बाह्य त्वचा की बर्हिवृद्धियां हैं (उपहोफ 1962)।

पादप की सतह पर त्वचारोमों की सामूहिक रूप में उपस्थिति रोमिलता कहलाती है। त्वचारोमों की विभिन्न किस्मों को वैज्ञानिकों ने वर्गीकृत करने के प्रयत्न किए हैं (उपहोफ 1962, जानसन 1975)। त्वचारोम कई क्रांतिक कार्यिकीय तथा पारिस्थितिक कार्यों को संपन्न करते हैं विशेषकर वे जल के संरक्षण से संबंधित होते हैं। लेविन (1973) तथा जोनसन (1975) के अनुसार त्वचा रोमों द्वारा किए गए पारिस्थितिक कार्य पादप भक्षी से रक्षा करने के काम आते हैं। पादप में त्वचा रोगों की उपस्थिति कीट जातियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करती है।

पादप प्रतिरोध के आधार

रोमिलता प्रतिरोधी कारक के रूप में कीट के अंडनिक्षेपण, पादप से जुड़ने, भरण और अन्तर्ग्रहण को प्रभावित करती है। कभी-कभी पादपों की अधिक रोमयुक्त दशा कुछ कीटों के लिए अधिक प्रतिरोधी होती है। इसका उदाहरण ज्वार की किस्म एस पी वी 1015 है जो पत्तियों पर अधिक रोमिलता दिखाती है, विशेष कर जहां पत्तियां तनों से लगी होती हैं (प्रेम किशोर 1973) (चित्र 3 और 4)।

सामान्यतः रोमिलता के यांत्रिक प्रभाव त्वचारोमों के चार मुख्य लक्षणों पर निर्भर करते हैं। ये निम्नलिखित हैं :

चित्र-3 : रोमिलता की अधिकता दिखाती ज्वार की किस्म एस. पी. वी. 1015 की पत्ती

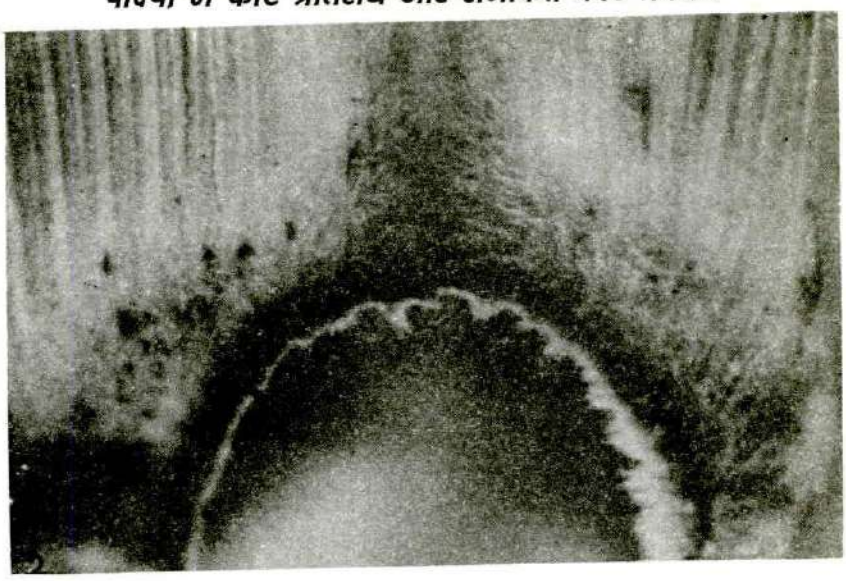

चित्र-4 : रोमिलता की कमी वाली ज्वार की किस्म डी जे 6514

(i) त्वचारोमों का घनत्व

(ii) खड़ी अथवा उर्ध्व स्थिति

(iii) त्वचारोमों की लम्बाई

(iv) त्वचारोमों का आकार

कुछ उदाहरणों में त्वचारोमों से संबंधित ग्रंथियां होती हैं, जिनसे गौण पादप उपापचयज निकलते हैं। इन ग्रंथिल त्वचारोमों का प्रभाव निकलते हुए पदार्थ पर निर्भर करता है। यह पदार्थ एलीलोकेमिक (जैसे एल्केलोएड) अथवा गोंद के समान प्रकृति का हो सकता है। इस प्रकार के आविषालु पदार्थ संपर्क में आने वाले कीटों को मार देते हैं अथवा दूर भगा देते हैं। कभी-कभी कीट गोंद समान पदार्थों से चिपक कर मर जाते हैं। वेवस्टर (1975) ने प्रतिरोध कारक के रूप में रोमिलता के महत्त्व को बताया है।

पादप प्रतिरोध के आधार

कई लीफ होपरों के प्रकरणों में यह प्रेक्षित किया गया है कि वे रोमिलता से उत्पन्न आकृतिक लक्षणों की उपस्थिति में पादपों की पेरेनकाइमा कोशिकाओं तक नहीं पहुंच पाते हैं। पादप की बाह्य त्वचा सेलुलोस द्वारा बने दीर्घरोमों के स्थूल स्तर से ढकी होती है, जिसके कारण कीट सतह तक नहीं पहुंच पाते हैं। इससे उनके भरण तथा अंडनिक्षेपण पर प्रभाव पड़ता है।

पेन्टर (1951) के अनुसार सामान्य और घनी रोमिलता वाली सोयाबीन की किस्में (क्लार्क जाति की लगभग समजीनी लाइने तथा 'हैरोसोथ') लीफ होपर कीट *(एम्पोआस्का फैबी)* के लिए अत्यधिक प्रतिरोधी होती हैं। पादप सतह पर उपस्थित रोमों के लम्बे होने के कारण तथा लीफ होपर के नवजात निम्फ अपने छोटे मुखांगों के कारण पादप की सतह तक नहीं पहुंच पाते हैं। इससे निम्फों को भोजन नहीं मिल पाता है। इसी प्रकार का उदाहरण कपास में भी देखा गया है जहां रोमों की लम्बाई और सघनता का लीफहोपर जन-संख्याओं से व्युतक्रम संबंध होता है।

पादपों में रोमिलता की उपस्थिति से कई कीटों के भरण पर प्रभाव पड़ता है। पूर्ण आहार न मिलने से लार्वा की मृत्यु तक हो जाती है (सिलिंजर और गेलुन 1968) कोगन (1972)।

रोमिलता का सीधा प्रभाव कीटों के अंडनिक्षेपण पर भी पड़ता है। लुकेफार और साथी (1971) तथा स्टेडलवेचर और स्केल्स (1973) के अनुसार कपास के कीट, *हेलियोथिस जिया* और *हेलियोथिस विरीसेन्स* कपास के अरोमिल विभेदों की अपेक्षा कपास के ऐसे विभेदों पर अंडनिक्षेपण करते हैं जिनमें रोम होते हैं। वेवस्टर और साथियों (1973) के अनुसार अनाज की पत्ती खाने वाली भृंग का अंडनिक्षेपण गेहूं की प्रतिरोधी किस्म 'सी.आई. 8519' पर ग्रहणशील जाति 'जिनेसी' (डी.आई. 12653) की अपेक्षा बहुत कम होता है।

बहुत से कीटों में रोमिलता कीटों की गति के लिए यांत्रिक रोधों का कार्य भी करती है। कुछ त्वचारोम हुक के समान होते हैं जो एफिड (चेंपा), लीफ हाफरों को प्रभावित करते हैं।

आधारीय मोम

बढ़ती हुई फूल गोभी (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* किस्म *इटेलिका*) की सामान्य मोमयुक्त पत्तियां पत्ता गोभी की फिलियां भृंग के प्रति प्रतिरोधी होती हैं (एन्सटे और मूर 1954)। इसके साथ आधारीय मोम प्रकृति भी एफिड के प्रति प्रतिरोध में भिन्नता लाती है एफिड और सफेद मक्खी (व्हाईट फ्लाई) सामान्य मोम युक्त पत्तियों पर अच्छी तरह कालोनी बनाते हैं जबकि मोम विहीन पत्तियों पर उनकी वृद्धि नहीं होती है। आधारीय मोम एफिड के प्रकोप की प्रारंभिक दर को भी प्रभावित करता है (थोम्पसन 1967, मार्टिन और जूनियर 1970)

सिलिका

बहुत से पादपों में विशेषकर ग्रेमिनी, साइपरेसी और पाल्मी कुल में बाह्यत्वचा में सिलिका के निक्षेप मिलते हैं तथा इन निक्षेपों के कारण उत्पन्न प्रतिरोध के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

सिलिका की उपस्थिति वाले (सिलिकेटित) धान पर भरण करने से धान के तनाबेधक (*काइलो सप्रीसेलिस*) के मेन्डिवल्स टूट फूट जाते हैं। कुछ उर्वरक का प्रयोग करके सासामोटो (1957) ने धान में सिलीकी भवन बढ़ा दिया। साथ ही जब तनाबेधक को धान की दो ऐसी किस्में प्रदान की गई, जिनमें से एक में सिलिकेटित तथा दूसरी सामान्य धान किस्म थी तब तनावेधक के लार्वों ने सामान्य धान को वरीयता दी (सासामोटो

1958)। इसी प्रकार नाकानो और साथियों (1962) के अनुसार निम्न सिलिका अंशों की अपेक्षा उच्च सिलिका अंशों वाली भूमि में उगाए गए धान पर तनाबेधक का प्रभाव कम पड़ा।

अंगों का शारीरिक अनुकूलन

लुकमान और साथियों (1964) के अनुसार मक्के में उपस्थित बहुत से लक्षण जैसे हस्कों की लम्बाई, हस्कों की दृढ़ता तथा सिल्क का गोला बनना आदि अंगों के शारीरिक अनुकूलन का उदाहरण हैं। ये भुट्टों में लगने वाले कीट ईयरवर्म (*हीलियोथिस जिआ*) को प्रभावित करते हैं। सिल्क का गोला बनते समय भुट्टों के शीर्ष की सिल्क उस तेजी से नहीं बढ़ती है, जिस तेजी से इसके चारों ओर की सिल्क बढ़ती है। चारों ओर की सिल्क बढ़कर एक चौड़ी नली का आकार ले लेती है, जिसमें शीर्ष की सिल्क भर जाती है और 'एन' आकृति की गेंद समान रचना बन जाती है। इस कारण ईयरवर्म भुट्टे पर न पहुंच कर सिल्क तक ही सीमित रह जाता है। दीर्घ हस्क और सिल्क का प्रभाव ईयरवर्म पर सिल्क में उपस्थित रासायनिक कारकों पर लम्बे समय तक रहने के कारण होता है (बैक 1965)।

लिंकोलन और वाडले (1966) तथा जेन्किन्स और पेरोट (1971) के अनुसार कपास की 'फ्रीगो' (कपास, *गोसीपियम हिरसुटम* का उत्परिवर्ती रूप) जाति के सकरे सहपत्रों तथा उनके मुड़े होने से ईयरवर्म की उत्तरजीविता कम हो जाती है। कपास में फ्रीगो लक्षण के कारण बालवीविल के लिए भी प्रतिरोध बढ़ता है, साथ ही उसकी संख्या में भी कमी आती है।

मैथीस और कारपेन्टीयर (1963) के अनुसार गन्ने की कुछ जातियों के पादपों में पर्णछद तथा तने के बीच बने अक्ष में थोड़ी गहराई आ जाती है, जिसमें पानी भरने से नवजात लार्वों की मृत्यु

हो जाती है। इसी प्रकार कुछ जातियों में पादपों की निचली पत्तियों के गिरने से नवजात लार्वो को आश्रय नहीं मिल पाता है (प्रेम किशोर 1987, 1991)।

कुछ भौतिक कारकों का संयुक्त प्रभाव

कभी कभी प्रतिरोध की अभिव्यक्ति कई कारकों के सम्मिलित प्रभाव से होती है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं: अग्रवाल और साथियों (1967) के अनुसार कपास में पिंकवोलवर्म (*पेक्टीनोफोरा गोसीपिएला*) के लिए प्रतिरोध सहपत्रों की अनुपस्थिति, रोमिल पत्तियां, कोशिकाओं का प्रचुरोदभवन, उच्च गोसीपोल अंश तथा मकरन्दहीनता आदि, लक्षणों से आता है। इसी प्रकार धान तना बेधक (*काइलो सप्रीसेलिस*) तथा ज्वार तनावेधक (*काइलो पार्टेलस*) पत्तियों पर रोमिलता, तनों को लपेटे हुए पर्णच्छ, छोटे तथा दृढ़ तने और स्थूल अधोत्वचा आदि से प्रभावित होते हैं (पेटानाकामजोर्न और पाठक 1967, प्रेम किशोर 1991)।

(ब) जैव रासायनिक आधार

पादपों में रासायनों की उपस्थिति से उत्पन्न प्रतिरोध स्थाई तथा बहुत महुत्वपूर्ण होता है। वह वंशागत लक्षणों द्वारा संचालित होता है। इस कारण प्रतिरोध के लिए प्रजनन कार्यक्रम में इसकी अत्यधिक उपयोगिता होती है। प्रजनन द्वारा इस प्रतिरोध को नयी कृषि किस्मों में स्थापित करने के लिए प्रतिरोध को उत्पन्न करने वाले रासायनों की पहचान तथा वंशागति का ज्ञान आवश्यक है।

वे रासायनिक पदार्थ जो पादप में कीटों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं, निम्नलिखित तीन समूहों में रखे जा सकते हैं :

(i) अकार्बनिक रसायन जैसे सेलेनियम

(ii) प्राथमिक तथा मध्यवर्ती उपापचयज जैसे सिटरिक अम्ल, सिस्टीन और अन्य एरोमेटिक अमीनो अम्ल।

(iii) गौण अथवा विषम पदार्थ जैसे ऐल्कोलाइड। जैव-संश्लेषणात्मक रूप से द्वितीयक (गौण) पदार्थ दो मुख्य समूहों में बांटे जा सकते हैं। पहले (जैसे आइसोप्रीनोइड, एसीटोजेनिन, प्रोटोऐल्केलाइड और वास्तविक एल्केलाइड) ऐसे पदार्थ हैं, जो एक मुख्य जैव रासायनिक मार्ग द्वारा संश्लेषित होते हैं तथा दूसरे (जैसे ग्लाइकोसाइड, फ्लेवोनाइड, बेनजीफीनोन, विशेष कूमेरिन, संहत टेनिन और स्टिलीन) ऐसे पदार्थ हैं जो एक से अधिक जैवरसायनिक मार्गों द्वारा संश्लेषित होते हैं सारणी-2 में दर्शाए गए हैं। पादप में प्रतिरोध उत्पन्न करने वाले कुछ मुख्य पादप रसायन समूहों का यहां उल्लेख किया जा रहा है।

आइसोप्रीनोइड्स

ये रसायन कीटों के व्यवहार, उपापचय, संवेदी-कार्यिकी तथा अन्तः स्त्राविकी को एलोमोनिक कारकों के रूप में प्रभावित करते हैं। पादप रसायनों का यह मुख्य समूह अपने अंदर हेमीटरपीन्स से लेकर पोलीटरपीन्स को समाविष्ट किए हुए हैं। एलोमोन प्रायः मोनोटरपीन, सेस्कुइटरपीन, ट्राइटरपीनोइड, सेपोनिन तथा अन्य स्टीरोइड वर्गों में मिलते हैं। पादप जातियों में उपस्थित 'वाष्पीय तेलों' में मोनोटरपीनोइड मुख्य प्रभावी घटक होते हैं तथा इनके कुछ उदाहरण गोसीपोल, कुकुरविटेसिन, 3-केरीन तथा पीनेन हैं। इनका प्रत्येक अणु दिव-संवाहक का कार्य करता है (ओक्सानेन और साथी 1970, पाएने 1970, हीडिन 1974, डाकोस्टा और जोन्स 1971)।

कुछ विशेष पादपों जैसे *टेरीडियम एक्वीलिनम, एकाइरेन्थीस* जाति और *एबीस बालसेमिजा* में आइसोप्रोनोइडयुक्त हारमोन्स

1	2	3	4	5
	निकेन्डरा टोबेकम	निकोटीन	एल्कोग्लाइको-साइड	वुहर (1954)
हाइपेरा पोसटिका	*सोलेनम सेक्हरीटेरी*	सोलेनिन	एल्कोग्लाइको-साइड	कुहन और लौ (1955)
	मेडिकागो जाति			
	वाष्पीय आसवन से प्राप्त, वाष्पीय पदार्थ	कूमैरिन की उच्च सान्द्रता	लेक्टोन	वायरने और साथी (1967)
सिटोना सिलिन्ड्रिकोलिस	*मेलीलोटस इन्फेस्टा*	अमोनियम नाइट्रेटस		एकेसन और साथी (1989)
एपीकूटा जातियां	*मेलीलोटस* जातियां	कूमेरिन	लेक्टेन	जार्ज और साथी (1972)
एनथोनोमस ग्रेन्डिस	*हिविसकस सायरियाकस*	मोरिन		हेडिन और साथी (1955)
स्कोईटस मलटीइसड्रिएट्स	*यूलमस जातियां*	जुगलोन		गिलवर्ट और साथी (1967)
सिस्टोसरका ग्रीगेरिया	*एजाडिरेक्टा इन्डिका*	ट्राइटरपीनोइड		वटरवर्थ और मोरगन (1968, 1967)

1848 HRD/06—10B

1848 HRD/06—10A

सारणी - 2 : कुछ भरण निवारक द्वितीयक पादप पदार्थ

कीट	पादप जिन्हें निष्किर्षित किया गया	रसायन निष्कर्ष	प्रकृति	संदर्भ
1	2	3	4	5
स्पोडोप्टेरा लिट्टोरेलिस	*कोकुलस ट्राइलोवस*	आइसोवोलडाइन	ऐल्कोलाइड	वाडा और मानाकाटा (1968)
	पैरावेनजोइन ट्रीइलोवम	सेसक्सवाइट टरपीनोइड		वाडा और साथी (1970)
मन्डूका सेक्सटा	निकेन्डरा जाति	लिपिड घुलनशील पदार्थ	स्टीराएड	फ्रैंन्किल और साथी (1960)
हीलियोथिस जिया	चाइनाबेरी की पत्तियां	एजाडिरेक्टिन		मैकमिलन और साथी (1959)
प्रोडीनिया लिटूरा	*कोकुलस ट्राइलोवस*	आइसोवोलडाइन		वाडा और मुनाकाटा (1959)
लेप्टीनोटारसा डिसिमलिनिएटा	*सोलेनम डेमीसम*	डेमीसिम	एल्कोग्लाइको साइड	कुहन और गोहे (1947)
	सोलेनम पोलीयाडेमीयम	टोमेटिन	एल्कोग्लाइको-साइड	कुदन और लौ (1955)

1	2	3	4	5
		एजाडिरेक्टिन		गिल और लेविस (1971)
	मेलिया एजीडोराक	मीलेनट्रोइल		लेवी और साथी (1967)
मैलेनोप्लस विवीटेटस	मक्का, सोयाबीन और अन्य परपोषी पादप	डिजीटोनिन डायोसजिनिन होरडीनाइन एट्रोपिन लोवीनिन नोरनिकोटीन लूपीनिन		हारले और थोरस्टेनशन (1967)
माइजस परसिकी	सेब	फ्लोरिजिन		मोन्टगोमेरी और आर्न (1974)
ब्रीवीकोर्नी ब्रेसिकी	क्रूसीफेरी कुल	सिनीग्रीन		वेन्सलर (1952)
हीलियोथिस विरेसेन्स	कपास	गोसीपोल		लुकेफार और होघटेलिग (1988)
		क्वेरसेटिन		शेवर और लुकेफार (1969)
		सटिन		हेडिन और साथी (1974)

1	2	3	4	5
पेक्टीनोफोरा गोसीपियेला	कपास	गोसीपोल		शेवर और लुकेफार (1959)
		आइसोक्वेरसिट्रिन क्वेरसेटिन		
हीलियोथिस जिया	कपास	सटिन		हेडिन और साथी (1974)
		क्वेरसेटिन आइसोक्वेरट्रिन क्वेरट्रिन मोरिन		
प्लूटेला मेकुलिपेनिस	क्रूसीफेरी	सिनीग्रीन सिनलविन ग्लूकोचेरीरोलिन	ग्लाइकोसानइड	थोरस्टेनशन (1953)
		प्रोगोयट्रिन ग्लूकोनेपिन	ग्लाइकोसाइड	नायर और थोरस्टेनशन (1953)
पाइरोस्टा न्यूबिलेलिस	मक्के की पत्तियां	वेनजोथायाजोल 6-मीथोक्सीवेनजो-क्लोलिन		बैक (1960)
आपेरेथेरा ब्रूमेटा	आक की पत्तियां	टैनिन		फेली (1968)

1	2	3	4	5
एपीलेक्ना वेरीवेस्टिस	*फेसिओलस* जाति	फेसियोलूनेटिन	ग्लूकोसाइड	किंलगन वर्ग और बूचर (1950)
		लोटसटिन लिनमेरिन		
केलोसोब्रुक्स काइनेनसिस	*कोकुलस ट्राइलोबस*	कोकुलीलिडिन		वाडा और मुनाकाटा (1968)
मेलेनोप्लस विविटेटस	मक्का, सोयाबीन और अन्य परपोषी-पादप	डिजीटोनिन		हारले और थोरस्टिनसन (1957)
		डायोसजिनिन		
		डोरडेनाइन		
		एट्रोपिन		
		लोबिलिन		
		नोरनीकोटिन		
		लूपिनाइन		
एकिथोसीफोन पाइसंम	परसनिप्स के खाए जाने वाले भाग	माइरिसटिसिन		लिवेन्सटीन और कोसिडा (1963) क्रामेसका (1967)
		लुपिनाइन		
		13-हाइड्रोक्सीलुपेनाइन		
		17-हाइड्रोक्सीलुपेनाइन		
निफोटेटिक्स सिंक्टीसेप्स	*कोकुलस ट्राइलोबस*	कोकुलीलिडिन		वाडा और मुनाकाटा (1968)

होते हैं। ये हारमोन कीटों की विकास दर, प्रजनकता, दीर्घकाल तथा कायान्तरण को प्रभावित करते हैं। ये हारमोन नाशक कीटों की बाहुल्यता अथवा नाशक कीटों द्वारा क्षतिग्रस्त किए गए अथवा काटे गए विशिष्ट ऊतकों को नियंत्रित करते हैं जिससे पादप ओज को बनाए रखा जा सके।

पादपों में इन ऐलोमोनो की स्थापना उन्हें कीटों के विरुद्ध प्रतिरोधी बनाएगी। ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए कि पादपों में इनके द्वारा उत्पन्न प्रतिरोध की तीव्रता बढ़ाई जा सके।

एसीटोजेनिन

इन रसायनों की उत्पत्ति एसीटेट से होती है। ये केवल एसीटेट से ही बने होते हैं अथवा इनको बनाने वाले एसीटेट स्वयं दूसरे पादप उपापचयजों का भाग हो सकते हैं। एसीटोजेनिन महत्त्वपूर्ण रासायनिक संवाहक हैं जिसके कारण वे पादपों के विभिन्न भागों से कीटों को प्रभावित करते हैं। ये एसीटेट पादप की रासायनिक सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका बेन्जोक्यूवीनोन, फ्लेवोनोइड, कुछ कूमेरिन, टेनिन और स्टिलवीन के घटकों के रूप में पादपों में उपस्थित रहकर अदा करते हैं। ये पादपों को कीटों से रक्षा करने की क्षमता प्रदान करते हैं।

एसीटोजेनिनों से संबंधित दो प्रमुख एलीलोकेमिक रसायन 'जुगलोन' तथा 'डिम्बोआ' हैं। इन एसीटोजेनिन अणुओं का विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा ये अपनी उपस्थिति से पादपों को कीटों का प्रतिरोधी बनाते हैं।

डिम्बोआ तथा उससे संबंधित अन्य यौगिक मक्के के पादपों में बहुतायत में मिलते हैं। इन रसायनों की उपस्थिति यूरोपियन मक्का वेधक (*ओस्ट्रीनिया न्यूविलेलिस*) के लार्वों को पादपों पर भरण तथा वृद्धि से रोकती है। साथ ही उनकी उत्तरजीविता में

कमी लाती है। अधिक परिपक्व अवस्था में मक्के के ऊतकों में इस प्रकार का प्रतिकर्षी प्रभाव नहीं रहता है (वलुन और रोबिन्सन 1969, वलुन और ब्रिन्डले 1966)।

मक्का के पादपों में जहां डिम्बोआ पादपों की प्रारंभिक अवस्थाओं में मिलता है, वहां जुगलोन द्विबीजपत्री वृक्ष केरिया में उसकी वृद्धि के दूसरे वर्ष में उत्पन्न होने वाली शाखाओं के अंदर उच्च सांद्रता में मिलता है। जुगलोन ग्लूकोसाइड का एक रूप है। पादप भक्षी कीटों से केरिया वृक्ष की वृद्धि एक वर्ष से अधिक समय तक कम हो सकती है, लेकिन इसकी उपस्थिति से पादप मरते नहीं हैं।

शीकीमिक अम्ल और एसीटेट से बने एरोमेटिक रसायन

नौरिस (1977) के अनुसार रसायनों के इस मुख्य समूह के संबंध में अभी तक पूर्णतया यह निर्धारित नहीं हो सका है कि ये एलोमोन हैं अथवा केरोमोन हैं। इस दिशा में आगे अध्ययन की आवश्यकता है। इन यौगिकों को शीकीमिक अम्ल और एसीटेट मार्गों के जैव संश्लेषित संकरण से प्राप्त किया जाता है। इनके अंतर्गत फ्लेवोमाइड, वेन्जोफीनोन, संहत टेनिन, स्टिलवीन, लिगनिन तथा कुछ कूमेरिन आते हैं। पादप सुरक्षा रसायनों का यह महत्वपूर्ण समूह है।

कूअरसेटिन, माइरिसटीसिन, मोरिन तथा डी-केटेचिन फ्लेवोना के ऐसे उदाहरण हैं जो एलोमोनों के रूप में कीटों की कुछ जातियों और समजीनियों को प्रतिकर्षित अथवा रोकते हैं तथा कुछ को आकर्षित अथवा उत्तेजित करते हैं। इसी प्रकार अ-परपोषी (*मेगनोलिया कोवस*) में उपस्थिति सिसेमिन और कोव्यूसिन रेशम के कीट की वृद्धि को रोकते हैं तथा कोनीडेन्डरिन की पोषक (*उल्मस* जाति) में उपस्थिति नाशक कीट, *स्कोलाइटस*

मल्टीस्ट्रीएटस के भरण को तीव्र करती है (हीडिन और साथी 1974, इसोगाई 1973, केमीकाडो और साथी 1975)।

फ्लेवोनिड, फ्लेवन-3-ओ.एल. और डी-केटेचिन नाशक कीट *स्कोलाइटस मल्टीस्ट्रीएटस* के लिए भरण उत्तेजक है। इन पदार्थों के प्रकार्यात्मक समूह कार्बोनिल और हाइड्रोक्सिन में से एक की अनुपस्थिति तथा दूसरे की उपस्थिति, केरोमोनिक प्रभाव उत्पन्न करती है। ट्रान्स-सिनेमिक अम्ल के आर्थो अथवा पेरा स्थान पर यदि एक हाड्रोक्सिल अणु को जोड़ दिया जाए तो यह *स्कोलाइटस मल्टीस्ट्रीएटस* नामक नाशक कीट के लिए एलोमोन से केरोमोन में परिवर्तित हो जाता है (नौरिस 1977)।

ऐल्केलाइड

सभी संवहनी पादपों में 15 से 20 प्रतिशत तक ऐल्केलाइड होता है। इन पादप रसायनों में नाइट्रोजन सक्रिय तत्व के रूप में उपस्थित रहती है। इन्हें स्यूडोऐल्केलाइड, प्रोटोऐल्केलाइड तथा वास्तविक ऐल्केलाइड में आगे विभाजित किया जा सकता है। ऐल्केलाइड तंत्रिकातंत्र को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं।

तम्बाकू से प्राप्त ऐल्केलाइड 'निकोटिन' एलोमोन के रूप में अनेक कीटों को प्रभावित करता है। अपने विशेष कीटनाशी गुणों के कारण यह कृषि क्षेत्र में प्रारंभिक कार्बनिक कीटनाशी की भांति अब भी व्यापारिक स्तर में उपयोग किया जा रहा है। इसका विस्तृत एलोमोनिक प्रभाव है तथा यह तंत्रिका तत्र को प्रभावित करने वाला विष है। जहां निकोटीन की उपस्थिति अनेक कीटों के लिए विष का कार्य करती है, वहीं कोगन (1977) के अनुसार तम्बाकू के होर्नवर्म (*मेन्डुका सेक्सटा*) पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः ऐल्कोलाइड पर आधारित प्रतिरोध की भी अपनी सीमाएं हैं।

केकटस (*लोफोसीरिस शोटी*) में उपस्थित पीलोकेरीन तथा लोफोकेरीन उन *ड्रोसोफिला* जातियों के प्रतिकर्षी होते हैं जो केकटस का परपोषी की भांति उपयोग नहीं करते हैं। इसके विपरीत *ड्रोसोफिला पेकिया* इन ऐल्केलाइडों के प्रति सहनशील होती है क्योंकि केकटस इसका परपोषी है। कुहन तथा गोहे (1947) के अनुसार *सोलेनवन* जाति के पादपों से प्राप्त सोलेनिन, टोमेटिन और डेमीसिन नामक एल्केलाइड कोलेरेडो भृंग (*लेप्टीनोटारसा डेसिमलिनिएटा*) के लार्वों तथा वयस्कों को भरण से रोकते हैं और लार्वों की वृद्धि दर में भी कमी आती है। ऐल्कोलाएडीय एलोमोन लम्बी अवधि तक प्रभावी रहते हैं और इनका तत्कालिक प्रभाव होता है।

ग्लाइकोसाइड

ग्लाइकोसाइड असममित मिश्रित एसीटल हैं, जिनका शर्करा घटक सामान्य पादप मानोसेकराइडो अथवा 10 डाइसेकराइडो में से तीन रुटीनोज, सोफोरोस और सेमबूविओस जो सामान्य रूप से मिलते हैं अथवा 6 ट्राइसेकराइडों से आ सकता है। ग्लूकोज सामान्यतया ग्लूकोसाइडों का अर्धांश होता है। एग्लाइकोन भाग एक अथवा अनेक जैव-संश्लेषणात्मक मार्गों से आ सकता है। फीनोल जनित एग्लाइकोन भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित होते हैं। फीनोलिकों की उत्पत्ति शीकीमिक अम्ल-एरोमैटिक अम्ल अथवा एसीटेट मार्ग अथवा इनके संयुक्त मार्गों से होती है। साइनोहाड्रिन और आइसोथायोसाइनेट दो ऐसे एलीलोकेमिक ग्लाइकोसाइड हैं जिनकी उत्पत्ति के संबंध में पूर्ण ज्ञान उपलब्ध नहीं है।

एग्लाइकोन स्वतंत्र तथा अविकल दोनों ही रूप में उपस्थित रहकर पादपों की कीटों से रक्षा करते हैं। प्रायः जहां वाष्पशील अवगम उपस्थित होते हैं, वहां ही एग्लाइकोन आवेष्टित रहते हैं।

अविकल एग्लाइकोन एलोमोनो की भांति उन स्थितियों में लाभदायक होते हैं, जब कीट पादप को चबाता, बेधता अथवा ऊतकों को अन्तर्ग्रहित करता है।

पादप में ग्लूकोसाइड बनने का अर्थ है आविषालु एग्लाइकोनों का सुरक्षित भंडारण। यह विशेष प्रकार का भंडारण है जिसमें ये ग्लूकोसाइड सामान्य उपापचय से प्रभावित नहीं होते हैं। यह स्थिति यह प्रदर्शित करती है कि जब पादप को कीट से सुरक्षा की आवश्यकता होती है तो पादप इन एग्लाइकोनो को तेजी से बाहर निकालता है। कोई कीट जब पादप की बल्कुटी कोशिकाओं को क्षति पहुंचाता है तो ग्लूकोसाइड आक्सीकारक तथा जल-अपघटनीय प्रक्रमों के द्वारा एग्लाइकोनों में परिवर्तित हो जाते हैं।

लिचटेस्टीन और साथियों (1962) के अनुसार *ब्रेसिका रेपा* से प्राप्त 2-फीनाइलइथिइल ऑइसोथियोसाएनेट *ड्रोसीफिला मेलेनोगेटटर* के भरण पर प्रतिकर्षी प्रभाव डालता है तथा उच्च सान्द्रता पर उसे मार देता है। सरसों कुल पर भरण करने वाले कीटों के लिए आइसोथियोसाएनेट एलोमोनो के स्थान पर केरोमोनों की भांति प्रभाव डालते हैं। डेविड तथा ग्रार्डीनर (1966) के अनुसार सरसों कुल के पादपों में सिनिग्रीन की उपस्थिति विविध भक्षी एफिड, *माइजस परसीकी* को भरण करने से दूर भगाती है। इसी प्रकार मैंगलिटज और साथियों (1976) के अनुसार *मेलीलोटस ओफीसिनेलिस* तथा *मेलीलोटस अल्वा* नामक पादपों में उपस्थित सिस-ओ-हाइड्रोक्सीसिनेमिक अम्ल की उपस्थिति से *एपीक्यूटा* की चार जातियों का भरण रुक जाता है।

प्रोटीन रहित अमीनोअम्ल तथा प्रोटीऐज निरोधक

इन्हें पादप प्रतिरोध के जैव-रासायनिक आधार की दृष्टि से एक उद्गम (अमीनो अम्ल-पेप्टाइड-जैव संश्लेषणात्मक मार्ग) होने

के कारण एक समूह में रखा गया है। रोसेन्थल और साथियों (1977) के अनुसार शिम्ब, *डीओकिलआ मेगाकार्पा* के बीजों से प्राप्त प्रोटीन रहित अमीनो अम्ल केनावेनाइन ने कीटों, *मेन्डुका सेक्सटा* और *प्रोडीनिया इरीडेनिया* पर एलोमोन के समान प्रभाव दर्शाया है। इसी प्रकार के दूसरे अमीनो अम्ल, बी-साइनो-एलेनाइन को *विसिआ सेटाइवा* से प्राप्त किया गया है। यह टिड्डी *(लोक्स्टा माइग्रेटोरिया माइग्रेटोरिओइडस)* पर एलोमोन के समान प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव से कीटों में गीले मल का निकलना आरंभ हो जाता है तथा कीट की 5 दिनों में मृत्यु हो जाती है (स्लेसिन्जर 1976)।

कई पादपों द्वारा उत्पन्न प्रोटीऐस अवरोधक सूक्ष्म प्रोटीन होते हैं जिनका आणुविक भार 20,000 डाल्टन से कम होता है लेकिन 10,000 डाल्टन से भी कम हो सकता है अथवा 50,000 डाल्टन तक बड़ा भी हो सकता है। ये द्वितीय अथवा चतुष्टय की भांति उपस्थित हो सकते हैं (रेयान 1973)। कुछ एग्लाइकोन तथा फीनोलिक रसायन भी प्रोटिऐस का अवरोध करते हैं। पादपों में पाए जाने वाले विभिन्न प्रोटिऐस निरोधकों तथा उनके कुलों के संबंध में विस्तृत जानकारी लीनर और काकेड (1969) ने दी है। इन कारकों में से अधिकतर कीट के प्रकिण्वों का अवरोध करते हैं।

लिपके और साथियों (1954) ने पाया कि कच्ची सोयाबीन का अत्यधिक अम्लीय निष्कर्ष, *ट्राइवोलियम कनफ्यूसम* और *टेनीब्रिओ मोलीटर* नामक कीटों की प्रोटिओलिटिक प्रकिण्वों का अवरोध करता है।

चित्र 5 : कीट प्रतिरोधी पादप किस्म पी एफ जी एस 98 और कीट ग्रहणशील किस्म डी जे 6514

प्रतिरोध तथा क्षैतिज अथवा व्यापक प्रतिरोध में विभाजित किया जा सकता है। आजकल प्रतिरोध का यह वर्गीकरण अधिक प्रचलित हो रहा है।

कीट प्रतिरोध-प्रजनन विधियां

प्रत्येक प्रजनन विधि समयुग्मजता प्राप्त करने की दिशा में वह कदम है, जिसके परिणाम स्वरूप समयुग्मज वंशक्रम का

विकास होता है। इस वंशक्रम के सभी पादप एक दूसरे से वंशागत लक्षणों (जिनमें प्रतिरोध लक्षण भी सम्मिलित हैं) में समान होते हैं। कीट प्रतिरोधी पादपों के प्रजनन के लिए निम्नलिखित प्रजनन विधियां उपयोग में लायी जाती हैं (चित्र 6)।

चित्र-6 : कीट प्रतिरोध के लिए ज्वार में पादप प्रजनन

सामूहिक चयन

इस विधि में स्वयं परागित पादपों से बहुत से समलक्षणी पादपों को प्रतिरोध के लिए चुना जाता है। फिर इनकी संततियों को मिलाकर एक किस्म का विकास कर लिया जाता है। इस किस्म अथवा जाति के पादप आकृतिक रूप में समान हो सकते

हैं, परन्तु कई अन्य रूपों में भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए एक सामूहिक चयन से उत्पन्न गेहूं की जाति के घटकीय वंशक्रम एक समान उपज, ऊंचाई तथा परिपक्वता प्रदर्शित करेंगे लेकिन उनमें प्रतिरोध कम या अधिक हो सकता है।

इस विधि द्वारा किस्मों का सरलता से विकास किया जा सकता है और उनमें उपस्थित विषमयुग्मजता के कई लाभ (विशेषकर कीट प्रतिरोध संबंधी) होते हैं जो इन्हें शुद्ध वंशक्रम वाली किस्मों से अलग करते हैं।

शुद्ध वंशक्रम किस्में

इस प्रकार की किस्मों का विकास पहले से ही उपस्थित वाणिज्यिक किस्मों से किया जाता है। प्रत्येक शुद्ध वंशक्रम को एक स्वयं परागित समयुग्मज पादप की संतति से प्राप्त किया जाता है। इस संतति को उत्तरोत्तर पीढ़ियों में कीट प्रतिरोध तथा ऐच्छिक लक्षणों के लिए प्रेक्षित किया जाता है। यदि पता चलता है कि शुद्ध वंशक्रम इच्छित परिणामों वाली है तो इसका संवर्धन करके एक नई किस्म का विकास कर लिया जाता है।

वंशक्रम चयन

इस विधि में जो पादप अथवा वंशक्रम उपयोग में आते हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक होती है। बाद में यह संख्या धीरे-धीरे कम की जाती है जिससे कि श्रेष्ठ पादप अथवा वंशक्रम शेष रह जायें। इन उत्तरजीवी पादपों अथवा वंशक्रमों से एक किस्म को संश्लेषित किया जाता है। उदाहरण के लिए इस विधि के आरंभ में एक संकर किस्म से प्राप्त पादपों अथवा प्रवेशित पादपों की संख्या 1000 से 10,000 हो सकती है। यदि वंशक्रम उपयोग में लाये जाते हैं तो उनकी संख्या 100 से 1000 तक हो सकती है।

यदि नवोद्भिद चयन विधियां अपनाई जायें तो अधिक संख्या में पादप छांटे जा सकते हैं। अच्छे चयन के लिए यह आवश्यक है कि लगाये जाने वाले पादपों की संख्या कम हो।

इन विधियों में पादपों को मुख्य कीट जाति के विरुद्ध छांटा जाता है। इस छंटाई के फलस्वरूप प्राप्त पादपों की पुनः मुख्य कीट के प्रति छंटाई की जाती है। इन पादपों की संततियों का भी इसी प्रकार परीक्षण किया जाता है। इसका उद्देश्य होता है कि ऐसे पादपों का चयन किया जाए जो मुख्य कीट के प्रति प्रतिरोध दिखाते हैं। इसके साथ साथ यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि इन पादपों की मुख्य कीटों के विरुद्ध छंटाई करते समय इनका दूसरे नाशक कीटों के प्रति क्या व्यवहार है तथा यह कैसी उपज देते हैं।

पैतृक अथवा जनक वंशक्रमों की उत्पत्ति उस बीज से भी हो सकती है जिसे ऐसे व्यष्टिगत पादपों से प्राप्त किया जाता है जो अत्यधिक कीटग्रस्त खेतों में प्रतिरोध दिखा रहे होते हैं। यह क्षेत्र परीक्षण उपखंड, बीज उपखंड अथवा छोड़े गये क्षेत्र हो सकते हैं। इन क्षेत्रों में बीजों को 100 से 1000 पादपों तक से प्राप्त किया जा सकता है। इन बीजों से बनने वाले वंशक्रमों का पहले प्रतिरोध के लिए परीक्षण किया जाता है फिर इनमें से ऐसे 10 वंशक्रमों अथवा पादपों का चयन किया जाता है जिनमें कीटों के प्रति कुछ प्रतिरोध होता है। यदि आवश्यक हो तो इन वंशक्रमों पर अन्य परीक्षण भी किये जा सकते हैं। इनमें से एक या सभी वंशक्रमों को मिलाकर ऐसी जाति की रचना की जा सकती है जो कीट के प्रति प्रतिरोधी हो।

इस प्रकार की विधि में यह देखा गया है कि यदि किस्म की उत्पत्ति उन वंशक्रमों से होती है जिनका बीज कीट ग्रस्त क्षेत्र से

इकट्ठा किया गया है तो उनमें प्रतिरोध की मात्रा कम होती है। इसका कारण इन वंशक्रमों में पराग का ग्रहणशील पादपों से आना है। इसके विपरीत व्यष्टिगत पादप द्वारा उत्पन्न जाति में प्रतिरोध की मात्रा अधिक होती है। अतः कीट प्रतिरोध के विकास के लिए यह आवश्यक है कि वंशक्रमों का चयन न करके पादपों का चयन किया जाए, जिससे कि प्रतिरोध में कमी दिखाने वाले स्त्रोतों पर नियंत्रण किया जा सके। वैसे बीज वंशक्रमों में भी प्रतिरोध की मात्रा एक या अधिक प्रत्यावर्ती चयन चक्रों द्वारा बढ़ाई जा सकती है।

संकरण

इस विधि में दो शुद्ध वंशक्रम किस्मों को संकरित किया जाता है जिसका उद्देश्य प्रत्येक जनक के ऐच्छिक लक्षणों को संयुक्त करना है। पादप प्रजनक इस विधि द्वारा कीट प्रतिरोध के लिए उत्तरदायी कई लक्षणों को एक किस्म में संयुक्त कर सकता है। एक विशेष संकर से उत्पन्न सभी पादप पहली पीढ़ी में आनुवंशिक रूप से एक समान होते हैं, लेकिन व्यष्टिगत प्रतिरोधी जीनों के लिए समयुग्मज अथवा विषमयुग्मज होते हैं और यह इस बात पर निर्भर करता है कि जनक की प्रकृति क्या थी। आनुवंशिक विसंयोजन दूसरी पीढ़ी और बाद की पीढ़ियों में उत्पन्न होता है।

सभी प्रजनन विधियों में समयुग्मजता को उत्तरवर्ती पीढ़ियों को स्वयं परागित करके प्राप्त कर लिया जाता है। प्रतिरोध के लिए चयन दूसरी पीढ़ी और उसके बाद की पीढ़ियों में एक या दो मुख्य विधियों जैसे वंशावली और भारी (बिपुल) संख्या में चयन, के अनुसार किया जाता है।

वंशावली (पैडिग्री) विधि

वंशावली विधि में कीट प्रतिरोध संबंधी व्यष्टिगत पादपों का दूसरी पीढ़ी में ही चयन (वरण) कर लिया जाता है। इन चयन किये गये पादपों की संततियों का प्रत्येक उत्तरवर्ती पीढ़ी में प्रतिरोध के लिए पुनः चयन किया जाता है जिससे कि समयुग्मजता प्राप्त कर ली जाए (चित्र 7)।

वल्क (बिपुल) संख्या विधि

बिपुल संख्या चयन विधि में आरंभिक विसंयोजित होती हुई पीढ़ियों का बिना चयन (वरण) किये ही संचय कर लिया जाता है। इसके बाद की पीढ़ियों में जब अधिकांश पादप समयुग्मज (एक समान) हो जाते हैं तो व्यष्टिगत पादपों (पादप विशेषों) का चयन प्रतिरोध के लिए कर लिया जाता है। इन पादपों की संततियों में वंशावली विधि का प्रयोग करके कीट प्रतिरोधी जाति का विकास किया जाता है। (चित्र 8)

प्रतीप संकर विधि (बैक क्रास)

पादप प्रजनन की इस विधि द्वारा एक इच्छित लक्षण को ऐसी कृषि योग्य जाति में स्थानान्तरित किया जाता है जो एक विशेष क्षेत्र के लिए अनुकूली होती है। यह इच्छित लक्षण प्रायः अनैच्छिक अथवा प्रतिकूलित स्रोतों से आता है। इस विधि में प्रतिकूली (अप्रत्यावर्ती) जनक तथा अनुकूली (प्रत्यावर्ती) जनक के बीच संकर बनाया जाता है। स्थानान्तरित किया जाने वाला लक्षण यदि प्रभावी है तो उसकी पहचान सुगमता से की जा सकती है। इस संकर से प्राप्त इच्छित लक्षणों वाले पादपों को फिर प्रत्यावर्ती जनक के साथ प्रतीप संकरित (बैक क्रास) किया जाता है। अब इस प्रतीप संकर से उत्पन्न इच्छित लक्षणों की संतति को पुनः प्रत्यावर्ती जनक से संकरित किया जाता है। इस प्रकार का प्रतीप संकरण उस समय तक चलता रहता है, जब

कीट प्रतिरोध के लिए पादप प्रजनन

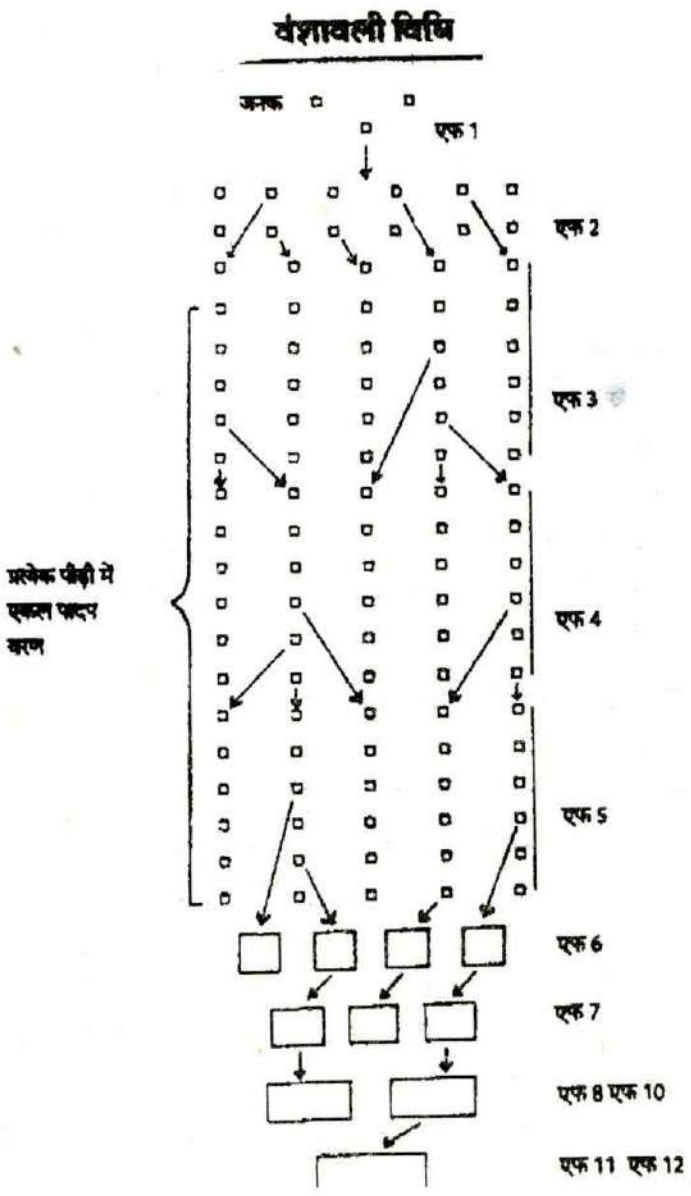

चित्र - 7 : वंशावली विधि

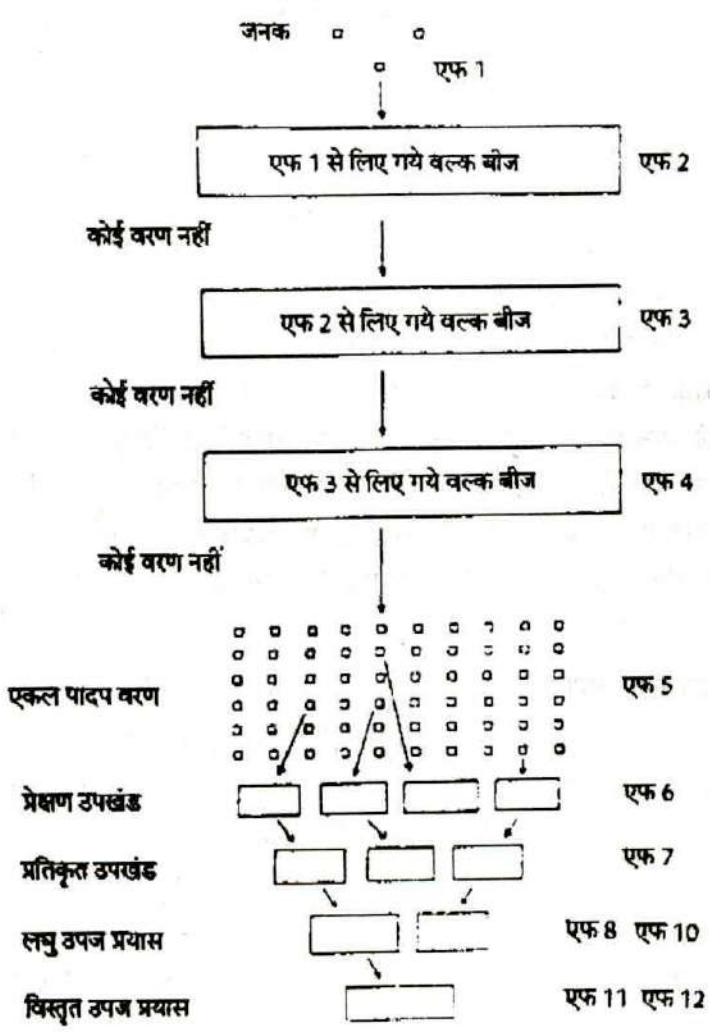

चित्र - 8 : वल्क (विपुल) संख्या विधि

तक कि पर्याप्त मात्रा में प्रत्यावर्ती जनक से उत्पन्न जर्मप्लाज्म एकत्रित नहीं हो जाता है। संकरण के बाद समलक्षणीय प्रत्यावर्ती चयन को एक या दो चक्रों तक स्वपरागित करना चाहिए, जिससे कि ऐच्छिक लक्षण का विस्तार किया जा सके अथवा उसकी जीन आवृत्ति में वृद्धि हो सके।

स्थानान्तरित होने वाला लक्षण यदि अप्रभावी है तो प्रत्येक संकरण के बाद एक पीढ़ी के स्व-निषेचन की आवश्यकता होती है। जिससे कि इच्छित लक्षण का लक्षणप्रारूप पहचाना जा सके।

पर-परागित फसलों में प्रत्येक संकर के लिए अधिक से अधिक पादप उपयोग में लाये जाने चाहिए। प्रयोग किये जाने वाले जनकों की संख्या का निर्धारण सुचालित किये जा सकने योग्य पादपों की संख्या पर निर्भर करता है। यदि अधिक संख्या में पादपों का प्रयोग किया जायेगा तो प्रत्यावर्ती जनक में अधिक आनुवंशिक पृष्ठभूमि तथा अप्रत्यावर्ती जनक से ऐच्छिक जीनों, की प्रप्ति होगी।

प्रत्यावर्ती चयन

इस प्रकार का चयन विषमांगी परपरागति फसलों के लिए अधिक अनुकूली होता है। इसके द्वारा अत्याधिक वंशागत ऐच्छिक जीनों को सरलता से विस्तृत समष्टियों में सांद्रित किया जा सकता है। इस विधि का प्रयोग बहु-नाशक कीट प्रतिरोध वाले पादपों का विकास करने के लिए किया जाता है। यह विधि आजकल बहुत प्रचलित है, क्योंकि इसमें प्रयुक्त होने वाले लक्षण वंशागत होते हैं और कीट प्रतिरोध के प्रजनन के लिए अत्यधिक उपयुक्त होते हैं।

यह विधि आनुवंशिकता को बनाये रखने में सहायक होती है तथा कम खर्चीली होती है। साथ ही यह अन्य प्रजनन विधियों

जैसे पादप चयन तथा प्रतीव संकर को समाविष्ट कर सकती है। इस विधि में इच्छित लक्षणों वाले पादपों अथवा वंशक्रमों का विस्तृत संकर किस्म पादपों अथवा जर्मप्लाज्म (जननद्रव्य) कोश से चयन किया जाता है। चयन करते समय इस तरह के सतत प्रयत्न करने चाहिए जिससे कि पलायन से प्रभावित प्रतिरोध का चयन न हो। यदि पादपों में पलायन अंश अधिक होगा तो इच्छित लक्षण की जीन आवृत्ति कम हो जाएगी। पलायनों का अधिक प्रभाव प्रभावी लक्षणों पर न होकर अप्रभावी लक्षणों पर होगा। चयन के प्रत्येक चक्र में पादपों अथवा वंशक्रमों की संख्या 25 से 100 अथवा अधिक होनी चाहिए। इससे जर्मप्लाज्म विस्तृत हो जाएगा और मूल पादपों की अपेक्षा परिणामी पादपों में हानिकारक लक्षणों की आवृत्ति कम हो सकेगी।

चयन के एक चक्र में चयन किये गये पादप अथवा वंशक्रमों को अन्तः परागित करके उनसे बीज प्राप्त किया जाता है। इस बीज को उगा कर दूसरे चक्र में उग रही इच्छित लक्षण की संतति से अन्य पादपों का चयन किया जाता है। इन पादपों को एक या दो पीढ़ियों में उगाकर तथा इनसे पादपों का चयन कर उनमें इच्छित प्रतिरोध प्राप्त किया जाता है।

विभेद उत्पन्न करना

विभेदों का बनाना भी एक पादप प्रजनन विधि है। यह लम्बे अन्तराल में कई प्रजनन और परीक्षण विधियों के समिश्रण से उत्पन्न होते हैं।

चयन का उपयोग

व्यष्टिगत विशेषकों के लिए पादपों अथवा वंशक्रमों का चयन खेतों अथवा ग्रीन हाऊस में किया जा सकता है। जब थोड़े समय में अधिक पादप संख्याओं की छंटाई करनी होती है तो ग्रीन हाऊस में

नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत चयन किया जाता है। हेन्सन (1972) के अनुसार जिन पादपों का चयन ग्रीन हाऊस में किया गया, उनमें खेतों से चयनित पादपों की अपेक्षा ओज तथा उपज कम थी। यह स्थिति बताती है कि पादपों का चयन खेत तथा ग्रीन हाऊस दोनों ही से करना चाहिए। एल्गिन और साथियों (1970) के अनुसार चयन की तीन विधियां होती हैं :

(i) स्वतंत्र चयन तथा उत्तरोत्तर निराकरण : इस प्रकार का चयन पहले एक अथवा अधिक कारकों के लिए किया जाता है बाद में शेष पादपों का अतिरिक्त कारकों के लिए चयन किया जाता है। यदि आवश्यक होता है तो इन चयन किये गये पादपों का संयोग कराकर एक नये पादप चक्र को उत्पन्न कर लिया जाता है और फिर उसमें से अतिरिक्त चयन किया जाता है।

(ii) अनुवद्ध चयन : इस प्रकार के चयन में एक लक्षण का ही लगातार कई पीढ़ियों में चयन करते हैं, जिससे कि उसे पादपों में संजोया जा सके। इसके बाद इसी प्रकार दूसरे लक्षण के लिए यही प्रक्रिया दोहरायी जाती है। यह अनुक्रम उत्तरोत्तर लक्षणों के साथ चलता रहता है।

(iii) सूचक चयन : इस विधि के अंतर्गत पादपों का विभिन्न लक्षणों के लिए आंकलन किया जाता है। उन पादपों को रख लिया जाता है, जिन्हें अधिकतम अंक मिलते हैं तथा उनका फिर पुनर्योजन किया जाता है। उसके उपरान्त फिर चयन प्रक्रम आरंभ हो जाता है।

इन तीनों चयन विधियों में सूचक चयन सर्वोत्तम है। उसके बाद स्वतंत्र चयन तथा उत्तरोत्तर निराकरण फिर अनुबद्ध चयन आता है।

इच्छित चयनों के बाद एक अथवा अधिक चयनित पादपों को मिलाकर एक नई किस्म का विकास किया जाता है। उत्तरोत्तर पीढ़ियों में अन्तः प्रजनन और उपज में कमी होने की आशंका के

कारण पादप किस्मों को कभी भी एक पादप से उत्पन्न नहीं किया जाता। यदि जनक आंशिक रूप से अन्तःप्रजात है तो आगामी पीढ़ियों में अन्तःप्रजनन को रोकने के लिए 4 से अधिक, नहीं तो अच्छा यह होगा कि कम से कम 16 जनकों का उपयोग किया जाए।

मूल्यांकन

चयन द्वारा प्राप्त पादपों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए, जिससे कि यह निर्धारित किया जा सके कि चयन विधियों अथवा प्रजनन तकनीकियों तथा उनसे उत्पन्न होने वाले प्रतिरोधी पादप, जर्मप्लाज्म अथवा प्रायोगिक किस्म कितने प्रभावी हैं।

विशिष्ट प्रजनन विधियों द्वारा उत्पन्न पादपों का मूल्यांकन निम्नलिखित परीक्षणों से किया जा सकता है।

(i) चयन किये गये पादप अथवा क्लोन की प्रक्रिया का परीक्षण

(ii) ग्रीन हाउस में हाथ से परागित संतति का परीक्षण

(iii) बहुसंकर संतति परीक्षण

(iv) स्वतंत्र परागित संतति परीक्षण

(v) वाणिज्यिक संकर परीक्षण

परागण विधियां

बीज स्वपरागण और पर-परागण विधियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। स्वपरागण विधि में बीज उत्पन्न कर रहे भागों को अनेक विधियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। स्वपरागण विधि में बीज उत्पन्न कर रहे भागों को अनेक विधियों द्वारा इस प्रकार ढक दिया जाता है कि दूसरे पुष्पों के पराग उन तक नहीं पहुंच सकें और मिलने वाला बीज शुद्ध हो।

पर-परागण विधि में बीज की विपुंसन (इमेसकुलेसन) अथवा उसके बिना भी उत्पन्न किया जा सकता है। यह कठिन और

अधिक समय लेने वाली क्रियाविधि है। इसे केवल उन्हीं स्थितियों में उपयोग में लाया जाना चाहिए जहां स्वपरागित बीज उपयुक्त नहीं होता। विपुंसन तीन विधियों द्वारा किया जा सकता है।

(i) परागकोषों को नुकीली चिमटियों द्वारा अलग करना।

(ii) पुष्पों को 57 प्रतिशत सान्द्रता वाले अल्कोहल में 10 सेकिण्ड तक डुबो कर परागों को मार देना, और

(iii) एस्पाइरेटर द्वारा परागकोषों को खींच लेना। इसके लिए एस्पाइरेटर की नलिका का मुख परागकोषों से कुछ बड़ा होना चाहिए।

विपुंसन के बिना भी पर-परागित बीज मधुमक्खियां तथा हाथ का उपयोग करके प्राप्त किया जा सकता है।

कीट प्रतिरोध के लिए प्रजनन

किसी भी फसल में कीट प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम को प्रारंभ करने से पहले कई विशेष बातों का ज्ञान होना एक मूल आवश्यकता है। पहली बात कीट पादप पारस्परिक क्रिया अथवा परपोषी परजीवी संबंध को दर्शाती है। कीट एकाहारी अथवा विविध भक्षी हो सकता है तथा यह एक परपोषी को वरीयता देकर दूसरे को छोड़ सकता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात परपोषी पादप के साथ-साथ कीट के जीवन चक्र तथा उसके प्रजनन की विधि का ज्ञान प्राप्त करना है। यहां कीट जातियों की संख्या गतिकी तथा उनके प्रजनन समय के साथ साथ फसली पादप और कीट की पर्यावरण से पारस्परिक क्रिया तथा जीनप्रारूप के प्रभाव का अध्ययन आवश्यक होता है।

कुछ फसलीय पादपों पर नाशक कीटों की कई जातियां साथ साथ आक्रमण करती हैं और इनमें से किसी एक के प्रति यदि पादप प्रतिरोध दिखाता है तो उसका प्रभाव अन्य नाशक

कीट जातियों को प्रभावित करता है। इस प्रकार के प्रतिरोध का परिस्कृत उदाहरण कपास से दिया जा सकता है, जहां रोमिलता के कारण जैसिड के प्रति प्रतिरोध बढ़ जाता है, कम रोमिलता से कपास में बालवर्म के प्रति ग्रहणशीलता बढ़ जाती है। साथ ही अधिक रोमिलता के कारण कम अंडनिक्षेपण होता है।

पादप-प्रतिरोध प्रजनन की अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण बात पादप प्रतिरोध कार्यक्रम में लगे हुए पादपजनकों, कीट वैज्ञानिकों तथा रसायन वैज्ञानिकों के बीच की पारस्परिक क्रियायें हैं जिनसे वे इस कार्यक्रम में सम्मिलित प्रयास करते हैं। यहां यह महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार के कार्यक्रम में कोई भी वैज्ञानिक व्यक्तिगत रूप से अधिक सफल नहीं हो सकता। इसलिए यह आवश्यक है कि इस कार्यक्रम की सफलता के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ को न सोचकर जनहित को ध्यान में रखते हुए आपस में ऐसा तालमेल रखा जाए कि सहयोग प्रभावी हो।

कीट प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम : प्रारम्भिक आवश्यकताएं

प्रतिरोध के स्रोतों का महत्त्व : कीट प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम की महत्वपूर्ण आवश्यकता, जातीय अथवा उपजातीय स्तर पर एक विशेष फसल जाति में प्रतिरोध के स्रोत को ढूंढना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति, प्राकृतिक और कृत्रिम प्रकोप के अंतर्गत बड़े पैमाने पर प्राप्य अपसारी आनुवंशिक सामग्री की छंटाई (स्क्रीनिंग) द्वारा की जा सकती है।

पोषक सस्य की उपयोगिता : कभी-कभी जब एक विशेष स्थान पर प्राकृतिक रूप से उपस्थित प्रकोप की मात्रा कम होती है तब पोषक (ग्रहणशील) पादप उगाकर उसे बढ़ाने का सिद्धान्त प्रयोग में लाया जा सकता है। इसका प्रयोग उस फसल के साथ

किया जा सकता है जिसमें छंटाई (स्क्रीनिंग) कार्यक्रम चल रहा है। उदाहरण स्वरूप कपास में जैसिडों की संख्या को बढ़ाने के लिए कपास या भिंडी की अधिक ग्रहणशील किस्म की बुवाई कपास के जर्मप्लाज्म अथवा प्रजनन नर्सरी के बीच में की जाती है। अमेरिका में **ब्रेसिका जूनसिआ** को टारनिस्ड पादप बग के प्राकृतिक पोषण के लिए पोषक सस्य के रूप में कपास की फसल के साथ साथ लगा दिया जाता है। ज्वार में कीट प्रतिरोध के लिए विभिन्न जातियों की छंटाई करते समय जुलाई से पहले 'स्वर्णा किस्म' या अन्य ग्रहणशील किस्म लगाकर शूटफ्लाई का प्रकोप बढ़ाया जाता है।

बड़े पैमाने पर संवर्धन : यदि प्राकृतिक प्रकोप को बढ़ाना संभव न हो अथवा अधिक कीट दबाव की आवश्यकता हो तो उस अवस्था में कीट वैज्ञानियों को चाहिए कि वे कृत्रिम प्रकोप हेतु कीट प्राप्त करने के लिए कीटों का बड़े पैमाने पर संवर्धन करें और इससे प्राप्त कीटों का खेतों में मोचन करें जिससे कि लगाई गई विभिन्न किस्मों में प्रतिरोध का प्रभावी ढंग से तुलनात्मक मूल्यांकन किया जा सके। इस प्रकार का बड़े पैमाने पर संवर्धन मक्का तथा ज्वार के तनावेधक, शूटफ्लाई तथा धानवीविल आदि के लिए बहुत अधिक प्रचलित है।

प्रक्रिया विधियों का मानकीकरण : पादप के जीन प्रारूप में कीट प्रतिरोध के मूल्यांकन की प्रक्रिया को मानकीकृत किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए ज्वार की शूटफ्लाई के डैडहर्ट की गणना, विभिन्न फसलों पर अगोला वेधक का प्रकोप होने का समय तथा पादप तनों के अग्र में वेधित तनामूलाग्रों की गणना, कपास की विभिन्न किस्मों में प्रति पत्ती जैसिड तथा निम्फों की संख्या की गणना अथवा नाशक कीट द्वारा होने वाली क्षति के

आधार पर विभिन्न फसलों की किस्मों तथा वंशक्रमों को श्रेणीबद्ध करना आवश्यक है।

पादप प्रतिरोध और नाशक कीट : कीट और उसकी संख्या गतिकी पर पादप का प्रभाव बहुत महत्वपूर्ण है। कीट परिवर्धन के संबंध में कीट पर पादपों का प्रभाव, प्रजनन क्षमता तथा इनस्टारों की वृद्धि के अन्तराल का अध्ययन विभिन्न जीन प्रारूपों में किया जाना चाहिए। जैसिड और वालवर्म के लिए कपास में तथा तनाबेधक के लिए ज्वार तथा मक्का में ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं।

प्रतिरोध के स्रोतों का निर्धारण हो जाने के बाद निम्न बातें जानना आवश्यक है।

प्रतिरोध की क्रिया विधि के प्रकारों को ज्ञात करना : प्रतिरोध की क्रिया-विधि के प्रकारों के ज्ञान के लिए निम्नलिखित बातें जानना आवश्यक है-

(i) प्रतिरोध के लिए उत्तरदायी कारक,

(ii) क्या प्रतिरोध परपोषी पादप की आकृतिक बनावट के कारण है अथवा जैव-रासायनिक कारकों के कारण है, और

(iii) प्रतिरोध वास्तविक है अथवा आभासी।

प्रतिरोध के लिए उत्तरदायी विशेष कारक की आनुवंशिकी: प्रतिरोध जिस विशेष कारक से उत्पन्न होता है, उसकी आनुवंशिकी का ज्ञान होना आवश्यक है। जैसे कि कपास में जैसिड के प्रति प्रतिरोध अत्याधिक रोमिलता के कारण होता है, गेहूं में ठोस तने की उपस्थिति आरा मक्खी के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करती है, गन्ने के पादप में अगोला वेधक के लिए प्रतिरोध उसकी कठोरता तथा स्पिन्डिल पत्ती की लंबाई पर आधारित होता है तथा कपास में अधिक गॉसीपोल की मात्रा उसे वालवर्म के विरुद्ध प्रतिरोधी बनाती है।

प्रजनन विधियों का उपयोग : प्रजनन के लिए प्रतिरोध के कारकों की आनुवंशिकी को जानने के बाद यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि कारक की आनुवंशिकता के अनुसार प्रजनन की किस विधि को चुना जाय। उदाहरणस्वरूप यदि प्रतिरोध के लिए उत्तरदायी लक्षण आनुवंशिकी रूप से मुख्य-जीन के द्वारा संचालित होता है तो वहां प्रजनन क्रियाविधि अनेक जीनों द्वारा संचालित लक्षणों से उत्पन्न होने वाले प्रतिरोध को प्राप्त करने में उपयोग में लायी जाने वाली प्रजनन क्रिया-विधि से भिन्न होगी।

वैज्ञानिकों को यह ज्ञात होना आवश्यक है कि प्रतिरोध के लिए उत्तरदायी लक्षणों का परपोषी पादप के अन्य सस्य लक्षणों से कैसा सह-संबंध है तथा इस सह-संबंध का उसी फसलीय पादप को ग्रसित करने वाले दूसरे कीटों तथा नाशक जीवों, पर क्या प्रभाव है, जिससे कि वे ऐच्छिक और अनैच्छिक संबंधों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न मानकों के अनुसार प्रतिरोधी वंशक्रमों अथवा जातियों का चयन कर सकें। अनैच्छिक सह-संबंध का उदाहरण कपास में रोमिलता (जो जैसिड को प्रतिरोध प्रदान करती है) और रेशे के गुण के बीच है, विशेषकर रेशे की लम्बाई तथा कपास में अवशेषों के अंशों के साथ ही साथ वालवर्म के लिए ग्रहणशीलता भी अच्छी तरह स्थापित है।

पादप प्रजनकों को इसलिए प्रजनन और चयन की ऐसी प्रक्रियाएं उपयोग में लानी चाहिए जिससे कि कपास की लम्बे लिन्ट (रेशे) वाली जैसिड प्रतिरोधी तथा वालवर्म के लिए सहनता वाली किस्मों का विकास किया जा सके। यदि प्रतिरोध लक्षण का अन्य प्रतिरोध लक्षणों से ऐच्छिक संबंध होता है तो एक प्रतिरोध लक्षण के लिए किया गया चयन उससे सह-संबंधित अन्य लक्षणों में भी समान रूप से सुधार लायेगा।

आनुवंशिक परिवर्तिता (विविधता) उत्पन्न करना

किसी भी प्रजनक के लिए प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम प्रारंभ करने से पहले यह आवश्यक है कि उसके पास पर्याप्त मात्रा में कीट के प्रति प्रतिरोध की *परिवर्तिता* उपलब्ध हो। परिवर्तिता उत्पन्न करने वाली कुछ प्रचलित विधियां निम्न हैं-

(i) आयात अथवा प्रवेशन

(ii) उत्परिवर्तन

(iii) संकरण

आयात अथवा प्रवेशन : प्रतिरोधी किस्मों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर एकत्रण अथवा प्रवेशन परिवर्तिता उत्पन्न करने की प्राथमिक विधि है। फ्रान्स में **फाइलेक्जेरा विटिफोलिया** के विरुद्ध अंगूर की उपरोक्त किस्मों का प्रवेशन इस प्रकार के महत्वपूर्ण उदाहरणों में से एक है।

आजकल एक देश से दूसरे देशों में आनुवंशिक सामग्री का व्यापक विनिमय विभिन्न फसलीय पादपों में परिवर्तिता उत्पन्न करने का प्राथमिक स्रोत बन गया है। सभी उपयुक्त सस्य गुणों वाली प्रतिरोधी पादप जाति की सीधे ही नये क्षेत्र में बुआई की जा सकती है। यदि जाति सस्य गुणों से उपयुक्त नहीं है तो प्रतिरोधी गुण होने के कारण इसे प्रजनन कार्य में प्रयुक्त होने वाले ऐसे दाता-जनकों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जो संकरण के बाद बनने वाले संकर को प्रतिरोध प्रदान करेंगे।

उत्परिवर्तन : जर्मप्लाज्म में यदि प्रतिरोध स्रोत उपलब्ध नहीं है तो ऐसी स्थिति में प्रतिरोध में परिवर्तिता उत्पन्न करने की विधि ही उत्परिवर्तन कहलाती है। प्रतिरोधी किस्मों अथवा प्रकारों को प्राप्त करने के लिए सस्य रूप से श्रेष्ठ लेकन ग्रहणशील किस्म को भौतिक अथवा रासायनिक उत्परिवर्तजनों से उपचारित किया जाता

है। इन उत्परिवर्तजनों में समस्थानिकों (आईसोटोपों) का उपयोग प्रमुख है। उत्परिवर्तजनों से उपचारित बीजों को उचित निर्देशों के अनुसार खेतों अथवा प्रयोगशाला में उगाकर इच्छित लक्षणों वाले पादपों का चयन किया जाता है। इन चयन किये गये पादपों को उचित चयन विधि द्वारा कृषि योग्य किस्म में बदला जाता है।

उत्परिवर्तन द्वारा इच्छित किस्म का विकास शीघ्र किया जा सकता है। इधर हाल के वर्षों में मूंगफली में इस प्रकार की किस्मों का विकास किया गया है तथा इस विधि का उत्कृष्ट उदाहरण भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा अमेरिका से आयातित कपास की **मिस्सैला अकाला** किस्म है। यह जैसिड के लिए ग्रहणशील किस्म थी और इसे जब एक्स-किरणों से उपचारित किया गया तो जैसिड प्रतिरोधी किस्मों का विकास हुआ।

संकरण : प्रतिरोधी पादपों को उत्पन्न करने की वह विधि, जिसके अंतर्गत एक जाति अथवा जातियों में पाये जाने वाले प्रतिरोध को दूसरी किस्म अथवा जातियों में स्थानांतरित किया जाता है, संकरण कहलाती है। उदाहरण के लिए यदि अधिक अनुकूली और सस्य रूप से श्रेष्ठ उगाई जाने वाली जाति कुछ निश्चित कीटों के प्रति ग्रहणशील है तो इसे प्रतिरोध स्रोत या स्रोतों के साथ संकरित करके इसमें इच्छित प्रतिरोध प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिरोध प्रदान करने वाली किस्म को दाता कहते हैं। प्रतिरोध का प्रतिरोध प्राप्त करने वाली किस्म में स्थानान्तरण प्रजनन की प्रतीप संकर विधि द्वारा किया जाता है। इस विधि में पुनरावृति जनक को इच्छित पादप संतति से बार-बार प्रतीप संकरित किया जाता है, जिससे कि दाता जनक से केवल प्रतिरोधी जीनों का ही स्थानांतरण हर प्रकार से उपयुक्त लेकिन ग्रहणशील

जाति में हो सके। प्रतिरोध का यह स्थानान्तरण इस किस्म की ग्रहणशीलता को समाप्त कर देगा।

प्रजनन की प्रतीप संकर विधि का उपयोग उन परिस्थितियों में अधिक उपयुक्त होता है, जबकि प्रतिरोध पर एक या दो मुख्य जीनों का नियंत्रण होता है। यह स्थिति गुणात्मक वंशागति को प्रदर्शित करती है। प्रतिरोध जब अनेक जीनों द्वारा नियंत्रित हो रहा होता है, जो विशेषकर योज्य आनुवंशिक नियंत्रण के अंतर्गत आता है तो वहां वंशावली विधि सबसे उपयुक्त होती है। यह स्थिति संख्यात्मक वंशागति को प्रदर्शित करती है। वंशावली विधि से प्राप्त हुए अतिक्रामी विसंयोजकों में प्रतिरोध की मात्रा दाता जनक से अधिक होती है।

चयन विधि : प्रवेशन, उत्परिवर्तन तथा संकर विधियों द्वारा प्रतिरोध के लिए परिवर्तिता उत्पन्न कर लेने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि इस परिवर्तिता की उचित व्यवस्था की जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति उचित चयन विधि द्वारा की जा सकती है। प्रतिरोध का आनुवंशिक नियंत्रण यदि गुणात्मक है तो ऐसे व्यष्टिगत प्रतिरोधी विसंयोजक जो अपने में अन्य ऐच्छिक लक्षण भी समाविष्ट किये होते हैं, को अगली फसल में कीट दबाव की स्थितियों में उगाया जाता है। इसके पीछे यह उद्देश्य निहित है कि व्यष्टिगत पादप का प्रतिरोध से संबंधित प्रजनन मूल्यांकन हो सके तथा उच्च प्रजनन मूल्यों वाली एक पादप संतति का उत्तरवर्ती चयन किया जा सके तथा उन्हें आगे बढ़ाया जा सके।

चयन प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण विचार यह है कि प्रजनन सामग्री की, नाशक कीट के उच्च प्रकोप के समय में छंटाई (स्क्रीनिंग) की जाए और उसका मूल्यांकन भी किया जाए। इसके फलस्वरूप वास्तविक प्रतिरोधी पादपों का ही चयन किया जायेगा।

कीट प्रतिरोध के लिए पादप प्रजनन

कभी-कभी जब लक्षण अनेक जीनों द्वारा नियंत्रित हो रहा हो तो समूह चयन अथवा वल्क (विपुल) चयन विधि सबसे सुगम और मितव्ययी होती है। ऐसी दशाओं में प्रतिरोधी पादपों का प्रत्येक वर्ष संचय करना चाहिए फिर कीट दबाव के अंतर्गत प्रतिरोधी किस्मों का चयन करना चाहिए जिससे कि प्रतिरोधी किस्म में स्थिरता लायी जा सके।

अध्याय - 8

कीट प्रतिरोधी पादप किस्में

कीटों के विरुद्ध पादप प्रतिरोध के लिए पादप प्रजनन कार्यक्रमों का व्यावहारिक परिणाम कीट प्रतिरोधी पादप किस्मों का मोचन करना है। स्प्रेग और दाह्मस (1972) के अनुसार फसलीय पादपों की 100 से भी अधिक जातियों अथवा अंतः प्रजातों का मोचन किया जा चुका है। यह 25 से अधिक कीट जातियों के लिए प्रतिरोध दर्शाती हैं। अल्फाअल्फा, जौ, सेम, मक्का, ज्वार, धान, गेहूँ तथा गन्ने में कीट प्रतिरोधी पादप जातियों का विकास किया जा चुका है। मैक्सवेल और साथियों (1973) के अनुसार कपास, कद्दू वर्गीय फसलें, घासें, जई, प्याज, मूंगफली, आलू, सोयाबीन तथा तंबांकू में भी कीट प्रतिरोध का उपयोग करके विभिन्न परिमाणों की सफलतायें प्राप्त की गयी हैं।

कीट प्रतिरोधी किस्म समेकित कीट प्रबंधन कार्यक्रम के लिए आधारशिला का कार्य करती है और इसका सबसे सफलतम उपयोग तब होगा जब इसे सस्य, रासायनिक तथा जैविक नियंत्रण विधियों के साथ उपबंध की भांति उपयोग में लाया जाए। वे फसलें जो निम्न आर्थिक स्तर की होती हैं, जैसे ज्वार, बाजरा व मोटे

अनाज, वहां कीट प्रतिरोधी जातियों का उपयोग ही कीट नियंत्रण का प्रमुख साधन होगा, क्योंकि इन फसलों के ऊपर अधिक व्यय साध्य साधनों, जिनमें कीटनाशी तथा उर्वरक प्रमुख हैं, का उपयोग औसत किसानों की आर्थिक अवस्था को देखते हुए नहीं किया जा सकता है (प्रेमकिशोर 1992, 1993)। कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग, लाभों तथा सीमाओं को प्रस्तुत वर्णन में दर्शाया गया है।

समेकित कीट प्रबंधन और कीट प्रतिरोधी किस्में

विश्व के विभिन्न भागों में अनेक फसलों में प्रतिरोध को ढूंढा गया है तथा इसकी मात्रा सामान्य से लेकर उच्च स्तर तक की पाई गई है। साथ ही प्राचीन परंपरागत किस्मों में प्रतिरोध विशेष रूप से पाया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिरोध का उपयोग कीट नियंत्रण के लिए बहुत पहले से किया जा रहा था परंतु इसका पूरी तरह लाभ नहीं उठाया जा सका है।

हार्वर (1972) तथा पाठक और सक्सेना (1976) के अनुसार कीट प्रतिरोधी किस्मों के अनेक लाभ हैं। यह कुछ प्रकरणों में कीट नियंत्रण के लिए एक प्रभावी, व्यावहारिक अथवा मितव्ययी नियंत्रण साधन हैं। वे और मुरडी (1965), गाहुकर और चिमांग (1976) एवं प्रेमकिशोर (1993) के अनुसार एक कीट जाति के प्रति पादपों में पैदा किया गया प्रतिरोध प्रायः अन्य कई कीट जातियों को भी प्रभावित करता है। कीट प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग विकासशील देशों में बहुत महत्वपूर्ण पाया गया है। इसके उपयोग में न तो अधिक धन की आवश्यकता होती है और न ही इनके उपयोग के लिए किसी विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। उच्च स्तर की प्रतिरोधी किस्मों को लगाकर प्रभावी कीट नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है जैसे आधुनिक धान की किस्मों का लगाना जो फुदका, **सोगैटोडस ओरिजीकोला** के प्रति उच्च स्तर का प्रतिरोध दिखाती हैं।

कीट नियंत्रण के लिए उच्च स्तर की कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से जहां एक ओर प्रभावशाली ढंग से कीटों का नियंत्रण होता है, वहीं दूसरी और कई समस्यायें भी उठ खड़ी होती हैं। इनमें नये कीट समजीनी प्ररूपों की उत्पत्ति प्रमुख है। सिमुरा (1972) के अनुसार इस प्रकार का उदाहरण फिलीपाइन में धान के ब्राउन प्लांट होपर तथा जापान में चेस्टनट गालवास्प, **ड्राइकोस्मस कुरीफिलस** में समजीनी प्ररूपों का उत्पन्न होना है। हार्वर (1972), कोगन (1975), कोपेल और मार्टिन्स (1977) के अनुसार पर्यावरण संबंधी कारकों के प्रभाव से कीट प्रतिरोधी किस्मों द्वारा प्रतिरोध की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। पेंटर (1951) के अनुसार कीट प्रतिरोधी किस्में प्रत्येक नाशक कीट समस्या का हल नहीं हैं। इनका प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए आवश्यक है कि विशेष कीट के नियंत्रण के लिए उपयोग में लाई जाने वाली विधियों में इन्हें सतर्कता से प्रयुक्त किया जाए, जिससे कि फसल विशेष में पादप सुधार कार्यक्रम सफल हो सके।

पेंटर (1951) ने समेकित कीट प्रबंधन को ध्यान में रखते हुए कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग की तीन श्रेणियां (i) मुख्य नियंत्रक के रूप में; (ii) अन्य कीट नियंत्रण विधियों के साथ उपबंध के रूप में; और (iii) अधिक ग्रहणशील जातियों के विरुद्ध संरक्षक के रूप, में निर्धारित की हैं।

प्रतिरोधी किस्म मुख्य कीट नियंत्रण के रूप में

संश्लेषित कार्बनिक कीटनाशियों के विकास से पूर्व ही कीट नियंत्रण के लिए पादप प्रतिरोध का उपयोग किया जा रहा है और कुछ कीटों को लंबे समय से प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से नियंत्रित किया गया, जिन कीटों के प्रति प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग किया गया, वे परपोषी विशिष्ट हैं। इसके मुख्य उदाहरण एफिड तथा स्केल कीट हैं (पेंटर 1951)।

कीट प्रतिरोधी पादप किस्में

कीट नियंत्रण में कीट प्रतिरोधी किस्मों के व्यावहारिक उपयोग के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं : फ्रांस में ***फाइलेक्जेरा*** कीट के नियंत्रण के लिए अमेरिका से अंगूर के प्रतिरोधी जड़ स्कंध का आयात। अफ्रीका में कीट प्रतिरोधी किस्मों द्वारा कपास के जैसिड **एम्पोस्का फेसिएलिस** का नियंत्रण तथा वूली एफिड, **एरियोसोमा लैनिजेरम** का सेब की कीट प्रतिरोधी किस्म "नार्दर्न स्पाई" द्वारा नियंत्रण (मार्टिन 1973, पेंटर 1951)।

पेंटर (1958) और मैक्सवेल (1972) के अनुसार केनसास और कैलीफोर्निया में विकसित गेहूँ की किस्में पौनी, पोंका, पोसो-42 तथा विगक्लव-43, हेसियन फ्लाई, **माइटिओला डेस्ट्रेक्टर** के प्रति सबसे पहली मोचित प्रतिरोधी जातियां हैं। इन प्रतिरोधी किस्मों के शीघ्र बाद ही इन्डियाना में डूअल तथा वेनडूर का विकास हुआ। अब तक संयुक्त राज्य अमेरिका के गेहूं उगाने वाले क्षेत्रों में हेसियन फ्लाई प्रतिरोधी बहुत-सी किस्मों का मोचन किया जा चुका है। इन प्रतिरोधी किस्मों के फलस्वरूप हेसियन फ्लाई अब गेहूँ के मुख्य नाशक कीट के स्थान पर द्वितीयक नाशक कीट हो गयी है। मैक्सवेल (1972) के अनुसार कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से हेसियन फ्लाई द्वारा की जाने वाली क्षति में एक प्रतिशत की कमी आई है। लुगिनविल (1969) के अनुसार कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग द्वारा अच्छी उपज से 238 करोड़ डालर प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में पाया जाने वाले स्पोटेड अल्फाअल्फा एफिड, **थेरियोफिस मैकुलेटा** से अल्फाअल्फा को करोड़ों डालर की क्षति पहुँचती है। इस कीट का प्रभावी नियंत्रण कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग द्वारा किया गया है। हाव और पेशो (1960), हन्ट और साथी (1966) तथा हेकराट और साथियों (1958) के

अनुसार मोपा, जिया, वाम, सिरसा-9, सोनोरा, केलीवरेडे, मेसासिरसा, वाशोई, नीमेस्टान, सी-104 और कोडी, अल्फाअल्फा कीट की प्रतिरोधी किस्में हैं, जिन्हें अमेरिका के मुख्य अल्फाअल्फा उगाने वाले क्षेत्रों में मोचित किया गया है। मैक्सवेल (1972) के अनुसार अल्फाअल्फा में एफिड प्रतिरोधी किस्में मुख्य कीट नियंत्रण के रूप में उपयोग में लगाई जा रही हैं, जिनके उपयोग से अमेरिका में प्रतिवर्ष 100 करोड़ डालर की अतिरिक्त आमदनी होती है।

यूरोपियन मक्का वेधक का नियंत्रण भी कीट प्रतिरोधी किस्मों पर निर्भर करता है। इसका कारण कीटनाशियों का उपयोग तथा सस्य विधियों का इसके नियंत्रण में अप्रभावी होना है। अब तक इस कीट की कई ऐसी प्रतिरोधी किस्में मोचित की जा चुकी हैं तथा 1962-64 तक इनके उपयोग से प्रतिवर्ष 150 करोड़ डालर की बचत हुई है। ये किस्में कीट की प्रथम पीढ़ी की सूडियों के लिए प्रतिरोधी हैं तथा अमेरिका के 12.1 करोड़ हैक्टेयर क्षेत्र में लगाई जाती हैं। इन प्रतिरोधी किस्मों में यदि द्वितीय पीढ़ी की सूंडियों के लिए भी प्रतिरोध उत्पन्न किया जा सके तो प्रतिरोध का मूल्य अधिक बढ़ जायेगा (लुगिनविल 1969, ब्रिंडले और डिर्की 1963)। वे कीट जिनके प्रति प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग मुख्य नियंत्रण के रूप में किया जा रहा है, मक्के का ईयरवर्म, मटर का एफिड तथा सॉ-फ्लाई हैं।

प्रतिरोधी किस्मों का समेकित कीट प्रबंधन में उपयोग

कीट प्रतिरोधी किस्मों का प्रमुख उद्देश्य मुख्य कीटों का पूर्ण तथा स्थाई नियंत्रण करना होना चाहिए। प्रतिरोध का उच्च स्तर कुछ फसलीय किस्मों में ही मिलता है। समेकित कीट प्रबंधन

के लिए उच्च प्रतिरोध की आवश्यकता नहीं होती है। साधारण अथवा निम्न स्तर के प्रतिरोध वाली किस्मों का समेकित कीट प्रबंधन में उपयोग कर कीटों की संख्या को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है। कीट प्रतिरोधी किस्मों को यदि दूसरी नियंत्रण विधियों जैसे बुवाई का समय, शीघ्र कटाई तथा फसल के अवशेषों को नष्ट करना, एकांतर परपोषियों में हेरफेर, परपोषी रहित अवधि, तथा कीट का शीत-निद्रा में ही नियंत्रण, के साथ उपयोग में लाया जाए तो वे अधिक प्रभावी होंगी। समेकित कीट प्रबंधन में प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग का अंतिम उद्देश्य कीट की संख्या को सामान्य स्तर से कम रखना तथा प्राकृतिक शत्रुओं को सुरक्षित रखना है। यदि यह उद्देश्य प्राप्त कर लिया जाए तो पौध-संरक्षण में कीटनाशियों का उपयोग मुख्य नियंत्रणों के रूप में न होकर चयनात्मक रूप में होगा।

समेकित कीट प्रबंधन में कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से अनेक लाभ होते हैं। पीमेंटल (1969), मैक्सवेल (1972), होवर (1972), और दाह्मस (1972) के अनुसार कीट प्रतिरोधी किस्म के उपयोग से कीटों की संख्या में जो कमी आती है, वह स्थिर, संचयी तथा व्यय रहित होती है। कीटों की संख्या में यह कमी कीट नियंत्रण के लिए प्रयुक्त हो रही रासायनिक तथा सस्य नियंत्रण विधियों को सरल बनाती है। इसके अलावा उस स्तर के प्राकृतिक जैव नियंत्रण कारकों की अधिक आवश्यकता नहीं होती है जो नाशक कीट संख्या को फसल में क्षति पहुंचाने के स्तर से नीचे रखता है।

कृषि संबंधी नियंत्रण (सस्य) विधियां और कीट प्रतिरोधी किस्में

कृषि संबंधी (सस्य) विधियों के साथ कीट प्रतिरोधी किस्मों का कीट नियंत्रण में उपयोग प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। बुआई के समय में हेरफेर करके इन किस्मों में से उन्हीं की बुआई करनी चाहिए जिन पर बुआई के समय का प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा करने से कीटों की संक्रामक अवस्था से बचाव तथा कीटों की संख्या को आर्थिक सीमांत से नीचे रखना संभव हो सकेगा।

ज्वार की शूट फ्लाई, *एथेरिगोना सोकेटा* ज्वार की मुख्य प्ररोह वेधक मक्खी है। खरीफ के मौसम में इससे ज्वार को पहुंचने वाली क्षति को इस कीट के प्रति सामान्य अथवा मध्यम स्तरों की प्रतिरोधी किस्मों अथवा संकरों जैसे 'सीएसवी-6' 'सीएसवी-15' 'सीएसएच-5' तथा 'सीएसएच-9' की जुलाई के प्रथम सप्ताह में बुआई करके प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है। इन किस्मों पर इस कीट का प्रकोप 15 जुलाई के बाद औसत से कम लेकिन आर्थिक क्षति पहुंचाने में सक्षम होता है (प्रेम किशोर 2000)।

एडकिन्सन और गेन्स (1960) ने सस्य विधियों तथा सामान्य स्तर की कीट प्रतिरोधी किस्मों के सम्मिलित प्रयोग से कपास के कीट, पिंक वालवर्म का प्रभावी नियंत्रण किया। अगस्त और सितंबर में इस कीट द्वारा होने वाली क्षति को अधिक उर्वरकों तथा सिंचाई के साथ मध्यम स्तर की प्रतिरोधी किस्म की बुआई करके कम किया जाता है। इसी प्रकार विल्सन और विल्सन (1976) के अनुसार सामान्य कपास की किस्मों की अपेक्षा यदि अल्पकालीन, मकरंद रहित कपास की किस्मों को खेत में लगाया जाए तो पिंक बालवर्म के प्रकोप में 50 प्रतिशत की कभी आती है। ये सिंतबर के

मध्य में परिपक्व हो जाती हैं। जिस कारण पिंक वालवर्म इन किस्मों में निष्क्रिय अवस्था नहीं प्राप्त कर पाता है (वाकर और नाइल्स 1971)।

ट्रेप फसल (ट्रेप क्रापिंग) के उपयोग से फली पत्ती भृंग का लूसियाना में नियंत्रण किया गया है। इस विधि को अपनाने से बीनपौड मोटल वायरस के संक्रमण में कमी आती है। इसके अंतर्गत बीन की शीघ्र पकने वाली फसल को एक बैंड पट्टी के रूप में बोया जाता है। फिर पूरे खेत में बुआई की जाती है। पहले बोयी गई फसल के अपरिपक्व पादप फली पत्ती भृंग को आकर्षति करते हैं जिसका रासायनिक नियंत्रण द्वारा उन्मूलन कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप खेत की शेष फसल पर किसी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस प्रकार के परिणाम ग्रहणशील तथा मध्यम स्तर की प्रतिरोधी किस्मों को बोने से भी मिलेंगे।

कीट प्रतिरोधी किस्में और रासायनिक नियंत्रण

कीट प्रतिरोधी किस्मों और रासायनिक नियंत्रण का साथ-साथ उपयोग समेकित कीट प्रबंधन का सबसे सामान्य रूप है। इसके द्वारा सामान्य प्रतिरोध वाली किस्मों पर नाशक कीटों के अचानक होने वाले प्रादुर्भावों को रोका जा सकता है।

कीट प्रतिरोधी किस्मों के निरंतर उपयोग से कीटों की संख्या प्रति पीढ़ी में कम होती जायेगी। यदि पूरे क्षेत्र में कीट प्रतिरोधी किस्में लगा दी जायें तो उनका कीटों की संख्या पर संयुक्त प्रभाव होगा और वे उत्तरवर्ती पीढ़ियों में कम होती जायेंगी (पेंटर 1951, कोपेल और मर्टिन्स 1977)। (चित्र-9)

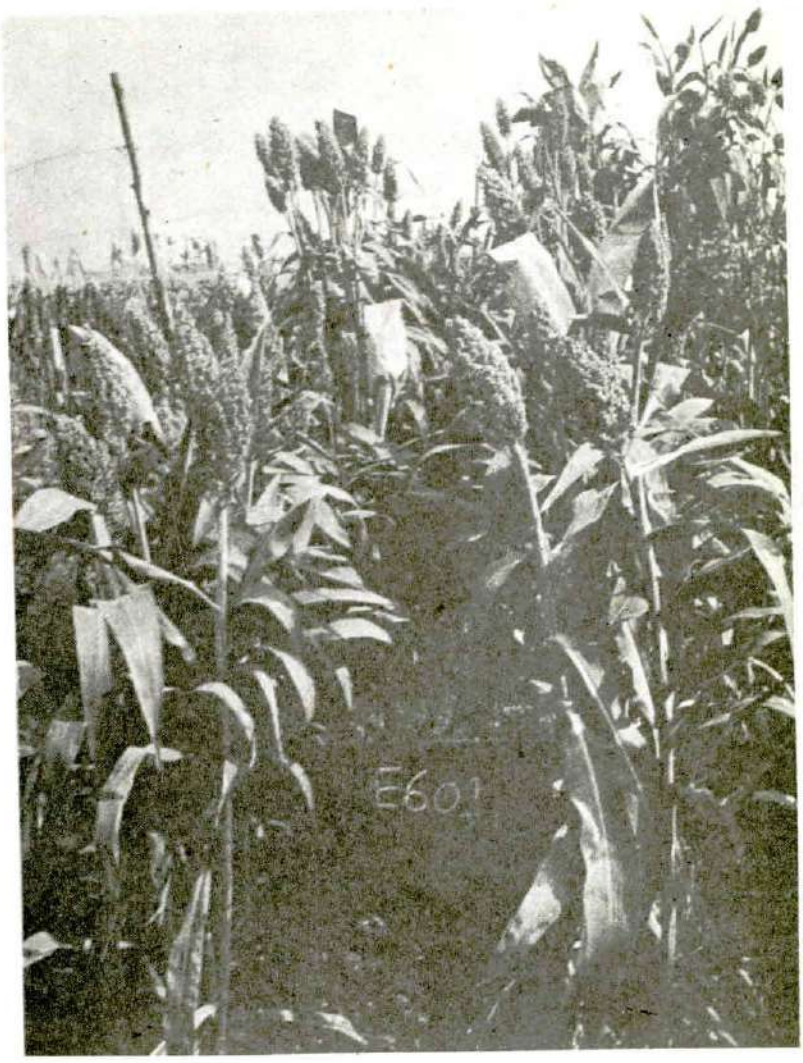

चित्र-9 : ज्वार के तना वेधक की प्रतिरोधी किस्म ई-601 (प्रेमकिशोर 1980)

कीट प्रतिरोधी पादप किस्में

पेंटर (1951) के अनुसार कीट प्रतिरोधी किस्मों के साथ कीटनाशियों का प्रयोग कीट नियंत्रण के लिए इन दोनों में से केवल एक विधि की अपेक्षा अधिक प्रभावी होता है। मैकमिलन और साथियों (1972) के अनुसार जार्जिया में जब स्वीटकार्न की कीट प्रतिरोधी किस्म (471-यू 6x81-1) तथा "स्टोवेल्स एवरग्रीन" नामक ग्रहणशील जाति को रासायनिक नियंत्रण के अंतर्गत बोया गया तो कीट प्रतिरोधी किस्म में 93 प्रतिशत और ग्रहणशील किस्म में 86 प्रतिशत स्वस्थ पादप मिले। अतः कीट प्रतिरोधी किस्म पर कीटनाशी की कम मात्रा की आवश्यकता होगी।

प्रेमकिशोर (1980, 1984) के अनुसार ज्वार तनावेधक के लिए मध्यम स्तर की प्रतिरोधी किस्मों जैसे ई 601, ई602, ई603, ई604 की बुआई करके इन पर एन्डोसल्फान नामक कीटनाशी का प्रयोग किया जाए तो अधिक उपज मिलती है। सामान्यतया तनावेधक के नियंत्रण के लिए एन्डोसल्फान का ज्वार में पादपों के अंकुरण के 25 दिन बाद और फिर उससे 10 दिन के अंतराल पर प्रयोग किया जाता है, लेकिन यहां केवल एक बार के उपयोग (25 दिन की अवस्था) से प्राप्त उपज तथा दो बार के प्रयोग से प्राप्त उपज में कोई प्रभावी अंतर नहीं पाया गया। (चित्र-10)

जैनकिन्स और पेरोट (1971), मैक्सवेल और साथियों (1972) ने रासायनिक नियंत्रण का वालवीविल के प्रति ग्रहणशील तथा प्रतिरोधी किस्मों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया है, जिससे यह स्पष्ट हुआ है कि ग्रहणशील किस्मों की अपेक्षा कीट प्रतिरोधी किस्मों पर कीटनाशियों की कम मात्रा की आवश्यकता होती है।

कीट प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग कीट नियंत्रण में प्रयोग किये जा रहे कीटनाशियों की मात्रा में तथा आवृतियों में कमी लाता है। इससे कम व्यय पर फसल की सुरक्षा होती है, प्राकृतिक

शत्रुओं का संरक्षण होता है, पर्यावरण के गुण को बनाये रखने में भी सहायता मिलती है और कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोधी विभेदों के उत्पन्न होने की दर में भी कमी आती है। कीट प्रतिरोधी किस्म के प्रयोग से ग्रहणशील किस्म की सुरक्षा के लिए कीटनाशियों पर निर्भरता की आवश्यकता नहीं रहती है। धान में कीट प्रतिरोधी किस्मों के साथ कीटनाशियों के प्रयोग से आर्थिक लाभ मिला है तथा धान के तनावेधक, मिज, ब्राउन प्लांट होपर, तथा ग्रीन लीफ होपर की प्रतिरोधी किस्मों का विकास कर उन्हें समेकित कीट प्रबंधन में प्रयोग किया जा रहा है (पीमेंटल 1969, दाहमस 1972, मैक्सवेल और साथी 1972, पाठक 1975, इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट आफ ट्रोपिकल एग्रीकल्चर 1977)।

पाठक और डिक (1973) तथा पाठक और साथियों (1973) के अनुसार धान के कीट तनावेधक तथा ग्रीनलीफ होपर के लिए सामान्य प्रतिरोध स्तर की किस्म "आईआर-20" कीटनाशियों के कम उपयोग के साथ एशिया के कई देशों में लगायी जाती हैं जिसके फलस्वरूप अधिक उपज तथा आर्थिक लाभ मिला है। इस समय विश्व के अनेक क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रतिरोध स्तर की किस्में उपलब्ध हैं। इन पर बहुत कम मात्रा में कीटनाशियों के प्रयोग से प्रभावी कीट नियंत्रण तथा उपज प्राप्त होती है।

कीट प्रतिरोधी किस्में और जैविक नियंत्रण

कीट प्रतिरोधी किस्मों के साथ उत्कृष्ट जैविक नियंत्रण संभव है। कीट प्रतिरोधी किस्में जैविक नियंत्रण के लिए अधिक सुसंगत हैं, क्योंकि इनसे प्राकृतिक शत्रुओं पर अधिक विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। सामान्य प्रतिरोध स्तर की किस्मों अथवा सहनशीलता युक्त किस्मों से नाशक कीट आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रहते हैं और अपनी उपस्थिति से प्राकृतिक शत्रुओं को भोजन प्रदान करते

कीट प्रतिरोधी पादप किस्में

चित्र-10 : ज्वार के तना वेधक की प्रतिरोधी किस्म ई-602 (प्रेमकिशोर 1980)

हैं। ये प्राकृतिक शत्रु लक्षित कीट के नियंत्रण के साथ-साथ उन अन्य नाशक कीटों का भी नियंत्रण करते हैं, जिनके लिए ये किस्में प्रतिरोधी नहीं हैं (होर्वर 1972, मैक्सवेल 1972)।

कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से कम हुई नाशक कीटों की संख्या को प्राकृतिक शत्रु सरलता से आर्थिक सीमांत से नीचे रख सकेंगे, जिसके फलस्वरूप नाशक कीटों के प्रादुर्भाव में निश्चित ही कमी आयेगी। वान एम्डन (1966) के अनुसार प्रतिरोध की निम्न मात्रा से भी प्राकृतिक शत्रुओं की प्रभाविकता बढ़ जाती है। स्टार्कस और साथियों (1972) ने बताया कि यदि ज्वार तथा जौ की प्रतिरोधी किस्मों को लगाया जाए तो उनको क्षति पहुंचाने वाले ग्रीनबग, **शाइजेफिस ग्रैमिनम** के परजीव्याभ, **लाइसीफ्लीबस टेस्टासीपेस** की कार्यकुशलता बढ़ जाती है।

मैक्सवेल (1972) के अनुसार प्रतिरोधी किस्में नाशक कीटों के ओज को कम कर देती हैं जिससे प्राकृतिक शत्रु की प्रभाविकता बढ़ जाती है। पाठक (1970, 1975) के अनुसार कीट प्रतिरोधी किस्मों पर नाशक कीटों का असामान्य व्यवहार उन्हें परभक्षियों के प्रति ग्रहणशील बना देता है।

कीट प्रतिरोधी किस्मों के कारण परभक्षियों की प्रभाविकता ग्रहणशील किस्मों की अपेक्षा अधिक बढ़ जाती है। इनके उपयोग से नाशक कीट के निम्फों के विकास की दर में कमी आती है जिससे अपरिपक्व अवस्था अधिक समय तक परजीवव्याभ और परभक्षियों के लिए उपलब्ध रहती है। इसके फलस्वरूप प्राकृतिक शत्रुओं का घनत्व बढ़ जाता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रतिरोधी किस्मों को प्राकृतिक शत्रुओं की क्रियाशीलता की अवस्था के साथ संयुक्त किया जाना चाहिए (मैक्सवेल 1972, कोगन 1975, दाह्मस 1972, वे और मुरडी 1965)।

कीट प्रतिरोधी पादप किस्में

यदि कीटों की संख्या को जातीय प्रतिरोध द्वारा कम कर दिया जाए तो नाशक कीट तथा प्राकृतिक शत्रुओं के बीच अनुपात में सुधार से प्राकृतिक शत्रु अधिक प्रभावी हो जायेंगे। साथ ही प्रतिरोधी पादपों की आकारिकी से परभक्षियों और परजीव्याभों को सरलता से परपोषी ढूंढने में सहायता मिलेगी (कोगन 1976, जानसन 1953, मैक्सवेल 1972)।

समेकित कीट प्रबंधन में कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से मुख्य नाशक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को बनाए रखने में सहायता मिलेगी जो कीट नियंत्रण में कीटनाशियों के उपयोग से संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से पर्यावरण में संतुलन बना रहता है और मुख्य नाशक कीट समस्याओं का निरोध होता है।

प्रतिरोधी किस्मों की क्षमतायें तथा उनके लाभ

संचयी तथा दीर्घ स्थाई प्रभाव : प्रतिरोधी किस्मों का नाशक कीटों की संख्या पर विशेष संचयी तथा दीर्घ स्थाई प्रभाव होता है। कीटों के प्रति लगभग असंक्राम्यता की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। यदि इन किस्मों के उपयोग से प्रत्येक पीढ़ी में नाशक कीटों की संख्या में 50 प्रतिशत की कमी आए तो कुछ ही पीढ़ियों में आर्थिक महत्व के नाशक कीटों का निरोध संभव हो जायेगा। कीट प्रतिरोधी किस्मों द्वारा इस प्रकार का शीघ्रता से प्राप्त संचयी और दीर्घस्थाई प्रभाव कीटनाशियों द्वारा अचानक कम करने वाले प्रभावों की तुलना में एक अद्भुत उदाहरण है।

विपरीत प्रभावों की अनुपस्थिति : कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से कोई विषाक्त अवशेष शेष नहीं रहता। मनुष्य, पशुओं तथा वनचरों को कोई हानि नहीं होती है। इसके अतिरिक्त इनके

उपयोग से परागण में सहायक मधुमक्खियों, लाभकारी कीटों तथा पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

निम्न स्तर के प्रतिरोध की उपयोगिता : एक निम्न कीट-प्रतिरोध स्तर की सहनशीलता लिए हुए किस्म को यदि परजीव्याभ और परभक्षियों के साथ उपयोग किया जाए तो कीटनाशियों की अनुपस्थिति में भी संतोष-प्रद समेकित कीट प्रबंधन मिलेगा। निम्न स्तर के प्रतिरोध की उपस्थिति से नाशक कीट पादप को बिलकुल नहीं अथवा कम क्षति पहुंचायेगा, लेकिन प्राकृतिक शत्रुओं के लिए नियमित रूप से परपोषी के रूप में उपस्थित रहकर भोजन प्रदान करता रहेगा।

निम्न व्यय, लाभदायक उपयोग और क्षमतायें : कीट प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग में नाम मात्र का खर्चा आता है, साथ ही समेकित कीट प्रबंधन में यह अधिक उपयोगी होता है।

कीट प्रतिरोधी किस्मों की प्रभाविकता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि कीटनाशियों के विकास में लगाये जा रहे धन का यदि कुछ अंश कीट प्रतिरोधी किस्मों को उत्पन्न करने में लगाया जाता तो अब तक बहुत से प्रमुख नाशक कीटों का नियंत्रण संभव हो सकता था तथा आज विभिन्न कीटनाशियों के प्रयोग से उत्पन्न पर्यावरण संबंधी विकट समस्याएं सामने नहीं आयी होतीं। अतः आवश्यकता यह है कि जहां कीट नियंत्रण के लिए नवीन पर्यावरण-सुरक्षित कीटनाशियों का विकास किया जाता रहे, वहीं परपोषी-पादप प्रतिरोध के अध्ययन पर भी विशेष ध्यान दिया जाए।

हमारे देश में विभिन्न फसलों में विकसित की गयी कुछ कीट प्रतिरोधी जातियों की किस्में सारणी-1 में दिखायी गयी हैं।

लाभकारी उपयोग की दशायें : प्रतिरोधी किस्मों की उपयोगिता निम्नतम औसत की फसलों जैसे मोटे अनाजों के प्रकरण में

कीट प्रतिरोधी पादप किस्में

अथवा उन परिस्थितियों में जहां उपज पर मौसम तथा अन्य संकटों का प्रभाव अथवा कीटनाशियों द्वारा नियंत्रण अनजाना हो, बहुत अधिक होती है। ऐसी परिस्थितियां सामान्यतया विकाशील देशों में मिलती हैं तथा वहां का औसत किसान निर्धन होने के कारण कीटनाशियों के उपयोग से अनभिज्ञ है। (चित्र-11)

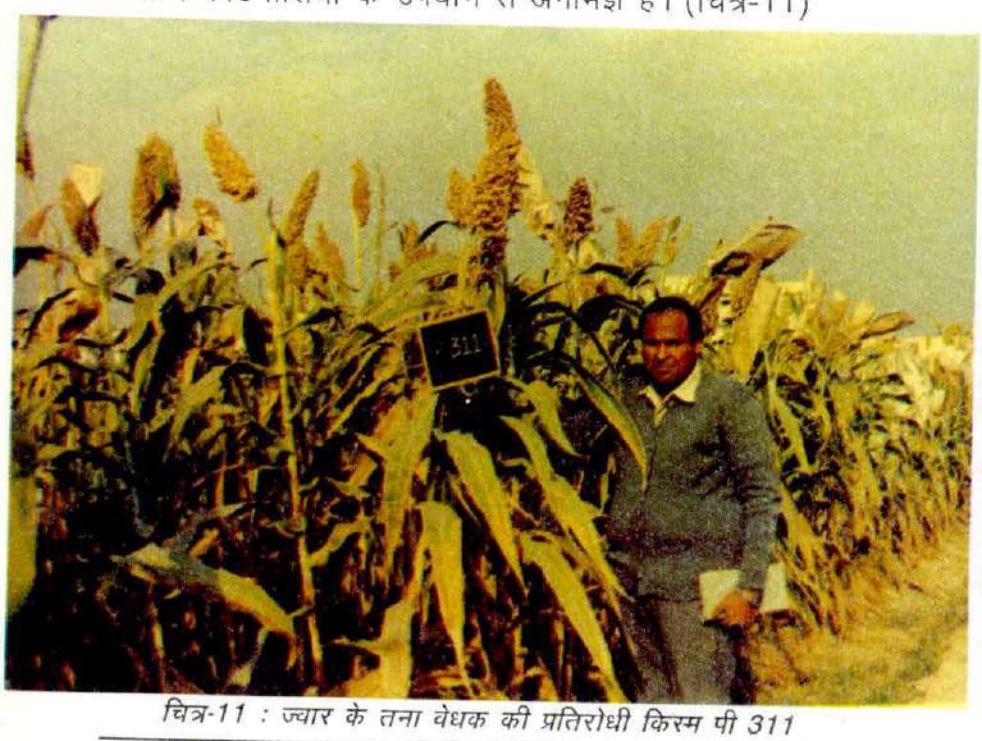

चित्र-11 : ज्वार के तना वेधक की प्रतिरोधी किस्म पी 311

कीट प्रतिरोधी किस्में ऐसी अवस्थाओं में जहां नाशक कीट का प्रादुर्भाव अधिक अंतराल पर होता है और कीटों की संख्या अधिकतम संख्या में घटती-बढ़ती रहती हैं, बीमे की सी सुरक्षा प्रदान करती हैं। मध्य अमेरिका में ग्रीनबग ऐसा ही एक कीट है। जौ की अनेक ग्रीन बग प्रतिरोधी किस्में उपलब्ध हैं। आवश्यकता

यह है कि गेहूँ की ग्रीनवग प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया जाए। यह कीट जौ तथा गेहूँ की ग्रहणशील किस्मों को निम्न तापमान पर भी नष्ट करता है जबकि उसी निम्न तापमान पर प्राकृतिक शत्रु अथवा कीटनाशियों का प्रयोग प्रभावी नहीं होता है। जबकि निम्न तापमान की उपस्थित में भी कीट प्रतिरोधी किस्मों में ग्रीन बग के प्रति प्रतिरोध कम नहीं होता है।

कीट प्रतिरोधी किस्मों की सीमाएं

अधिक समय लगना : कीट प्रतिरोधी किस्मों के विकास में बहुत अधिक समय लगता है। उदाहरण के लिए गेहूँ की एक प्रतिरोधी किस्म को उत्पन्न करने में 15 से 20 वर्षों का समय लग जाता है। गेहूँ की किस्म पौनी 29 वर्षों में, पोंका 19 वर्षों में तथा कौवले 18 वर्षों में विकसित की जा सकी हैं।

सारणी-1 : भारत में विकसित कीट प्रतिरोधी जातियां/स्त्रोत/कृषिजोपजातियां (कृषि किस्में)

फसल और उसके कीट	प्रतिरोधी/स्त्रोत/कृषिजोपजातियां
धान	
तना वेधक (*Scirpophaga incertulas*)	रत्ना, सस्यश्री, साकेत, एम टी यू 5849, आई ई टी 3127, आई ई टी 2812
ब्राउन प्लांट हॉपर (*Nilaparvata lugens*)	मानसरोवर, भद्रा, ज्योति, सी ओ 42, एम टी यू 5249, आई ई टी 7575, आई ई टी 6315
गॉलमिज (*Orseolia oryzae*)	आई आर 36, काकतिया, धान्यलक्ष्मी सुरेखा, कुंती, फाल्गुना, शक्ति, श्यमाली, आशा, राजेन्द्रधन

व्हाइट बैक्ड प्लांट हॉपर (*Sogatella furcifera*)	ए आर 133, आई सी 25687 टंगनेर, ऐमलबेरो
ग्रीन लीफ हॉपर (Nephotettix spp.)	आई आर 20 आई ई टी 7301, आई ई टी 7302, आई ई टी 7303, वानी
ज्वार	
तना वेधक (*Chilo partellus*)	ई-302, ई-303, पी-311, एस पी वी 1015 पी एफ जी एस 97, 98, आई एस 2205, वी पी 53, कराड़लोकल
शूट फ्लाई (*Atherigona soccata*)	एम-35-1, एस पी वी 504, एस पी वी 491, आई एस 18551, एस पी वी 1015, पी एफ जी एस 97,98
मिज (*Contarinia sorghicola*)	डी जे 6514, ए एफ 28, आई सी एस वी 745 पी एफ जी एस 97,98
हेडवग (*Calocoris angustatus*)	आई एस 17610, चेनचोलम, आई एस 17645
मक्का	
तना वेधक (*Chilo partellus*)	हिम 123, अगेती, कंचन, कुंदन, गंगा 4, 5, 7 और 9 गंगा सफेद, वी एल 54, सी 1, 3 और 7
गुलाबी तना बेधक (*Sesamia inferens*)	डीकन 101 और 102
शूट फ्लाई (*Atherigona* spp)	डी एम आर 5, वी सी 80

बाजरा	
शूट फ्लाई (*Atherigona appoximata*)	एम एच 386, 392, 398 और 401
तना वेधक (*Chilo partellus*)	एम एच 392 और 398
ग्रे-वीविल (*Myllocerus* spp.)	एम एच 405 और 406
रागी	
गुलाबी तना वेधक (*Sesamia inferens*)	के एम-1
चना	
फली वेधक (*Helicoverpa armigera*)	आई सी सी 506, 6663, 5264 और 10667, आई सी सी वी 7, दूलिया, पी डी ई 2
अरहर	
फली वेधक (*Helicoverpa armigera*)	आई सी पी एल 332 और 84060, पी पी ई 45-2 एम ए 2
पॉड फ्लाई (*Melanagromyza obtusa*)	
मटर	
फली वेधक (*Etiella zinkenella*)	वोनविले, टी 6113, पी एस 410, ई सी 33860, 172 एम, 2 एम 21
लीफ माइनर (*Phytomyza horticola*)	पी 402, पी एस 40, टी 6113

लोबिया	
फली वेधक (*Maruca testulalis*)	वांसवारा, जी 20 सी4 55, जी 7, सी आर 2-55, पी 1461
जैसिड (*Empoasca kerri*)	जे जी 10-72, एन एस 19-4-1, सी 152
एफिड (*Aphis craccivora*)	पी 1473 और 1476, एम एस 9369
ग्लेरूसिड भृंग (*Maduracia obscurella*)	5269
मूंग	
फली वेधक (*M. testulalis*)	जे 1, एल एम 11, पी 526 और पी 336
व्हाईट फ्लाई (*Bemisia tabaci*)	एम एल 337, 5 और 325, एम ए. 85-61
तना मक्खी (*Ophiomyia centrosematis*)	सी ओ 3
ग्लेरूसिड भृंग (*M. obscurella*)	जवाहर 45, गुजरात 1, पी एल एम एस 33, और 4 आर 12-16-3, एस 9
उड़द	
फली वेधक (*M. testulalis*)	कलाई, कृष्णा 338-3, सी ओ 3,4 और 5
जैसिड (*E. kerri*)	सिनखेडा 1, कृष्णा, एच 70-3 यू पी वी 1
तना मक्खी (*O. centrosematis*)	कराइलेल, किलीकुलम, सी ओ 3,4 और 5 पी 58, 388-3

ग्लेरूसिड भृंग (*M. obscurella*)	पूसा 1, कृष्णा, के जी 3, टी 9 टी 27, जी 1, एच 11
सोयाबीन	
लीफ मानइर (*Aproaerema modicella*)	निमसोय, पी आई 227687, पी एल 507
मूंगफली	
लीफ माइनर (*A. modicella*)	आई सी जी वी 86031 और 156 (M13), डी आर एस 10, आई सी जी, 57, 156, 541, 7016, 7404 और 9883
तंबाकू की सूंडी (*Spodoptera litura*)	आई सी जी वी 86031, एफ डी आर एस 10
जैसिड (*E. kerri*)	एन सी ए सी 2230, एम 13, आई सी जी 5043 और 5049
थ्रिप्स (*Thrips palmi*)	एम 13, रोबट 33-1, आई सी जी 5043 और 5044
कपास	
पिंक वालवर्म (*Pectinophora gossypiella*)	जी 27, एल डी 135, लोहित, सुजाता, एम सी यू 7, आवाधिता, दिग्विजय, संगुइनियम
स्पोटेड वालवर्म (*Earias vitella*)	एल 1245, संगुइनियम, जे के 119-25-54, वी सी एस 10 और 10-75
जैसिड (*Amrasca biguttula biguttula*)	खंडवा 2, बदनाबर, कृष्णा, एम सी यू 5, महालक्ष्मी, संगुइनियम, सुजय, एकांथ

सफेद मक्खी (*Bemisia tabaci*)	एल के 861, कंचन, अमरावथी, सुप्रिया, एल पी एस 141
गन्ना	
अगोला वेधक (*Scripophaga exerptalis*)	सी ओ 7224, सी ओ 67, सी ओ 1158
तना वेधक (*Chilo auricilus*)	सी ओ 7302, सी ओ 767
पर्व वेधक (*Chilo sacchariphagus indicus*)	सी ओ 6806, सी ओ 62175, सी ओ 975, सी ओ 77-1
स्केल (*Melanaspis glomerata*)	सी ओ 671, सी ओ 8014, सी ओ 62174, सी ओ 1132 सी ओ 611, सी ओ 6907 सी ओ 671
सफेद मक्खी (*Aleurolobus barodensis*)	सी ओ 671
सफेद लट (Holotrichia spp.)	सी ओ 6304, सी ओ 1158, सी ओ 5510
बैंगन	
तना और फल वेधक (*Leucinodes orbonalis*)	एस एम 68, पूसा पर्पल, डोली 5, चकलसी डोली, एस एम 67, एस एस 68
जैसिड (*A. bigutulla bigutulla*)	पूसा पर्पल, डोली 5, चकलसी डोली
सफेद मक्खी (*B. tabaci*)	पूसा पर्पल.

टमाटर	
फल वेधक (*H. armigera*)	वी टी 1, टी 27 और 32
भिण्डी	
तना और फल वेधक (*E. vittela*)	परकिंस लोंग ग्रीन, ए ई 57, पी एम एस 8, पी के एक्स 9275, करनाल स्पेशल
आलू	
टयूबर मॉथ (*Phthormoea operculella*)	क्यू वी 1 ए 21-29
तंबाकू	
तंबाकू की सूंडी (*S. litura*)	जी टी 4, डी डब्ल्यू एफ सी
एफिड (*Myzus persicae*)	जमैका, क्यूबन, फ्रैन्ससंस, सुमात्रा, लिटिल रिटेनडेन्ट
तना वेधक (*Scrobipalpa haliopa*)	एस वी आर 1 और 2

समजीनी प्ररूप : नाशक कीटों के समजीनी प्ररूप उत्पन्न हो जाने के कारण कीट-प्रतिरोधी किस्में प्रभावी नहीं रहती हैं। अतः यह आवश्यक है कि कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास करते समय नाशक कीट और उसके समजीनी प्ररूपों को ध्यान में रखा जाए।

प्रतिरोध की अन्य कारकों के साथ असंगतता : प्रायः यह देखा गया है कि परंपरागत कीट प्रतिरोधी किस्मों में उपयुक्त सस्यीय गुण नहीं होते। उदाहरण के लिए चिंचवग प्रतिरोधी ज्वार पर प्रजनन नहीं करता है। ज्वार की किस्म "एटलस सोरगो" को चिंचवग ग्रसित नहीं

करते हैं और इसी कारण यह अमेरिका में पशुओं के चारे के रूप में अत्यधिक प्रचलित है।

किस्मों का विस्थापन : पुरानी ग्रहणशील किस्मों के स्थान पर कीट प्रतिरोधी किस्मों का विस्थापन अथवा कीट के प्रकोप में कमी होने अथवा प्रकोप की अनुपस्थिति में कीट प्रतिरोधी किस्मों के स्थान पर नवीन अधिक उपज देने वाली ग्रहणशील किस्मों का बोना शीघ्र ही नाशक कीट की पुनः उपस्थिति का कारण बन जाता है। अतः सस्य गुणों से भरपूर कीट प्रतिरोधी किस्मों को विस्थापित नहीं करना चाहिए।

बहुधा यह देखा गया है कि जब कीट प्रतिरोधी किस्म के उपयोग से कीट समस्या का उन्मूलन हो जाता है तो कृषि विशेषज्ञ और कृषक कीटों के महत्व को भुलाकर फिर से सस्य गुणों से भरपूर परंतु अत्यधिक ग्रहणशील किस्मों को लगा देते हैं, जिसके फलस्वरूप कीटों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

उपरोक्त विवरण कीट प्रतिरोधी पादप किस्मों की उपयोगिता तथा वे किस प्रकार नाशक कीटों की संख्या गतिकी को प्रभावित करती हैं, साथ ही उन्हें नाशक कीट प्रबंध मे किस प्रकार प्रयुक्त करना चाहिए, को स्पष्ट करता है। कीट प्रतिरोधी किस्मों को अकेली नियंत्रण विधि के रूप में प्रयुक्त न करके उन्हें अन्य कीट निरोधक उपायों के साथ उपयोग में लाना चाहिए, क्योंकि इन किस्मों के उपयोग से सभी स्थानों तथा सभी परिस्थितियों में एक समान सफल कीट नियंत्रण की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। अतः यह आवश्यक होगा कि नाशक कीट तथा परपोषी पादप पर पर्यावरण जनित कारकों के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए नाशक कीट नियंत्रण के उपाय किए जायें, जिसके फलस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र प्रदूषित नहीं होगा और साथ ही नाशक कीट का प्रभावी ढंग से नियंत्रण होगा।

अध्याय - 9

परपोषी पादप प्रतिरोध कार्यक्रम और समेकित कीट प्रबंधन

परपोषी पादप प्रतिरोध कार्यक्रमों का प्राथमिक उद्देश्य ऐसी कृषि किस्मों का विकास करना है जो नाशक कीट के लिए प्रतिरोधी हों और साथ ही उनमें आधारभूत संस्यगुणों को बनाये रखा जाए अथवा उनका विकास किया जाए। पादप जनकों तथा आनुवंशिकों द्वारा चलाये जा रहे फसल सुधार कार्यक्रमों का मूल उद्देश्य कीटों को प्रतिरोध होना चाहिए। इसी प्रकार कीट वैज्ञानिकों द्वारा कीट नियंत्रण के लिए अपनायी जा रही युक्तियों में कीटों के लिए प्रतिरोधी फसलों का विकास करना शामिल होना चाहिए।

समेकित कीट प्रबंधन और पादप प्रतिरोध : कीटों के लिए पादप प्रतिरोध का कार्य प्रत्येक फसल व कीट के साथ परिवर्तित होता रहता है। पादप प्रतिरोध का महत्व समेकित कीट प्रबंधन युक्तियों में इस बात पर निर्भर करता है कि वहां दूसरी नियंत्रण विधियों की उपलब्धता तथा उपयोगिता क्या है? नाशक कीट के नियंत्रण के लिए पादप प्रतिरोध समेकित कीट प्रबंधन के लिए अपनायी जा रही अन्य विधियों के साथ आंशिक रूप में अथवा

मुख्य नियंत्रण विधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। लुगिनविल (1969) के अनुसार अमेरिका में कीट प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करके कृषकों द्वारा करोड़ों डालर बचाये गये हैं।

समेकित कीट प्रबंधन में परपोषी पादप प्रतिरोध दूसरी नियंत्रण विधियों के साथ अधिकतर उपबंध के रूप में अपनाया जा सकता है। प्रतिरोधी किस्मों को पीड़कनाशियों की कम मात्राओं अथवा अन्य नियंत्रण विधियों के प्रयोग की कम आवश्यकता होती है। किसी भी फसल के सफल उत्पादन में जहां कीटों द्वारा सार्थक क्षति होने की संभावना हो, वहां फसल सुधार कार्यक्रमों में कीट के विरुद्ध प्रतिरोध को विशेष स्थान देना चाहिए। प्रारंभिक अवस्थाओं में कीट के विरुद्ध पादप प्रतिरोध का लक्ष्य "मुख्य नाशक कीटों का केन्द्रीकरण करना है।" यह उपयुक्त होगा कि कीट प्रतिरोधी कार्यक्रमों में जननद्रव्य (जर्मप्लाज्म) की स्क्रीनिंग करते समय यह ध्यान रखा जाए कि छांटी गई पादप किस्में एक से अधिक मुख्य कीटों के लिए प्रतिरोधी हों तथा उनकी तुलना सामयिक काल में उगाई जा रही फसलों की किस्मों से की जानी चाहिए। इससे अनेक नाशक (पीड़क) कीटों की प्रतिरोधी किस्मों का विकास होगा तथा दूसरे नाशक कीटों में बढ़ती हुई अतिसंवेदनाओं का परिहार किया जा सकेगा (चित्र 12)।

पादप प्रजनन तथा सस्य कार्यक्रमों में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि मुख्य फसलों अथवा महत्वपूर्ण फसल उत्पादन क्षेत्रों को एक समान आनुवंशिक गुणों वाली कृषि किस्मों से भरा न जाए, चाहे आनुवंशिक गुणों की आधारशिला कीट प्रतिरोधी ही क्यों न हो। पादप प्रतिरोध निम्नलिखित परिस्थितियों में लाभकारी होता है :

चित्र-12 : बहु-नाशक कीट प्रतिरोधी किस्म एस पी वी 1015

(i) कीट प्रतिरोध उन अवस्थाओं में बहुत महत्वपूर्ण तथा प्रभावी होता है, जहां कीट अपने जीवन चक्र में कुछ समय के लिए ही अधिक हानि पहुंचाता है।

(ii) जहां फसल कम मूल्य वाली हो।

(iii) विस्तृत क्षेत्र में उगाई जा रही फसल के सफल उत्पादन में कीट मुख्य सीमाकारी कारक हों।

(iv) जब दूसरी नियंत्रण विधियां उपलब्ध न हों। गेहूं की हेसियन फ्लाई तथा सॉ फ्लाई ऐसे ही उदाहरण हैं, जहां पादप प्रतिरोध मुख्य नियंत्रण विधि है।

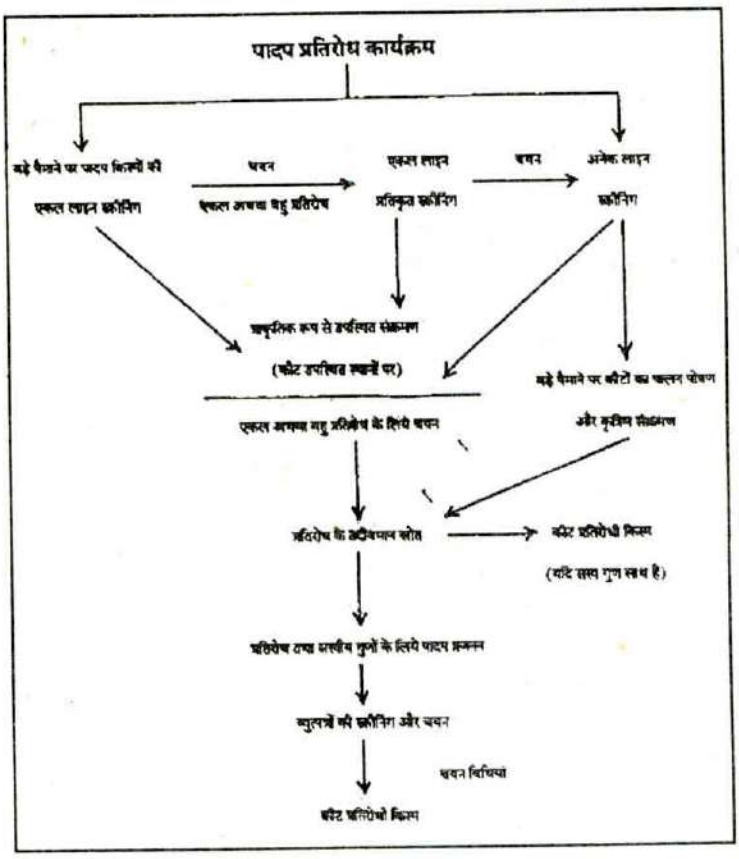

चित्र-13 : पादप प्रतिरोध कार्यक्रम

परपोषी पादप प्रतिरोध कार्यक्रम के घटक

कीटों के प्रति पादप प्रतिरोध का विकास कीट नियंत्रण कार्यक्रम के लिए आवश्यक है। इसके निरंतर विकास के लिए कीट वैज्ञानिकों तथा पादपजनकों के बीच आपस में सहयोग होना चाहिए। जैसे जैसे यह कार्यक्रम आगे बढ़ता है वैसे वैसे इसमें कठिनाइयां आती हैं तथा दूसरे वैज्ञानिकों का सहयोग भी आवश्यक हो जाता है। यद्यपि कीट वैज्ञानिक प्रतिरोध के स्रोतों को पहचानने में अग्रणी हो सकता है, परंतु पादपजनक प्रायः इसके लिए बीज स्रोत प्रदान करता है। प्रतिरोध का स्रोत पहचानने के पश्चात पादपजनक को इस कार्यक्रम में शामिल करना आवश्यक हो जाता है ताकि प्रतिरोध के इस स्रोत को धीरे-धीरे कृषि किस्म का रूप दिया जा सके। इस स्थिति से ज्ञात होता है कि सफल कीट प्रतिरोध कार्यक्रम में कीट वैज्ञानिकों तथा पादपजनकों का बराबर का सहयोग होना चाहिए। कीट प्रतिरोध कार्यक्रम की सफलता के लिए निम्नलिखित घटकों का ज्ञान आवश्यक है (चित्र 13)।

कीट का जीवन इतिहास

कीट प्रतिरोध कार्यक्रम आरंभ करने से पहले नाशक कीट के जीवन इतिहास पर जैविक तथा अजैविक कारकों के प्रभाव को जानना आवश्यक है। इसमें भोजन प्राप्त करने की विधि, अंडनिक्षेपण, गति, जनन क्षमता तथा पर्यावरण का नाशक कीट संख्या पर प्रभाव आदि सम्मिलित हैं। नाशक कीट के व्यवहार और क्रियाओं को ध्यान में रखकर किये जाने वाले प्रयोगों के लिए ये जानकारियां आवश्यक हैं।

प्रायः नाशक कीट तथा परपोषी पादप प्रतिक्रियाएं अपने औसत से अलग होने के आधार पर श्रेणीकृत की गई हैं। नाशक कीट जैविकी तथा परपोषी पादप के विकास में समाकलन होता

है। इसे यूरोपियन मक्का बेधक के प्रथम तथा द्वितीय लार्वों (सूंडियों) के प्रति प्रतिरोध द्वारा दर्शाया जा सकता है। इस कीट द्वारा भोजन प्राप्त करने का स्थान और व्यवहार, नाशक कीट तथा परपोषी के विकास की अवस्था पर निर्भर करता है। प्रारंभ में मक्का के पादप की 5 से 10 पत्तियों वाली अवस्था में सूंडियां पत्तियों के चक्र से भोजन प्राप्त करती हैं, लेकिन जैसे जैसे मक्का और कीट परिपक्व होते हैं, कीट तने को खाने लगता है।

नाशक कीटों की उपस्थिति

कीट प्रतिरोध कार्यक्रम की सफलता के लिए नाशक कीटों की उपस्थिति आवश्यक होती है। कीटों की संख्या एक समान बनी रहनी चाहिए। साथ ही अनुकूलतम (पर्याप्त) कीट संख्या (समष्टि) की पहचान के प्रयास किए जाने चाहिए। इससे समजीनी प्ररूपों (बायोटाइपों) के बीच विभेद करने में सहायता मिलेगी। अनुकूलतम कीट संख्या का उद्देश्य अधिकतम कीट संख्या नहीं होना चाहिए।

कीट समष्टि निम्न प्रकार से प्राप्त हो सकती है :

(i) खेतों में उपस्थित कीटों की गहन व्यवस्था,

(ii) प्राकृतिक पादप पर नाशक कीटों का पालन पोषण जो कीट नर्सरी अथवा कीट गृह आदि में हो सकता है।

(iii) कृत्रिम रूप से नाशक कीटों का पालन पोषण करना। इसके लिए कृत्रिम आहारों को विकसित करने की आवश्यकता होती है। लेपीडोप्टेरा वर्ग के कई मुख्य नाशक कीटों के पालन पोषण के लिए इस प्रकार के आहार विकसित किए गए हैं। विभिन्न कीटों के लिए बनाए गए कृत्रिम आहारों तथा उनके बड़े पैमाने पर संवर्धन के महत्व को हाउस और साथी (1971), सिंह (1972), रोड्रीगॉज (1972), डाड (1973),

वानडरजेन्ट (1974) तथा गथरी और साथियों (1965) ने विस्तार से बताया है (चित्र 14)।

प्रयोगशाला में कीटों के पालन पोषण के समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पाले जा रहे कीटों के जैविक तथा व्यावहारिक लक्षणों में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले कीटों की तुलना में कोई अंतर न आने पाए। बड़े पैमाने पर पालन पोषण में समय समय पर प्राकृतिक रूप में उपस्थित कीटों का फिर से उपयोग करना चाहिए। इन कीटों से प्राप्त अंडों को फिर कृत्रिम आहार पर पालना चाहिए। इससे प्रयोगशाला में पैदा होने वाले कीटों में परपोषी पादप को ढूढ़ने तथा जनन क्षमता का ह्रास नहीं होगा। यह बेधकों के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

प्रभावी परपोषी पादप प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम के लिए कीट आहारों, पोषण तथा बड़े पैमाने पर कीट संवर्धन का अत्यधिक महत्व है। पर्याप्त नाशक कीट संख्या की अनुस्थिति इस कार्यक्रम के विकास पर प्रभाव डालेगी।

जर्मप्लाज्म (जननद्रव्य) तथा आनुवंशिक स्त्रोतों का महत्व

आनुवंशिक विविधता का पादप प्रजनन कार्यक्रम में अत्यधिक महत्व होता है। इस कार्यक्रम को यह कच्ची सामग्री प्रदान करती है। यह सामग्री जर्मप्लाज्म एकत्र करने से प्राप्त होती है। जर्मप्लाज्म का अर्थ है किसी फसल अथवा पादप जाति की विभिन्न किस्मों को विविध स्त्रोतों से एकत्र करना है। इन स्त्रोतों में विभिन्न प्राकृतिक जलवायु, विभिन्न ऊँचाई वाले क्षेत्र, फसल का उद्‌गम स्थान तथा वे सभी क्षेत्र जहां उस फसल अथवा उसकी किस्में उगायी जाती हों, सम्मिलित हैं। इस एकत्रण का तात्पर्य कीट प्रतिरोध के स्त्रोतों को ढूंढने के लिए फसल की हर संभव जाति को देखना है जिससे प्राकृतिक रूप से उपस्थित कीट प्रतिरोध का ज्ञान हो सके।

प्रतिरोध प्रायः प्राचीन काल से उपयोग में लाई जा रही जातियों तथा उनकी साथी जातियों में मिलता है। इस प्रतिरोध को इच्छित किस्मों में स्थानान्तरित करने के लिए विशेष आनुवंशिक हेरफेर की आवश्यकता होती है।

प्रकृति में उपस्थित प्राकृतिक प्रतिरोध को प्राप्त करने के लिए पादप की खोज तथा उन्हें एकत्र करना वैज्ञानिकों का एक स्वाभाविक विवेक पूर्ण कार्य है। प्रकृति में एक जाति की करोड़ों उपजातियां होती हैं और उनका प्रतिचयन भी अपने आप में एक चुनौती है (एलार्ड 1970)। इसी कारण अभी तक कोई जर्मप्लाज्म एकत्रण अपने में पूर्ण नहीं है। अब विभिन्न फसलों के जर्मप्लाज्मों को विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा सुरक्षित रखा जा रहा है, जिससे कि उनका समय समय पर उपयोग किया जा सके।

प्रतिरोध स्त्रोतों की पहचान

प्रतिरोध के स्त्रोतों को पहचानने के लिए स्क्रीनिंग (छंटाई या सन्निरीक्षण) प्रतिक्रिया अपनाई जाती है। स्क्रीनिंग का अर्थ है प्रतिरोध के लिए विभिन्न जातियों को देखना जिससे कि प्रतिरोध के स्त्रोतों को पहचाना जा सके। इस कार्यक्रम को तर्कपूर्ण ढंग से कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित अनुक्रमों का उपयोग करना चाहिए।

(i) प्रथम अनुक्रम में प्रतिरोध स्त्रोतों को ढूंढ़ने के लिए अनुकूली कृषि किस्मों की स्क्रीनिंग

(ii) दूसरे अनुक्रम में प्रवेशित पादपों तथा विदेशी जर्मप्लाज्म में प्रतिरोध को ढूंढना, तथा

(ii) तीसरे और अंतिम अनुक्रम में अनुकूल कृषि किस्मों की निकट संबंधी जातियों में प्रतिरोध की उपस्थिति को पहचानना।

चित्र-14: कृत्रिम आहार पर ज्वार के तना वेधक के लार्वो का पालन पोषण

स्क्रीनिंग खेतों अथवा प्रयोगशालाओं में कीटों की प्राकृतिक अथवा कृत्रिम दशाओं के अंतर्गत की जा सकती है। प्रतिरोध के स्रोत को पहचानने के बाद उसे उपयोगी बनाने के लिए उपयुक्त प्रजनन विधि को अपनाया जाता है।

प्रतिरोध स्रोत-आमापन तकनीकें

परपोषी पादपों में विभिन्नताओं का प्रमाणीकरण करना एक आमापन अथवा शोध विधि की अभिकल्पना से ही संभव हो सकता है। यह महत्वपूर्ण है कि परपोषी की अभिक्रिया में भिन्नताओं को मापने के अतिरिक्त विभिन्नता के स्रोत और पहचाने गये विशेषकों के वंशागतित्व को भी आंका जाए। कीट के प्रति पादप का प्रतिरोध तथा नाशक कीट की पादप से अभिक्रिया अथवा दोनों का एक

प्रभाव के रूप में, वर्णन किया जा सकता है। अतः प्रतिरोध का अध्ययन दो आयामों में हो सकता है।

(i) परपोषी पादप में विभिन्नतायें,

(ii) नाशक कीट संख्या में विभिन्नतायें।

दोनों में से किसी भी परिस्थिति में प्रयुक्त की जाने वाली अध्ययन की अभिकल्पना, कसौटी तथा आमापन तीनों ही कीट अथवा उन पादप घटनाओं जिनका आमापन करना है, के साथ परिवर्तित होते हैं।

प्रतिरोध पहचानने की दशा में सबसे पहले विविध सामग्री का बड़ी संख्या में निरीक्षण करना आवश्यक है। इसी समय परपोषी अथवा नाशक कीट पर पड़ने वाले प्रभावों की केवल ऊपर से दिखने वाली भिन्नताओं का विभेदन आवश्यक है। साथ ही यहां विभिन्न सुव्यवस्थित प्रतिरोध स्तरों अथवा विभेदकारी प्रभाव की मूल्य-निर्धारण योजनाओं का उपयोग किया जाता है। मूल्य निर्धारण योजनाओं में रेखीय मानकों का समुच्चय एक उपयोगी साधन है। इसके बाद के मूल्यांकन अध्ययनों से प्रतिरोध की अभिव्यक्ति तथा स्तरों को अधिक परिमार्जित रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आमापन तकनीक ऐसी होनी चाहिए जो खेत में उपस्थित कीट-परपोषी संबंध को उसके विशुद्ध रूप में प्रदर्शित करे।

आमापन तकनीकों के लिए यह आवश्यक है कि जब उन्हें प्रयुक्त किया जा रहा हो तो पादपों की अवस्था एक समान हो अथवा नवोद्भिदों की स्क्रीनिंग के समय जहां तक संभव हो सके नवोद्भिदों की अवस्था एक सी हो। साथ ही पादपों की वानस्पतिक अवस्था की तुलना बीज उत्पन्न कर रहे पादपों से नहीं की जानी चाहिए। इन तकनीकों का उपयोग पादपों की उस अवस्था पर

किया जाना चाहिए, जब नाशक कीट उन पर आक्रमण कर रहा हो।

आमापन तकनीकों में ऐसा प्रावधान होना चाहिए कि वैज्ञानिक किसी घटना को देखता है तो उसका उनमें समावेश कर सके। नवोद्भिद अवस्था के प्रतिरोध तथा अधिक परिपक्व अवस्था के प्रतिरोध के बीच सह-संबंध को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

नवोद्भिद स्क्रीनिंग तकनीक अल्फाअल्फा एफिड के विरुद्ध प्रतिरोध ढूंढने में बड़े पैमाने पर बहुत अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है। यह एफिड अल्फाअल्फा के पौधों पर उनके विकास की प्रत्येक अवस्था में आक्रमण करता है तथा पौधे वृद्धि की हर अवस्था में प्रतिरोध दिखाते हैं। इसके विपरीत नवोद्भिद स्क्रीनिंग तकनीकें मक्के की पत्ती के एफिड के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हुई हैं।

पादपों में प्रतिरोध का मूल्यांकन कैसे किया जाए, इसके लिए दाह्मस (1972) ने निम्नलिखित 16 कसौटियों के प्रयोग का उल्लेख किया है।

(1) कीटग्रस्त कृषि किस्मों को देखकर मूल्यांकन करना। उदाहरण के लिए वृद्धि का रुकना, पौधों का खेतों में गिर जाना, विवर्ण हो जाना तथा कटाई आदि अवस्थाओं के अनुसार मूल्यांकन करना।

(2) प्रकोप के बाद विभिन्न अंतरालों पर बचे हुए पादपों की संख्या का निर्धारण करना।

(3) प्रकोप से प्रभावित और अप्रभावित पादपों के बीच उपज में भिन्नताओं का निर्धारण करना।

(4) अवसर मिलने पर कृषि किस्मों की ओर आकर्षित होने वाले नाशक कीटों के वयस्कों और डिम्भकों की संख्या का निर्धारण करना।

(5) कीट के जीवन चक्र की अवधि, समय, मर्त्यता, प्रजनन दर अथवा निर्मोकन के मापन द्वारा कृषि किस्मों अथवा पादपों पर कीट के भरण के तुलनात्मक प्रभावों को देखना।

(6) विभिन्न कृषि किस्मों पर एक निश्चित समय तक भरण करने के बाद नाशक कीटों का भार लेना।

(7) अंडों की संख्या का निर्धारण करना।

(8) उत्तरजीवी कीटों और उनके द्वारा उत्पन्न संतति की संख्या का निर्धारण करना।

(9) कीटों द्वारा उपभोग किये गये भोजन की मात्रा को मापना।

(10) कीट द्वारा उद्गलित भोजन की मात्रा को मापना।

(11) कीट क्षति से बचने अथवा उससे पुनः ठीक होने के गुण को देखना।

(12) मूल्यांकन की अप्रत्यक्ष विधि जैसे एक पादप को भूमि से खींचने में लगाये जाने वाले बल की मात्रा से जड़ क्षति का मापन।

(13) पादपों की पत्तियों और पुष्पों में ओल्फेक्टोमीटर के उपयोग से आकर्षण का निर्धारण।

(14) कीट अनुक्रियाओं और पादपों के रासायनिक कारकों में सह-संबंध।

(15) ऐसे कीटों की वृद्धि और प्रजनन विभव का मूल्यांकन करना जो विभिन्न पादप आहारों जिनमें विभिन्न पादप कृषि किस्में सम्मिलित हैं, पर भरण करते हैं।

(16) पादप आंकारकीय गुणों तथा कीट क्षति में सह-संबंध।

प्रथम चार कसौटियां ऐसे स्क्रीनिंग कार्यक्रमों, जिनमें बड़ी संख्या में पादप प्रविष्टियों का मूल्यांकन किया जाता है, के लिए बहुत लाभकारी होती हैं। प्रारंभिक स्क्रीनिंग कार्यक्रम में कीटों की

संख्या की गणना करके तुलनात्मक मूल्यांकन स्केल का प्रयोग किया जाता है। प्रतिरोध कार्यक्रम में संभावी प्रतिरोधी सामग्री को तुरंत पहचानना और माध्यमिकों तथा ग्रहणशीलों में भेद करना, मूलभूत आवश्यकताएं हैं।

प्रतिरोध मूल्यांकन स्केल

प्रतिरोध को मापने के लिए बहुत समय से चले आ रहे मूल्यांकन स्केल 0 से 3 और 0 से 5 थे, जहां उच्च संख्यायें ग्रहणशीलता अर्थात अधिक क्षतिग्रस्त होना व्यक्त करती हैं। इन स्केलों का परिवर्तित रूप अब 0-9 स्केल है। यह अधिकतर विशेषकों (किस्मों) के लिए अपनाये जाने वाला सामान्य स्केल या सूचक मान है। वे किस्में जिन्हें 3 अथवा इससे कम सूचक मान मिलता है, वे इच्छित अथवा पैत्रिक स्रोतों तथा वाणिज्यिक किस्म के रूप में स्वीकार होती हैं और कीट द्वारा कम ग्रसित होती हैं। ये हर प्रकार के कीट संबंधी दबाबों के होते हुए भी अपनी पूर्ण जैविक क्षमताओं दर्शाती हैं अर्थात प्रभावी प्रतिरोधी होती हैं। 4 से 6 तक सूचक मान प्राप्त करने वाली पादप किस्में माध्यमिक प्रतिरोधी होती हैं तथा 7 से 9 सूचक मान प्राप्त करने वाली पादप किस्में ग्रहणशील होती हैं। जितना ही कम सूचक मान होगा, उतना ही उच्च प्रतिरोध होगा। इसके विपरीत जितना अधिक सूचक मान होगा, उतनी ही अधिक ग्रहणशीलता होगी।

प्रवेशित पादपों और प्रजनन कार्यक्रमों से उत्पन्न विसंयोजी पादपों का इस प्रकार मूल्यांकन करना चाहिए कि उनमें उपस्थित भिन्नताओं को पहचाना जा सके। केवल क्षेत्र मूल्यांकन अधिक उपयोगी नहीं होता है। प्रतिरोध लक्षणों की वंशागति पर किये जाने वाले अध्ययनों में प्रवणताओं अथवा प्रतिरोध स्तरों को प्रमाणीकृत करना बहुत आवश्यक हो जाता है। कीट प्रतिरोध अध्ययन की क्रिया पद्धति चेसनोकोव (1962) ने विशेष रूप से समझायी है।

प्रतिरोध के स्रोत की पहचान के साथ ही यह जानना आवश्यक है कि प्रतिरोध की कितनी छोटी बढ़त परपोषी-पादप में प्रतिरोध के विकास के लिए उपयोग में लाने वाली होगी। इस समस्या का हल व्यापारिक खेती में प्रतिरोध स्रोत को प्रवेश कराने के आवश्यक प्रयास तथा समेकित कीट प्रबंधन कार्यक्रम की अनुक्रियाओं को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। दो औसतों के मूल्यांकनों में सांख्यिकी का उपयोग करना चाहिए। अनेक दशकों से विज्ञानी 0.05 सांख्यिकी स्तर का निर्णय करने में उपयोग कर रहे हैं।

अग्रता

किसी फसल में यदि परपोषी-पादप प्रतिरोध कार्यक्रम आरंभ करना है, तो उस फसल के नाशक कीटों में से जो नाशक कीट अधिक महत्व के हैं, उनके विरुद्ध यह कार्यक्रम आरंभ करना चाहिए। इसके पीछे नाशक कीटों की विभिन्न श्रेणियों की उपस्थिति का होना है, जो निम्नलिखित हैं :

मुख्य नाशक कीट : वह नाशक कीट है, जो नियमित रूप से फसल को आर्थिक क्षति पहुंचाता है और इसका नियंत्रण आवश्यक है।

संभावी नाशक कीट : यह नाशक कीट फसल तथा सस्य विधियों में परिवर्तन के कारण उपस्थित हो सकता है। इससे आर्थिक क्षति संभावित है।

प्रासंगिक नाशक कीट : यह नाशक कीट सतत रूप से उपस्थित रहता है, लेकिन विरले ही क्षति पहुंचाता है।

आकस्मिक नाशक कीट : यह नाशक कीट कभी कभी ही उपस्थित होता है, लेकिन जब उपस्थित होता है तो इसके कारण बहुत अधिक क्षति पहुंचती है।

किसी भी नाशक कीट के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए विकसित की जा रही किस्मों का मूल्यांकन उस नाशक कीट के साथ-साथ आकस्मिक, प्रासंगिक तथा संभावी कीटों के लिए भी कर लेना चाहिए, जिससे कि अन्य कीटों के प्रति ग्रहणशीलता से भी रक्षा हो सके। बहुत सी स्थितियों में यह देखा गया है कि विशेष आनुवंशिक तकनीकों द्वारा इच्छित परिणाम के लिए पादप में जब प्रतिरोध लक्षण को प्रविष्टित कराया जाता है तो विशेष कीट से पादप की रक्षा हो जाती है, पर उससे दूसरी कीट समस्याएं भी सामने आ जाती हैं। कपास में फ्रीगो ब्रेक्ट किस्म प्राथमिक कीट कपास भृंग को प्रतिरोध प्रदान करती है लेकिन अन्य कीटों के लिए ग्रहणशील हो जाती है। अतः प्रतिरोध प्रजनन कार्यक्रम में कीट विशेष के लिए विकसित की जा रही विभिन्न लाइनों अथवा किस्मों का विशेष कीट के साथ ही अन्य नाशक कीटों के विरुद्ध भी मूल्यांकन कर लेना चाहिए। इसके उपरांत केवल उन्हीं लाइनों का निरंतर विकास किया जाए, जिनमें कीट विशेष के साथ-साथ अन्य कीटों के प्रति भी अधिक नहीं तो कुछ सीमा तक ही प्रतिरोध हो।

सारांश में पादप प्रतिरोध कार्यक्रम में प्रतिरोध स्त्रोत की पहचान प्रमुख है। किसी फसल द्वारा खेत में दर्शाया गया प्रतिरोध एक जटिल घटना है और इसके साथ रासायनिक परिस्थितियां जुड़ी होती हैं, जिनका प्रभाव कीट के व्यवहार, भरण तथा प्रजनन पर पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रतिरोध के रासायनिक आधारों को जानने के लिए मूल अन्वेषण किये जायें। इस दिशा में निरंतर प्रयासों से कई महत्वपूर्ण पादप कीट रासायनिक पारिस्थितिकी से संबंधित सिद्धांतों का विकास हुआ है। प्रतिरोध के रासायनिक आधार को परिभाषित करने के प्रयासों में जैसे जैसे तेजी आती

जा रही है, वैसे वैसे नवीन शब्दों तथा सुग्राही उपकरणों का विकास हो रहा है।

प्रतिरोध के लिए प्रजनन कार्यक्रम तथा समेकित कीट प्रबंधन में प्रतिरोध के उपयोग का जितनी तेजी से विकास हुआ है, उतनी तेजी प्रतिरोधी रासायनों को पहचानने में तथा कीट द्वारा परपोषी चयन क्रिया विधियों में नहीं आई है।

पादप प्रतिरोध का उद्देश्य पीड़कों (नाशक कीटों) के विरूद्ध प्रतिरोधी किस्मों का विकास है। प्रतिरोधी किस्में समेकित कीट प्रबंधन में उपयोग की जाने वाली प्रमुख नियंत्रण विधि है अथवा इनका उपयोग अन्य विधियों के साथ उपबंध के रूप में उपयोग किया जाता है।

पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन

शब्दावली

अजैव	Abiotic
अण्डनिक्षेपण	Oviposition
अतिक्रामी विसंयोजनक	Transgressive segregate
सूक्ष्म सम्पुटित	Micro-encapsulated
सुभेद्य	Susceptible/vulnerable
अध्यावरण	Integument
अधिस्थितिशील	Eurytopic
अन्तर्वेशन	Interpolation
अन्तर्विष्ट देह	Inclusion body
अन्तराजातीय	Interspecific
अन्तःजातीय	Intraspecific
अन्योन्य	Interactive
अन्योन्याश्रित	Interdependent
अनुक्रमण	Succession
अनुक्रमिक	Sequential
अनुकूलतम	Optimum
अनुमतांक स्केल	Rating scale
अनुमाप	Titre
अपमार्जक	Scavanger

अपसारी	Divergent
अनावर्ती	Non-recurrent
परिवहन	Transportation
अभिनव	Recent
अल्ट्रा लो वोल्यूम	U.L.V.
अल्पजीनी	Oligogenic
अल्पभक्षी	Oligophagous
अवकर्षण	Degradation
अवकाशिका	Lumen
अवक्षारण	Scoring, समंकन
अविकल्पी	Obligate
अस्तित्व चक्र	Cycling
असंक्राम्य	Immune
असंगतता	Incompatibility
आइलेण्डीटोक्सिन	Islanditoxin
आइसेरोलिडी	Isarolidae
आइसेरिन	Isarin
आइसेरिया जातियों	*Isaria* spp
आइसोक्वेरीसिट्रिन	Isequericitrin
आइसोवोलडाइन	Isoboldine
अनियमित	Occassional
आकर्षी	Attractant
आकारिकी	Morphology
उपचारित	Treated
आर्थिक क्षति स्तर	Economic injury level

आर्थिक सीमांत (देहली)	Economic threshold
आन्तर-युग्मविकल्पी	Intra allelic
आप्लावित	Inundative
आपतन	Incidence
आपेक्षिक	Relative
आभासी-प्रतिरोध	Pseudoresistance
आमापन	Assay
बड़ी संख्या	Bulkpopulation
आर्मीवर्म	Pseudaletia sp.
आल्टोजार	Altozar
आल्टासिड	Altosid
आलू की सूंडी	*Pthoremea operculala*
आवर्ती	Periodic
आवृति	Frequency
आवास	Habitat
आविल	Turbid
आविष	Toxic
आविषालुता	Toxicity
आवेष्टन	Involvement
इकन्यूमोनिडी	Ichneumonidae
इकोक्लाइमोग्राफ	Ecoclimograph
इन्स्टार	Instar
ईयर वर्म	*Heliothis zea*
इसचिओडोन सेन्टीलोसिस	*Ischiodon sentellasis*
उत्तेजक	Exitant

उत्तरजीविता	Survival
परवर्ती	Succeding
उत्परिवर्तनजन	Mutagen
उत्परिवर्तन	Mutation
प्रजाति	Race/subspecies
उपबंध	Adjunct
उपरति	Diapause
उपेष्टतम	Suboptimal
उलमस जाति	*Ulmus* sp.
उदासपेस फोलस	*Udaspes falus*
डायाब्रोटिका जातियां	*Diabrotica* spp.
डिप्लाजोन लीटेटोरिस	*Diplazon laetatorius*
डिंबोआ	DIMBOA
डिमिलिन	Dimilin
डिसपारलूर	Disparlure
डायाट्रिआ ओरीसीला	*Diatraea auricila*
डीहाइड्रो जूवावियोन	Dehydro juvabione
डेनेस जाति	*Danaus* sp.
डेमीसिन	Damisin
डेसट्रक्सिन-ओ	DestruxinA
डेस्ट्रक्सिन-बी	Destruxin B
डेसीन्यूरा ब्रेसिकी	*Dasyneura brassicae*
प्रसुप्त	Dorment
त्वचा रोम	Trichome
तनुकारी	Diluent

ताप लेखी	Thermograph
तापीय	Thermal
तुल्यकाली	Synchromy
थीओटेपा	Theotapa
थेलोफेनिया	Thelophania
दमनक	Supressants
द्रव्यमान (बड़े पैमाने पर) चयन	Mass selection
द्रव्यमान (बड़े पैमाने पर) संवर्धन	Mass culture
दाता	Donar
दाता उद्गम	Donar source
दाता जनक	Donar parent
द्विवरण	Dual choice
दीर्घकालीन	Long range
द्वैती संवाहक	Dual messanger
धात्री कोशिका	Nurse cell
धूमक	Fumigant
नमूना	Sample
पौध छंटाई	Seedling screening
नार्दन स्पाई	Northern spy
केन्द्रकीय अम्ल	DNA
नाशक कीट/पीड़क	Pest
नाशक जीव व्यवस्था, कीट प्रबंधन	Pest management
निकोटीन	Nicotine
चौकसी	Surveillance
निर्मोचन	Moulting

नियत, स्थिर	Constant
संदमनित	Suppressed
निरुपण	Representation
निकेत	Niche
निरोधक	Inhibitor
निलंबन	Suspension
निवारक	Deterrents
निवेशित	Inoculative
निष्पत्रण	Defoliating
पपड़ी	Incrustation
नीड	Nest
नोजेमा जाति	*Nosema* sp
नोरनीकोटीन	Nornicotine
प्लवमान	Floating
पण्य	Commodity
पर्यावरण	Environment
परजीवी	Parasite
परजीव्याभ	Parasitoid
परजीवीकृत	Parasitised
परपोषी	Host
परपोषी पादप	Host Plant
परपोषी परिहार	Host evasion
परवर्ती	Subsequent
परभक्षी	Predator
पराग भक्षी	Pollen feeder

परात्परजीविता	Hyperparasitism
परात्परजीवी परजीव्याभ	Hyper-parasitoid
परा-निम्न	Ultra low
परिकलक	Reckener
परिघटनात्मक अतुयुल्यकालिकता	Phenological asynchrony
परजीविता	Parasitism
परिपक्वता	Maturity
परिभक्षण	Predation
परिभक्षिता	Predatism
आमाप	Size
परिवर्धन	Development
संदर्श	Perspective
परास	Range
पारिस्थितिक प्ररूप	Ecotype
परिहार	Evasion
पलायन (छूट जाना)	Escape
पश्चदीप्ति	Persistence
प्रकार्यक	Functional
प्रकाशसंश्लेषण	Photosynthesis
प्रक्रियायें	Procedures
प्रग्रहण	Capturing
प्रचुरोद्भवन	Proliferation
प्रत्यावर्ती अथवा रिकरेन्ट	Recurrent
प्रतिउपाचयज	Antimatabolite
प्रतिकर्षी	Repellant

प्रतिकूल प्रभाव	Adverse effects
प्रतिचयन	Sampling
प्रतिजीविता	Antibiosis
प्रतिजैविक	Antibiotic
प्रतिदर्श	Sample
प्रतिबन्धी घातकता	Conditional lethals
प्रतिरूपण	Modelling
प्रतिरोध	Resistance
प्रतिरोधी	Resistant
प्रतीप करना	Invert
प्रतियोगी	Competing
प्रदूषक	Pollutant
प्रदूषण	Pollution
प्रदूषित	Pollute
प्रबल	Epistatic/Dominant
प्रवलन	Accentuation
प्रभावी युग्म विकल्पी	Dominant allelic
प्रभावोत्पादकता	Efficacy
प्रभूत	Lush
प्रमुख	Dominant
प्ररोह मक्खी	Shoot fly
प्ररोह बेधक	Shoot borer
प्रलोभक	Attractant/Lures
प्रवणता	Gradient
प्रवृत्ति	Trend

प्रवेशित	Introduced
प्रवेशन	Introduce
प्रसर्पी	Sweeping
प्रसुप्त	Dormant
पादप आविषलुता	Phytotoxicity
पादप जनक	Plant Breeder
पादपभक्षी	Phytophagus
पायस	Emulsion
पायसीकरणीय	Emulsifiable
पायसीकारक	Emulsifer
पारअंडाशयी	Transovum
पारिस्थितिक	Ecological
पारिस्थितिक तंत्र/पारितंत्र	Ecosystem
परिस्थिति विज्ञान/पारिस्थितिकी	Ecology
पालन पोषण	Rearing
पूर्व सूचनीय	Predictive/Predictable
प्राचल	Parameter
प्राथमिक उत्पादक	Primary producer
उद्‌भेद	Outbreak
प्रारंभक	Primers
प्रासंगिक नाशक जीव	Incidental Pest
प्लिसटोफोरा	Plistophora
पिंक बॉल वर्म	*Pectinophora gossypiella*
पियरीसिडिन	Piericidin A
पियरीसिडिन	Piericidian B

परिशिष्ट - I

पियरीस ब्रेसिकी	*Pieris brassicae*
पियरिस रेपी	*Pieris rapae*
पी एफिड	*Acyrthoriphonpisum*
पीत ज्वर का मच्छर	*Aedes aegypti*
पीडकनाशी	Pesticide
प्रीकोसिन्स	Precocenes
पुगंध शल्क	Andreconia
पुनर्निवेशन	Feed back
पुनुरुत्थान	Resurgence
पुष्पावलि वृंत	Peduncle
पूरक	Complementary
पूरक मोचन	Supplementary release
पूर्वानुमान	Forecasting
पैनीसिलियम जातियां	*Penicillium* spp
प्रतिउपापचयज	Antimetabolite
प्रेरित	Induced
प्रेरित प्रतिरोध	Induced resistence
प्रोटोलियेन परजीवी	Protelean parasite
प्रोडेनिया लिटूरा	*Prodenia litura*
प्रोपीओनीट्राइल	Propionitrile
पोलीहीड्रा	Polyhedra
पोषक असन्तुलन	Nutrient imbalance
पोषक-कीट	Host insect
पोषण रीति/पोषणज स्तर	Trophic level
प्रोस्पेटेला परनीसीओसी	*Prospatella perniciosi*

फ्लूओरोसिल	Fluorocil
फ्लोरीसिन	Phloricin
फाईटोलोजिया	Phytologia
फाइलोक्जेरा विटिफोलिया	*Phylloxera vitifolia*
फारनीसोल	Farnesol
फ्रिट फ्लाई	*Oxcinella frit*
फ्रीगो	Frego
फीरोमोन	Pheromone
फूजेरियन जातियां	*Fusarium* spp.
फ्रेडिक म्यूर	Fredic Muer
फेरीनोसिस्टिस	*Farinocystis*
फेरीनोसिस्टिस ट्राइवोली	*Farinocystis tribolli*
फेसियोलस बल्गेरिस	*Phaseolus vulgaris*
ब्लास्टोक्रीथीडिया	Blastocrithidia
ब्लेक वग	*Sogettela furciffera*
बंध्यकरण	Sterlization
बंध्यकीट	Sterile insect
बंध्य वन-संख्या	Wild population
बल्कुटी	Cortical
बहु	Multiple
बहुप्रज	Multivoltine
बहुप्रतिरोध	Multiple resistance
बहुप्रतिरोधी	Multiple resistance
बहुरेखीय प्रतिरोध	Multiline resistance
वंशागत	Heritable
ब्राउन ब्लान्ट हापर	*Nilaparvata lugens*

बायोमीटर	Biometer
बायोक्लाइमोग्राफ	Bioclimograph
बोलवर्म	Bollworm
बोलवीविल	Bool weevil
बाहुल्यता	Abundance
विकीरण अनुहारी	Radiomimetic
बिन्दु	Spot/Point
विष-प्रलोभक	Poison-Baits
विषाक्त	Poisonous
बीजोपचार	Seed treatment
ब्रीबीकोर्नी ब्रेसिकी	*Brevicorne brassicae*
ब्रूकस काइनेनसिस	*Bruchus chinensis*
ब्रूकस एनेलिस	*Bruchus analis*
ब्रूकोवियस लेटीसेप्स	*Bruchobius laticeps*
ब्रेकन गेलिची	*Bracon gelechiae*
ब्रेकोनिड बर्र	Braconid wasp
ब्रेकोनिडी	Braconidae
ब्रेकीमेरिया स्पेसीज	*Brachymeria* sp.
बेकूलो वायरस	Baculovirus
ब्रेसिका जूनसीआ	*Brassica juncea*
बेसीलस थूरिनजिएन्सिस	*Bacillus thuringiensis*
बेसीलस पोपली	*Bacillius popilliae*
बेसीलस लेन्टीमोरबस	*Bacillus lentimorbus*
बेसीलीडियम	Bacillidium
बोम्बीकोल	Bombykol
भरण उद्धीपक	Feeding stimulant

भरण श्रेणी	Feeding categories
भक्ष	Prey
आहार श्रृंखला	Food Chain
मर्त्यता	Mortality
मृतजीवी	Saprophyte
महापरजीव्याम	Super-parasitoid
माइक्रोसोम	Microsome
माइट/बरूथी	Mite
माइरिस्टसिन	Myristicin
मान चित्रण	Mapping
मुख्य कारक	Key factor
मुख्य नाशकजीव (पीड़क)	Key pest
मेक्सिकन फ्रूट फ्रलाई	*Anastrepha ludens*
मेटारहीजियम	*Metarrhizium*
मेटारहीजियम एनीसोप्ली	*Metarrhizium anisopliae*
मेटेसिया	*Mattesia*
मेटेसिया डिस्पोरा	*Mattesia dispora*
मेडिकेगो जाति	*Medicago* sp.
मेडेटेरेनियन फ्रूट फ्लाई	*Ceratitis capitata*
मेलअमीबा	Malamoeba
मेलकोसोमा जातियां	*Malchosooma* sp.
मेलपिघअमीबा	Malpighamoeba
मेलपिघीएला	Malpighiella
मेलिया एजीडेराक	*Melia agedarach*
मेलन फ्लाई	*Dacus cucurbitae*

मेलेनोप्लस बिविटेटस	*Melanoplus vivitatus*
मेलोलोन्था मेलोलोन्था	*Melolontha melolontha*
मेस्टीगाफोरा	Mastigophora
मेस्टीटिस	Mastitis
मोचक	Releaser
मोचन	Release
मोनोसिस्टस	Monocystis
मोरिन	Morin
यलोस्ट्राइप्ड आर्मीवर्म	*Spodoptera praefica*
यादृच्छिक	Random
युग्मविकल्पी	Allelic
यूगलेडिना रोजिया	*Euglandina rosea*
यूजीनोल	Euginol
यूथी	Gregarious
यूटोचीनिया सीवीलोएडस	*Eutochinia civiloids*
यूटेथीसिया पलचेला	*Utethesia pulchella*
यूरोपियन किस्म (अंगूर)	*Vitia vinifera*
यूरोपियन मक्का वेधक	*Ostrinia nubilalis*
यूरोपियन विन्टर मोथ	*Operophthera brumata*
योगवाहिता	Synergism
योगवाही	Synergistic
योज्य	Additive
रससंवेदी	Gustatory
रसोग्राही	Chemoreceptor
रसोबंध्यक	Chemosterilant

राइजोपर्था डोमिनिका	*Rhizopertha dominica*
रायाशियोना व्योलियाना	*Rhyaciena buoliana*
रिक्टेसीएला चिरोनोमी	*Rickettsiella chironomi*
रिकेट्सीएला टीपूली	*Rickettsiella tipulae*
रिकेट्सीएला टेनीब्रिओनिस	*Rickettsiella tenebrionis*
रिकेट्सीएला पोपली	*Reckettsiella popillae*
रिकेट्सीएला मेलोन्थी	*Reckettsiella melonthae*
रीओवायरस	Reovirus
रूटिन	Rutin
रूपान्तरण	Transformation
रेडवेन्डिड लीफ होपर	*Argyrataenia velutinana*
रेशम का कीट	*Bombyx mori*
रेहब्डोकमीमिस ओसकूरा	*Rhabdocmemis obscura*
वय सारिणी	Life table
वरण, चयन	Selection
वरण क्षमता	Selectivity
वरणात्मक/चयनात्मक	Selective
वरित/चयनित	Selected
वरीयता	Preference
वंशागति	Inheritance
वंशावली	Pedigree
वालनट एफिड	*Chromaphis exigna*
वाहक	Carriers
विकल्पी	Facultative
विकिरण	Radiation

विकिरण अनुहारी रसायन	Radiomimetic chemical
विदारण	Disruption
विदारी	Disruptive
विनमय	Exchange
विपुंसन	Emasculation
विभव	Potential
विरल	Infrequent
विरात्मक	Arrestants
विरोधी क्रिया	Arrestants
विलयन	Solution
विवर्णी	Discolourization
विविधता	Diversity
विविध भक्षी	Polyphagous
विविधाहारी	Euryphagic
विशेषक	Trait
विशंफलकीय	Leosahedral
संकरण	Hybridzation
संकर पूर्वज संकर, प्रतीप संकर	Back cross
संकर बंध्यता	Hybrid sterility
संकरित	Reciprocal cross/hybridized
संकल्पना	Concept
सक्रिय अंश	Active ingredient
संगतता	Compatibiltiy
संगम	Mating
संगरोधात्मक प्रक्रिया	Quarantine procedure

संतति	Generation
सफेद मक्खी	*Aleurolobus barodensis*
सफेद लट	White grub
संपाती	Coincide
विभवीय पीड़क	Potential Pest
संरूपण	Formulation
समजीनी प्ररूप	Biotype
समयुग्मजता	Homozygosity
समयुग्मजी	Homozygous
समलक्षणी	Phenotype
समस्थानिक	Isotope
समाकल	Integral
समाकलित, एकीकृत, समेकित	Integrated
समजीनी	Isogenic
समुच्चय	Set
संयुक्त क्रिया	Joint action
संलागी	Stickers
सर्वभक्षी	Polyphagous
सर्वांगी	Systemic
संवेद स्थली	Sensorial
संश्लेषित	Synthetic
संश्लेषित हारमोन	Synthesized hormone
सहगामी	Concomitant
सहपत्र	Bract
सहनता सह्यता	Tolerance

सहयोजन	Utilization
सह-संबंधित	Inter-related
सादन, निःसादन	Settling
साधारण	Moderate
सान्द्र	Concentrate
सामूहिक (बड़े पैमाने पर) चयन	Mass selection
स्पिंडिल	Spindle
सिट्रस	Citrus
सिनेग्रिन	Singrin
सीमाकारी कारक	Limiting factor
सूचकांक	Index
इल्ली	Caterpillars
सूक्ष्म जलवायु	Micro-climate
सूक्ष्मजैविक	Microbial
सूक्ष्म-मात्रिक तत्व	Trace element

संदर्भ-सूची

Aderson, L. D. and Atkins Jr. E.L. 1968. *A.Rev. Ent.* **13** : 213-238.

Adkisson, P.L. and J.C. Gaines, 1960. *Tex. Agric. Exp. Stn. Misc. Publ.,* **444** : 7pp.

Adkisson, P. L., C.F. Bailey and G.A. Niles, 1962. *Tex. Agric. Exp. Stn. Misc. Publ.,* 606.

Adkission, P.L.,1972. *Proc. Tall Timbers Conf. Ecol. Anim. Contr. Habitat Manage.,* **4** : 1975-1988.

Agarwal, R.A., 1960. *Indian Sug.,* **10** : 523-544.

Agarwal, R.A., 1969. *Entomologia exp.appl.,* **12** : 767-776.

Agarwal, R.A., S. K. Banerjee, M. Singh, and K.N. Katiyar, 1976. *Cotton Fibr. trop.,* **31** : 217-221.

Agarwal, R.A., G.C. Sharma, S.K. Banerjee and K. N. Katiyar, 1979. *J. Soc. Cott. Impr.. Suppl.,* **3** (2) : 3-8.

Aleson, W.R., F.A. Haskins, and H.J.Gorz, 1969 *Science, N.Y.,* **163** : 293-294.

Alexander, R.D. 1961, *A. Rev. Ent.,* **12** : 495-526.

Allard, R.W. 1970. Population structure and sampling methods: *In:* Genetic resources in plants, O.H. Frankel and E. Bennet. Eds. FA. Davis Co., Philadelphia pp 97-108.

Allee, W.C., A.C. Emerson, T. Park, and K.P. Schmidt, 1949. Principles of Ecology. W.B. Saunders Co. Philadelphia 274 pp.

Anonymous 1953. *Eng. Exp. Sta. Bull.,* 152, Ohio State University, U.S.A.

Anonymous. 1963. XIII Rept. W.H.O. Expert. Comm. Insecticides, WHO *Tech. Rept. Ser.,* **15** : 265-277.

Anonymous 1965. Report I Session FAO Working Party or Experts on resistance of pest to pesticides. FAO UN PL/1965/**18** : 106.

Anonymous. 1967. *Proc. Semi.* Integrated pest control, Rome. Sept. 1967.

Anonymous, 1975. Pest control: An assessment of present and alternative technologies. Vol. I (Report of the Executive Committee). *Nat. Acad. Sci.* Washington, D.C.

Anonymous 1976 Dimilin-A new insecticide interfering with chitin deposition. Technical information, 7th edition Philips -Duphar B.V., Holland.

Anstey, T.H. and J.F. Moore, 1954. *J. Hered.,* **45** : 39-41.

Apple, J.L. and Smith, R.F. (Eds.) 1976. Integrated pest management. Plenum Press, New York, pp 200.

Applebaum, S.W., 1964. *J. Insect. Physiol.,* **10:** 897-906.

Applebaum, S.W.and Y. Birk, 1972. Natural mechanisms of resistance to insects in legume seeds. *In:* Insect and mite nutrition. J.G. Rodriquez, Ed. North Holland, Amsterdam, pp. 629-639.

Askew, P.R. 1971. Parasitic insects. American Elsevier, New York: 316pp.

Atwal, A.S., 1963. *Punjab Hort. J.,* **3** (2-4) : 235-258.

Atwal, A.S. and K. Singh, 1969. *Indian J. Ent.,* **31** (2) : 116-120.

Auclair, J.L., J.B. Maltais, and J.J. Cartier, 1957. *Can. Ent.,* **69** : 457-464.

Auclair, J.L., 1963. *A. Rev. Ent.,* **8** : 439-490.

Awasthi, M.D., A.K. Dixit, S. Verma, S.K. Handa, and R.S. Dewan, 1967. *Indian J. Pl. Prot.,* **5** : 55-61.

Baker, Whiteford L., 1972. U.S. Dept. *Agric., For. Serv,. Misc. Publ.,* 1175, 642 pp.

Balasubramanian, M, G., and A. Maheswara Reddy, 1981. *In National seminar on strategies of pest management* pp 60. The Entomological Society of India (Held on December 21-23), New Delhi (Abstracts).

Baran, M. 1972. *Biologia Bratisl,* **272** : 129-139.

Bar-bulescu, A. 1970. *J. econ. Ent.,* **51** (3) : 374-378.

Bartlett, B.R. 1959. *Agric. Chem.,* **II** : 42-107.

Beard, R. L. 1963. *A. Rev. Ent.,* **8** : 1-18.

Beck, S.D. and J.H. Lilly, 1959, *J. Sci.,* **23** : 249-259.

Beck, S.D. 1960. *Ann. Entomol. Soc. Am.,* **53** : 206-212.

Beck, S. D. 1965. *A. Rev. Ent.*, **10** : 207-232.

Beck, S.D. and J.C. Reese,1976. *Rec.Adv. Phytochem.*,**10** : 41-92.

Beirne, B.P.1963. *Mem. Ent. Soc. Can.*, **32** : 7-10.

Bejer-Peterson. B.1962. *Oikors.* **13** : 155-168.

Bernard, R.L. 1971. *Crop. Sci.*, **11** : 242-244.

Beroza, M., L.J. Stevens B.A. Bierl, F.M. Phillips and J.G.R. Tardif1973. *Envir. Ent.*, **2** : 1051.

Bey-Bienko,G.Y.1961. *Rev. Ent.*, U.S.S.R., **40** : 763-775.

Bindra,O.S., G.C. Varma, and G.S. Sandhu, 1970. *J. Res.*, **7** (4) : 491-494.

Birch, M.K.H. Trammel, H. Shorey, L. Gaston, D. Hardee, D. Wood, W. Burkholder and D.M. Schwarze 1974.1n: *Pheromones*, M.Birch, Ed., Elsevier, NewYork pp 411-461.

Blum, A., 1968. *Crop. Sci.*, **8** : 388-390.

Bodenheimer, F.S.1938. Problems of Animal Ecology, Oxford Press, London, 183pp.

Bodenheimer, F.S. 1951. Insects as human food. The Haque,W.Junk, London 352pp.

Boller, E.F.and R.J. Prokopy,1976. *A. Rev. Ent.*, **21** : 223-246.

Borkovec, A.B. 1966. *Adv.Pest control Res.*, **7** : 1-143.

Boughey, A.S. 1971. Fundamental Ecology. New York: Intext Educational Publishers, 222pp.

Bowers, W.S., H.M. Fales, M.J. Thompson and E.C. Vebel 1966. *Science,* **154** : 1020.

Brader, L. 1978. *Ind. J. Plant Protection,* **VI** (2) : 1-11.

Brindley, T.A., and F.F. Dicke, 1963. *A. Rev. Ent.*, **8** : 155-176.

Brower, L.P.S., Van Zantidt Brower and F.P. Cranston 1965. *Zoologica* **50** : 1-39.

Brown, A.W.A. 1958. *Adv,. Pest Contr. Res.*, **2** : 351-414.

Brown A. W. A. 1960. *A. Rev,. Ent.*, **5** : 301-306.

Bucher, G.E., 1960. *J. Insect Path.*, **2** : 172-195.

Bucher, G.E. 1963. 'Non sporulating bacterial pathogens'. *In:* Insect Pathology-an advanced treatise, Steinhaus, E.A., Ed., Academic Press, N.Y. and London **2** : 117-143.

Buckner, C.H. 1966. *A. Rev. Ent.*, **11** : 449-470.

Buckner, C.H. 1967. *Entomphaga,* **12** : 491-501.

Buckner, C.H. 1971. Verterbrate predators. *In:* Towards Integrated control. pp. 21-31 Proc. Third Ann. N.E. For. Ins. Work Conf., USDA For. Serv. Res. Paper NE. 194,129 pp.

Buhr, H. 1954. *Zuchter,* **24** : 185-193.

Butenandt, A. and P. Karlson 1954. *Z. Naturforsch,* **96** : 389-391.

Butterworth, J.H., and E.D. Morgan, 1968. *Chem. commun.*, 1968 No. 1, 23-24 (1968).

Butterworth, J.H., and E.D. Morgan, 1971. *Azadirachta indica J. Insect. Physicol.* **17**, 969-977.

Byrne, H.D., C.C. Blickenstaff, J.L. Huggans, AL. Steinhauer, and R.S. Vandenburgh, 1967. : *Bull. Md. agric. Exp. Stn.* No., **4**, 147, 27pp.

Callahan, P.S., 1957. *Entomol. Soc.*, **30** : 59-63.

Callahan, P.S. 1965. *Nature,* **206** : 1172-1173.

Cannon, W.N., Jr. and A, Ortega, 1966. *Ann. Entomol. Soc,. Am.*, **59** : 631-638.

Carson, R. 1962. Silent Spring Houghton Mifflin, Boston, 304. pp. Cartier, J.J., 1963. *J. econ. Ent.*, **56** : 205-213.

Cartier, J.J. 1963. *J. econ. Ent.*, **56** : 205-213.

Caswell, H. and F.C. Reed, 1975. *Ann. Entomol. Soc. Am.*, **68** : 686-688.

Chambers, D.L., 1977. *A. Rev. Ent.*, **22** : 289-308.

Chapman, D.L., J.A. Klun, K.C. Mattes and M.A. Barry 1973. *In:* New Methods in Environmental Chemistry and Toxicology. F. coulston, F. Korte, and M. Goto, Eds., Intl. Acade. Printing. Totsuka, Tokyo, pp. 163-168.

Chaudhary, S. and Sharma R.C. 1960. *Indian J. Agron.*, **4** : 264-268.

Chelliah, S. and A. Subramaniam, 1972. *Indian J. Ent.*, **34** : 255-256.

Chesnokov, P.G. 1962. Methods of Investigating Plant Resistance to Pests. Published for NSF and USDA by Israel Program for scientific translations, 107pp.

Chippendale, G.M., 1972. *Proc. N. Cent. Branch, Entomol. Soc. Am.*, **27** : 114- 12 1.

Chippendale, G.M. and Beck, S.D., 1964. *Entomologia exp. appl.*, 7 : 241-248.

Chopra, R.L. 1926. Annual Report of the Entomologist to the Govt. of Punjab. Lyallpur for the year 1925-26. *Rep. Dept. Agric. Punjab,* **1** : 67-125.

Clausen, C.P. 1940. Entomophagous Insects. New York : McGraw-Hill 688pp.

Clausen, C. P. 1956. Biological control of insect pests in the continental United States. *U. S. Dept. Agric. Tech. Bull.* 1139, 151 pp.

Commonwealth Institute of Entomology, 1957. *Ser. A. Map.*-81

Cope, OB., 1971. *A. Rev. Ent.*, **16** : 325-364.

Coppel, H.C. and J.W. Mertins, 1977. Biological Insect Suppression, Springer Verlag, Berlin, 314 pp.

Craw, A. 1894. Biennial report of quarantine officer and entomologist. *Fourth Bienn. Rep. St. B. Hort. Stn. Calif.* 1839-94 Sacramento.

Croft, B.A. 1972. *Span,* **15** (1) : 1-4.

Craft, B.A. and M.M. Bames. 1971. J *econ. Ent.*, **64** : 845-850.

Croft, B.A.and J.A. MacMurtry 1972. *J.econ. Ent.*, **65** : 188-191

Crow, J.E. 1957. *A. Rev. Ent.*, **2** : 246-277.

Cuthbert, F.P.and B.W. Davis, 1972. *J. econ. Ent.*, **65** : 778-781.

Dacosta, C.P. and C.M. Jones, 1971. *Science,* **172** : 1145-1146.

Dadd, R.H., 1973. *A. Rev. Ent.*, **18** : 381-421.

Dahms, R.G., 1969. *U.S. Dep. Agric.* ERD : 5pp.

Dahms, R.G., 1972. *J. Envir. Qual,* **1** : 254-259.

David, H. 1964. *Curr. Sci.*, **33** : 299.

David, W.A.L. and B.O.C. Gardiner, 1966. *Entomologia exp.appl.*, **9** : 247-255.

David, W.A.L. 1975. *A. Rev. Ent.*, **20** : 97-117.

Davis, R.F. Worley, R.F. Whitcomb, F. Ishijima and R.L. Steere, 1972. *Science,* **176** : 521-523.

DeBach, P., T.W. Fisher, and J. Landi. 1955. *Ecology,* **36** : 743-753.

DeBach, P. (ed.) 1964. Biological control of insect pests and weeds. London: Champman & Hall, 844pp.

DeBach, P., and B.R. Bartlett. 1964. Methods of Colonization, Recovery and Evaluation. *In:* Biological Control of Insect Pests and Weeds, P. De Bach, Ed. pp 402-428. London, Chapman & Hall, 844pp.

DeBach, P. 1965. Some *B*iological and *E*cological *P*henomena *A*ssociated with colonizing *E*ntomomophagus Insects. *In:* Genetics of Colonizing Species, Ed., HoG. Baker and G.L. Stebbinspp. 287-306, New York: Academic press, 588pp.

DeBach, P. 1972. *Proc. Tall. Timbers. Conf. Ecol. Anim. Contr. Habitat. Manage.*, **3** : 211-233.

DeLoach, C.J. and Peters J.C. 1972. *Envir. Ent.*, **1** : 94-102.

Dethier, V.G., 1954. *Evolution,* **8** : 33-54.

Dethier. V.G., 1970. Chemical Interactions Between Plants and insects. *In:* Chemical Ecology, Sondheimer and simeone, Eds., Academic Press, Inc., New York, pp. 83-103.

Dethier, V.G., L.B. Brown and C.N. Smith 1960. *J. econ. Ent.*, **53** : 134-136.

Devine, T.H., R. H. Ratcliffe, C.M. Rincker, D.K. Barnes, S.A. Ostazeski, T.H. Busbice, C.H. Hanson, J.A. Schillinger, G.R. Buss and R.W. Cleveland, 1975. *Crop Sci.*, **15** : 97.

Dhamdhere, S.V. and Saxena, D.K. 1968. *Farmer and Parliament,* **3** (9) : 13-20.

Dietrick, E.J., 1973. *Proc. Tall Tinibers Conf. Ecol. Anim. Habital. Manag.*, **4** : 161-182.

Doutt, R.L. 1964. The historical development of biological control. *In:* Biological control of Insect Pests and Weeds, P. DeBach, Ed., 21-42, London: Chapman Y Hall, 844pp.

Doutt, R.L. and P. DeBach, 1964. Some Biological control concepts and Questions. *In:* Biological control of Insect Pests and Weeds, P. DeBach, Ed; pp. 118- 142. London: Chapman & Hall, 844pp.

Doutt, R.L. 1972. Biological control: Parasites and predators. *In:* Pest Control Strategies for the Future pp. 298-297. National Academyof Sciences, Washington, D.C.

Doutt, R.L., and J. Nakata. 1973. *Envir. Ent.*, **2** (3) : 381-386.

Dunn, J.A. and D.P.H. Kempton, 1972. *Ann. Appl. Biol.*, **72** : 1-11

Dunn, J.A. and D.P.H. Kempton, 1976. *Ann. Appl. Biol.*, **82** : 11-19.

Dutky, S. R. 1959. Insect Microbiology. *Adv. Appl. Microbiology.* **1** : 175-200.

Dyck, V.A., E.A. Heinrichs, M.D. Pathak, and R. Feuer, 1976. *Conf. Pest Control Council, Philippinses, Cagayan de Orocity.* Mimeographed 29pp.

Easwaramoorthy, S. 1975. The effect of the fungus, *Cephalo- sporium lecanii Zimm,* on three species of sucking pests with special reference to coffee green bug, *Coccus viridis* green (Coccidae: Hemiptera), M.Sc. (Ag.) Dissertation submitted to the Tamil Nadu Agricultural University, Coimbatore (Unpublished).

Eglinton, G. and R.J. Hamilton, 1963. The Distribution of Alkanes. *In:* Chemical Plant Taxonomy, T. Swain, Ed., Academic Press, Inc., New York, pp. 187-217.

Elton, C.S. 1958. The Ecology of Invasions by Animals and Plants. Methuen, London, 181 pp.

Elgin, J.H., Jr., R.R. Hill, Jr. and K.K. Zeiders 1970. *Crop. Sci.,* **10** : 190-193.

Emlen, J.M. 1973. Ecology, Addison - Wesley. Reading, Mass. 493pp.

Essig, E.O. 1931 - A History of Entomology. New York: Macmillan, 1029pp.

Everatt, T.R., H.C. Chiang and E.T. Hibbs. 1958. *Mini. Agric. Expt. Sta. Tech. Bull.,* **229** : 1-63

Falcon, L.A. 1971. Microbial control as a tool in integrated control programme, in biological control, C.B. Huffaker(ed.) Plenum Press, New York. pp. 346-364.

FAO 1966-1972. Reports of FAO Panel of experts on integrated pest control, Rome.

Feeny, P., 1976. *Recent. Adv. Phytochem.,* **10** : 1-40.

Flor, H.H., 1955. *Phytopathology.* **45** : 680-685.

Flor, H.H. 1956. *Adv,. Genet.,* **8** : 29-54.

Fraenkel, G., 1959. *Science,* **129** : 1466-1470.

Fraenkel, G. 1969. *Entomologia exp. appl.,* **12** : 473-486.

Fraenkel, G., J.K. Nayar, O. Nalbandov, and R.T. Yamamoto, 1980. *Proc. Intern. Cong. Entomol.,* 11th, Vienna, 3,122- 126.

Franze, J. M. 1960. *Cong. Entomol. 11th,* Vienna, 1960.

Frazer, B.D., and R.Van den Bosch., 1973. *Envir. Ent.,* **2** : 561-568.

Gahukar, R.T. and H.C. Chiang, 1976. Advances In European Corn Borer Research. *In:* Report of the International Projecton *Ovtrinia nubilalis,* Phase III: Results, B. Dolinka, Ed. Agricultural Research of the Hungarian Academy of Sciences, Martonvasar. pp.125-173.

Gallun, R.L., 1972. *J. Envir. qual.,* **1** : 259-265.

Gallun, R.L., J.J. Roberts, R.E. Finny,and F.L. Patherson, 1973.J. *Envir. Qual.,* **2** : 333-334.

Gallun, R.L., K.J. Starks, and W.D. Guthries, 1975, *A. Rev. Ent.,* **20** : 337-357.

Gangrade, G.A. and N.C. Pant 1970a. *Pans,* **16** : 370-372.

Gangrade, G.A. and N.C. Pant 1970b. *Pans,* **16** : 373-376.

Gangrade, G.A. and N.C. Pant 1970c. *Indian J. Ent.,* **32** : 322-336.

Geier, P.W. 1966. *A. Rev. Ent.,* **II** : 471-490.

Geier, P.W. 1970. Organizing large scale projects in pest management. Meeting on cotton pests. Panel of experts on pest control, FAO, Rome, September 1970, 8p.

Geier, P.W. and Clark, L.R. 1961. An Ecological Approach to Pest Control, *In:* Proceedings of Eighth Technical Meeting, Intemational Union For Conservation of Nature and Natural Resources, Warsaw, pp. 10-18.

George, K.S. 1962. PI. Path., **11** : 172-176.

Georghiou, G.P., 1965. *Adv. Pest control Rev.,* **6** : 171-230.

Ghosh, B.N. 1962. *Curr. Sci.,* **31** : 472-473.

Gilbert, B.L., J.E. Baker, and D.M. Norris, 1967. *J. Insect. Physiol.,* **13**, 1453-1459.

Gilbert, L.E., 1971. *Science* **172** : 585-586.

Gill, J.S., and CT. Lewis, 1971. *Nature,* London. **232** : 402-403.

Gillet, F. 1982. First report. *Calif. St. Horti. Comm.,* Sacramento, pp 24-28.

Gouck, H.K. and G.C. LaBreeque 1964. *J. econ. Ent.,* **57** : 663-664.

Gupta, B.D, and R.L. Garg, 1943. *Indian J. Ent.,* **5** : 173-176.

Guthric, W. D., E. S. Raun, F. E. Dickc, G. R. Pesho. and S.W. Caster, 1965. Iowa State *J. Sci.*, **40** : 65-83.

Gjutierrez, A.P., and R.Van Den Bosch. 1970., *Ann. Entomol. Soc. Amer.*, **63** : 1345-1354.

Hackerott. H.L., T.L. Harvey. E.L. Sorensen, and R.H. Painter, 1958. *Agron. J.*, **50** : 139-141.

Hagen, K.S., E.F. Sawall, Jr., and R.L.Tassan, 1970. *Proc. Tall Timbers Conf. Ecol. Anim. Contr. habitat. Manage.* **2** : 59-82

Hall, I.M, 1954. *Halgardia,* **22** : 535-565.

Hall, D.C., and R.R. Norgarrd, 1973. *Am. J. agriic. Econ.*, **55** : 198-201.

Hamamura, Y., 1970. The Substance That Control The Feeding Behaviour and Growth of Silkmoth, *Bombyx mori. In:* Control Of Insect Behaviour By Natural Products, D.L. Wood, R.M. Silverstein, and M. Nakajima. Eds., Academic Press, Inc., New York.pp 55-80.

Hambleton, E.J, 1944. *J. econ. Ent.*, **37** : 660-666.

Hanson C.H., T.H. Busbice, R.R. Hill, O.J. Hunt, and A.J. Oakes, 1972. *J. Envir. Qual.* **1** : 106-111.

Harlan J.R., 1972. *J. Envir. Qual.*, **1** : (3): 212.

Harley, K.L.S. and A.J., Thorsteinson, 1967. *Can. J. Zool.*, **45** : 305-319.

Harris, C.R., 1969. *Proc. Ent. Soc.Ontario* **100** : 14-29.

Hatchett J.R. and R.L. Gallun, 1970. *Ann. Entomol.Soc. Am.*, **63** : 1400-1407.

Havens, J.N., 1972. *Soc. Agron. N. Y Trans.*, **1** : 89-107.

Hayes H.K., F.H. Immer and D.C. Smith 1955. Methods of plant breeding. McGraw. Hill Book Co., Inc., New York, 551pp.

Hayes W.J. Jr., 1960. *A. Rev. Ent.*, **5** : 376-404.

Headley, J.C, 1972. Defining the economic threshold. *In:* Pest Control Strategies For The Future pp 100-108. National Academy of Sciences, Washington, D.C.

Hedin, P.A., A.C. Thompson, and J.P. Minyard, 1966. *J.Econ. Ent.*, **59** : 181-185.

Hedin, P.A., F.G. Maxwell, and J.N. Jenkins, 1974. Insect Plant Attractants, Feeding Stimulants, Repellents, Deterrents and other Related Factors affecting Insect Behaviour. *In:* Proc.SummerInst.

Biol.Control-PlantinsectsDis. F.G. Mazwell and F.A. Harris, Eds: 494 527.University Press of Mississippi, Jackson.

Hedin, P.A., D.A. Vickers, D.A., Bartlett, A.C., Wiygul, G. and N. Mithin, 1965. Sterilizing effects of tepa on boll weevil. *Symp. Chem. Soc. Antanticcity* N.J

Heimpel A.M. 1967. *A. Rev. Ent.*, **12** : 287-322.

Heimpel, A.M. 1971. Safety of Insect Pathogens for Man and Vertebrates. *In:* Microbial Control of Insect and Mites, Burges, H.D. and Hussey, N.W. Eds., Academic Press, London, New York, pp. 469-87.

Hillebrandt, P.M. 1960. *J. Agric. Econ.*, **13** : 464-472.

Hinkley, A.D. 1968. *Bull. Ent. Res.*, **54** : 467-481

Holling, C.S., 1961. *A. Rev. Ent.*, **6** : 163-182.

Holmes, N.D. and L.K. Peterson, 1957. *Can. Ent.*, **89** : 363-365.

Holmes, N.D. and L.K. Peterson, 1960. *Can. J. Pl. Sci.*, **40** : 29-46.

Horber, E, 1972. Agric, *Sci. Rev.*, **10** : 1-18.

House, H.L., 1962. *A. Rev. Biochem.*, **31** : 653-671

House, H.L., P. Singh, and W. W. Batsch. 1971. *Can. Dept. Agric. Inf. Bull. Res. Inst.*, **7** : 156pp.

Howe, W. L. 1949. *J. Econ. Ent.*, **42** : 321-326.

House, W.L. and O.F. Smith, 1957. *J. Econ. Ent.*, **50** : 320-324.

Howe, W.L. and G.R. Pesho, 1960a. *J. Econ. Ent.*, **53** : 142-144.

Howe, W.L. and G.R. Pesho, 1960b. *J. Econ. Ent.*, **50** : 234-238.

Hoxie, R.P., S.G. Wellso, and J.A. Webster, 1975. *Envir. Ent.*, **4** : 365-370.

Hoyt, S.C. and L.E. Caltagirone, 1971. In Biological Control Huffakr. C.B., Ed., New York: Plenum, 511pp.

Hoyt S.C., and E.C. Burts, 1974. *A. Rev. Ent.*, **19** : 231-232.

Huettel, M.D., 1976. *Envir. Ent.*, **5** (5) : 807-814.

Huffaker, C.B., ed. 1971. Biological Control. New York: Plenum. 511pp.

Huffaker, C.B. and P.S. Messenger 1964. The Concept and Significance of Natural Control. *In:* Biological Control Of Insect Pests And Weeds, P. DeBach, Ed. Chap. 4, pp. 74-117. London: Chapman & Hall, 844pp.

Huffaker, C. B., M. Van de Vrie, and J.A. McMurthy, 1970. *Hilgardia,* **40** : 391-458.

Hummel, K. and K. Staesche, 1962. Die Verbreitung der Haartypen in dennaturti schenverwandtschaftsgruppen. Hand Zimmerman and P.G. Ozenda, Eds. Gebruder Borntraeger, Berlin, pp. 207-250.

Hunt, O.J., R.N. Peaden, H.L. Carahan, and F.V. Lieberman, 1966. *Crop Sci.,* **6** : 610.

Hurst, C.W. 1965. *Pl. Path.,* **14** (2) : 47-53.

Hussain, M.A. 1929. Entomology. *Rep. Dept. Agric.,* Punjab: 26-31.

Hussain, M.A., Bindra S.S., Ladha Ram, Gande Ram and Dev Raj. 1931. *Indian J. Agric. Sci.,* **1** (2) : 204-285.

Hutchinson, G.E. 1959. *Am. Nat.,* **93** : 145-159.

Ignoffo, C.M. 1967. Possibilities Of Mass Producing Control, P.A. Van der Laan, Ed., North Holland of publishing Co. Amsterdam, pp 97-117.

Ignoffo, C.M. 1975.'Entomopathogens as insecticides.'In: Insecticides Of The Future, M. Jacobson, Ed, pp 23-40, Marcel Dakker Inc., New York.

Iizuka, H., J. Kanazawa and K. Mujahara. 1972. *Jap. J. Appl. Ent. Zool.,* **16** : 136-147.

Ikan, R., E.D. Bergman, U. Yinon and A. Shulov. 1969. *Nature,* **223** : 317.

Ikeda, Toshiya, F. Matsumura and D.M. Benjamin. 1977. *Science,* **197** : 497-499.

International Board for Plant Genetic Resources 1976. Consultative group on international agricultural research- Priorities among crops and regions. IBPGR/FAO, Rome.

International Institute of Tropical Agriculture (II TA). 1977. Annual Report for 1976. Ibadan, Nigeria.

Isaak, A., E.I. Sorensen and R. H. Painter. 1965. *J. Econ. Ent.,* **58** : 140-143.

Isely, D. 1948. Methods of Insect Control, Part 1, 3rd ed. Burgess Publishing Co. Minneapolis, Minn. 134pp.

Ishii, S and C.H irano. 1958. *Jap. J. Appl. Ent. Zool.,* **2** : 198-200.

Isogai, A., C. Chang, S. Murakoshi and A. Suzuki. 1973. *J. Agric. Chem. Soc. Jap.,* **47** : 443-447.

Israel, P and Prakasha Rao P.S. 1957. *Oryza* **4** : 85-86.

Jacobson, M. 1965. Insects Sex Attractants. Interscience, New York, 154pp.

Jenkins, J.N. and W.L. Parrott. 1971. *Crop.Sci.,* **11** : 739-743.

Jermy, T. 1976. The Host-Plant In Relation to Insect Behaviour and Reproduction. Plenum Press, New York, 322pp.

Johnson, B. 1953. *Bull Ent. Rev.,* **44** : 779-788.

Johnson, P.C. and R.E. Denton. 1975. *U.S. Dep. Agric. For. Serr. Gen. Tech. Rep. INT* **20** : 144 pp.

Kanel, S.A. 1965. *Emp. Cott. Grow. Rev.,* **42** : 41-48.

Kaminkado, T.C.F. Change, S. Murakoshi, A. Sakurai and S. Tamura. 1975. *Agric. Biol. Chem.,* **39** : 833-886.

Karlson, P and A. Butenandt. 1959. *A. Rev. Ent.,* **4** : 39-58.

Karlson, P, M. Lusehr and H. Hummel. 1968. *J. Insect Physio.,* **14** : 1763-1769.

Kearney, P.C.,C.I. Harnis, D.D. Kaufiman and T.J. Sheets. 1965. *Adv. Pest Contr. Res.,* **6** : 1-130.

Kennedy, J.S., and I.H.M. Fasbrooke. 1973. *Sym. Roy,. Entomol. Soc.,* London **6** : 129-140.

Kennedy, J.S. and C.O. Booth. 1959. *Entomologia exp. Appl.,* **2** : 1-11.

Kennedy, J.S., C.O. Booth and W.J.S. Kershaw. 1961. *Ann. Appl. Biol.,* **49** : 1-21.

Kerrich, G.J. 1960. *Trans. Soc. Br. Ent.,* **14** (1) : 1-18.

Khush, G.S. 1977a. *Ann. N.Y. A Acad. Sci.,* **28** : 296-308.

Khush, G.S. 1977b. *Genetics* of and Breeding for Resistance to Brown Plant Hopper. *In:* Brown Plant Hopper Symp. I.R. R.I. Los Banos, Philippines. Mimeographed.

Kilgore, W.W. and R.R. Painter. 1964. *Biochem. J.,* **92** : 353-357.

Kindler, S.D. and R. Staples.1970a. *J. Econ. Ent.,* **63** : 938-940.

Kindler, S.D. and R. Staples. 1970b. *J. Econ. Ent.,* **63** : 1198-1201.

Kircher H. W., W. B. Heed, J.S. Russell and J.Grove. 1967. *J. Insect*

Kircher H. W., W. B. Heed, J.S. Russell and J.Grove. 1967. *J. Insect Physion.*, **13** : 1869-1874,

Kishaba, A.N. and G. R. Manglitz. 1965. *J. Econ Ent.*, **58** : 566-569.

Klostermeyer, E.C. and C. B. Scotland. 1959. *Wash Agric.Exptl. Stn. Circ.* No.32, 362pp.

Klun, J.A. and T. A. Brindley. 1966. *J Econ. Ent.*, **59** : 711-718.

Klun, J.A., C. L. Tipton and T. A. Brindley. 1967. *J. Econ. Ent.*, **60** : 1529-1533.

Klun, J.A. and J. F. Robinson.1969. *J. Econ. Ent.*, **62** : 214-220.

Klun, T.A., M. Beroza, K.C. Mattes, W.B.Showers, E.C, Berry, J.V. Robinson and M.W. Barry. 1973. *Abstr. Nati. Entomol. Soc. Am.*, Meeting, paper 544. Dallas Taxes.

Knipling, E.F. 1955. *J. Econ. Ent.*, **48** : 459-462.

Knipling, E.F. 1964. *U.S. Dept. Agric.*, ARS 33-98:14pp.

Knipling, E.F. 1968. The Potential Role Of Sterility For Pest Control. In: Principles Of Insect Chemosterilization, G.C. LaBrecque and C.N. Smith Eds. North Holland Publishing Co., Amsterdam.

Kogan, M. 1972. Intake And Utilization Of Natural Diets By The Mexican Been Beetle, *Epilactina varivestis*. A Multivafiate Analysis. *In:* Insect And Mite Nutrition: Significance And Implication In Ecology And Pest Management. J.G. Rodrigulz Ed., Nerth-Holland, Amsterdam, pp 107-126.

Kogan, M. 1976. Resistance In Soybean To Insect Pests. *In:* Expanding The Use Of Soybeans, R.M. Goodman, Ed. Proceedings Of A Conference For Asia And Oceania. Chiang Mai, Thailand, University of Illinois, Urbana, INTSOY.

Kogan, M. 1977. *Proc. Int Cong. Ent.*, **15** : 211-227.

Kogan, M and E.E. Ortman. 1978. Antixenosis-A New term Proposed To Replace Painter's "Nonpreference" Modality of Resistance. ESA Bull., 24.

Kralovic, J. 1964a. *Nache Bl. Dtsch. Pflsch. Dienstr.* (N.F.)., **18** : 9-14.

Kralovic, J. 1964b. *Rostl. Vijroba,* **10** : 441-450.

Krichner, H.A. 1966. Wiss, Z. Univ. Rostock, **15** : 275-282.

Krymauska, J. 1967. *Biul Inst. Ochr. Rosl.*, **36** : 237-247.

Kuhn, R and A. Gouhe. 1947. Uberdie Bedeutungdes Demissins fur die Resistance van S. demissum gegen die Larven des Kartoffelkafers. *Z. Natureforsch.*, **26** : 407-408.

Kumar, S. 1975. *Cane Gr. Bull.*, **2** (3) : 8-16.

Kundu, H. L. 1962. *Rhino,* **2** : 5-9.

Kundu, G.G. and Prem Kishore. 1982. *Indian J. Ent.*, **42** (4) : 791-793.

LaBrecque, G.C. 1968. Laboratory Procedures North-Holland Publishing Co., Amsterdam.

LaBrecque, G.C., P.H. Adcock and C.N. Smith. 1960. *J. Econ. Ent.*, **53** : 802-805.

Lachance, L.E., D.T. North and W. Klassen. 1968. Cytogenetic And Cellular Basis Of Chemically Induced Sterility In Insect. *In:* Principles Of Insect Chemosterilization, G.C. LaBrecque and C.N. Smith Eds., North Holland Publishing Co., Amsterdam.

Lachance, L.E. and J.G. Riemam. 1964. *Mutat. Res.*, **1** : 318-33.

Lehane, B. 1969. The Complete Flea, *Viking Press,* New York 120pp.

Leigh, T.F., A.H. Hyer T and R.E. Rice. 1972. *Envir. Ent.*, **1** : 390-391.

Leius, K. 1967. *Can. Ent.*, **99** : 444-446.

Leon, J. Ed. 1974. FAO-*Agric. Studies,* **93** : 140pp.

Levin, D.A. 1973. *Quart. Rev. Biol.*, **48** : 3-15.

Liang,H.J.,Dong Qi-ming, and Wuxiang, Guang. 1966. *Acta Ent. Sin.*, **15** : 105-113.

Lichtenstein, E.P., F.M. Strong and D.G. Morgan. 1962. *J. Agric-. Fd. Cheni.*, **10** : 30-33.

Lichtenstein, E.P. and J.E. Casida. 1963. *Agric. Fd. Chem.*, **11** : 410-415.

Leiner, I.E. and M.L. Kakade. 1969. Protease Inhibitors. *In:* Toxic Constituents Of Piant Foodstuffs, I.E. Liener, Ed., Academic Press, Inc. New York, pp 7-68.

Light, W.I., St. G., M.E. John, H.J. Could and K.J. Coghill. 1969. *Ann. Appl. Biol.*, **62** : 227-239.

Lincoin, C and B.A.Waddle.1966. *Arkansas Farm Res.*, **15** : 4-5.

Lindley, G. 1831. A Guide To The Orchard And Kitchen Garden. Rees, Orme, brown and Green, Eds., 601pp.

Lindquist, D.A., L.J. Gorzayck, A.L. Mayer, M.S, Scales and T.B. Davich. 1964. *J. Econ. Ent.*, **60** : 461-473.

Link, D and C.J. Possetto. 1972. *Rev,. Peruana Ent. (An. Ier. Cong. Lationam. Entomol)*, **15** : 25-327.

Lipke, H, G.S. Frankel and I.E. Liener. 1954. *J. Agric. Fd. Chem.*, **2** : 410-414.

Litynski, M and Wilkoje A. 1954. *Roozn. Naukroln.*, A 69 : 625 Warszawa.

Luck, R.F., R. Vanden Boscliand R. Garcia. 1977. *Bioscience*, **27** : 606-611.

Luck man, W.H., A.M. Rhodes and E.V. Wann. 1964. *J. Econ. Ent.*, **57** : 778-779.

Luck man, W and R.L. Metcalf. 1975. The Pest Management Concept *In:* Introduction To Insect Pest Management, R.L. Metcalf and W. Luckman, Eds.,John Wiley and Co Sons New York, pp3-36.

Luginbill, PJr. 1969. *U.S. Dep. Agric.* ARS *Prod. Res. Rep.*, **3** : 14pp.

Lukefahr, M.J., G.T. Bottgerand, F.G. Maxwell 1966. *Proc. Ann. Cotton Dis. Council, Cotton Def. Phys. Conf. Cotton Impr. Conf.*, pp 215-222. National Cotton Concil, Memphis, Tenn.

Lukefahr, M.J. and J.E. Houghtaling. 1969. *J. Econ. Ent.*, **62** : 588-591.

Lukefahr, M.J., J.E. Houghtaling and H.M. Graham. 1971. *J. Econ. Ent.*, **64** : 486-488.

Lupton, F.G.H. 1967. *World Rev,. Pest Control,* **6** : 47-58.

Mac Arthur, R.H. 1955. *Ecology,* **36** : 533-536.

Manglitz, G.R., H.J. Gorz, F.A. Haskins, W.R. Akason and G.L. Betand. 1976. *J. Envir. Qual.*, **5** : 347-352.

Martignoni, M.F. 1964. "Mass Production Of Insect Pathogen". In: Biological Control Of Insect Pests and Weeds. P.De Bach, Ed., pp 579-609, London: Chapman & Hall, 844pp.

Martin, J.T. and B.E. Juniper. 1970. The Cuticles Of Plants.St. Martin's Press, New York, p.347.

Martin, H. 1973. The Scientific Principles Of Crop Protection, Edward Arnold, London.

Martin, G.A.,C.A. Richard and S.D. Hensley. 1975. *Envir. Ent.*, 4687-688.

Mathes, R and L.J. Charpentier. 1963. *Proc. Int. Soc. Sug. Technol.*, **11** : 594-603.

Matsumura, F, H.C. Coppl and A. Tai. 1968. *Nature,* **219** : 963-964.

Maxwell, F.G., H.N. Lfever and J.N. Jenkins. 1965. *J. Econ. Ent.*, **58** : 792-793.

Maxwell, F.G., J.N. Jenkins, W.L.Parrott and W.T. Buford. 1969. *Entomologia Exp. Appl.*, **12** : 801-810.

Maxwell, F.G. 1972. Host Plant Resistance To Insects-Nutritional And Pest Management Relationships. *In:* Insect And Mite Nutrition, Rodriguez J.G., Ed., North Holland, Amsterdam, pp 599-609.

Maxwell, F.G., J.N. Jenkins and W.L. Parrott. 1972. *Adv. Agron.*, **24** : 187-265.

Mazakhin, Porshynakov G.A. 1969. Insect Vision. Plenum Press, New York, p. 306.

McCook, H. 1882. Ants as beneficial insecticides. *Proc. Acad. Nat. Sci.*, Philadelphia.

McMillian, W.W., M.C. Bowman, J. K. Starks and B.R. Wisemann. 1972. *J. Econ. Ent.*, **65** : 708-710.

Mc-Murtry, J.A. 1962. *Hilgardia,* **32** : 501-539.

Mc-Murtry, J.A., C.B. Huffaker and M. van de Vrie. 1970. *Hilgardia,* **40** : 331-390.

Mellonby, K. 1967. Pesticides and Pollution. *Collins,* London, 221p.

Menzie,C.M. 1972. *A. Rev. Ent.*, **17** : 199-222.

Metcalf R.L. and W. Luckman (eds). 1975. Introduction To insect Pest Management, John Wiley and Sons, New York, 336pp.

Mishra, B.C., J.P. Kulshreshtha, J.K. Roy and J.R.K. Rao. 1976. Indian Farming **26** (4) : 21-23.

Mohanty, H.K. and A. Roy. 1977. *Int. Rice Res. Newsl.*, **2** (2) : 2.

Montgomery, M.E. and H. Arn. 1974. *J. Insect. Physiol.*, **20** : 413-421.

Moore, M.W. (Ed). 1966. *J. Appl. Ecol.* **3** (Supplement) : 311.

Moore, M.W. 1967. *Adv,. Ecol. Res.*, **4** : 75-129.

Morris, R. F. 1959. *Ecology,* **40** : 580-588.

Morris, R.F. 1963. *Mem. Ent. Soc. Can.*, **32** : 16-21.

Muller, K.O. 1959. Hypersensitivity. *In:* Plant Pathology, J.G. Horsfall and A.E. Diamond, Eds., Vol. 1. Academic Press, New York, pp 469-519.

Mungomery, R.W. 1948. *Proc.15th Cong.* Queensl and *Soc. S. Tech.*, 34-42.

Nakagawa, P.Y. and J. Ikeda. 1969. World Health Organization WHO/ VBC/69,173.

Nakono, K, G. Abe, N. Taketa and C. Hirano. 1960.Jap. *J. Appl. Ent. Zool.*, **5** : 17-22.

Narayanan, E.S. 1957. *Proc. 44th Indian Sci. Congr.*, **11** : 167-189.

National Academy of Sciences, 1968. The Biological Control of Weeds. Inn Principles Of Plant And Animal Pest Control Chap 6, pp 86-119. *Nat. Acad. Sci., Publ.*, 1597, 471pp.

National Academy of Sciences. 1969. Insect Pest Management And Control, Vol. 3, Principles Of Plant And Animal Pest Control. National Academy of Sciences, Washington, D.C. 508pp.

National Academy of Sciences. 1971. Insect Plant Interactions. Report Of A Work Conference. National Academy of Sciences, Washington D.C., 93 pp.

Nayar, J.K. and A.J. Thorsteinson. 1963. *Can. J. Zool.*, **41** : 923-926.

Nene, Y.L. 1971. *In:* Some Tissues Emerging From Recent Break Through In Food Production; Kenneth T.L., Ed., N.Y. State College of Agriculture: 365-377pp.

Nicholson, A.J. 1954. *Aust. J Zool.*, **2** : 9-65.

Norris, D.M. 1970. *Ann. Entomol. Soc. Am.*, **63** : 476-478.

Norris, D.M. 1977. The Role Of Repellants And Deterrants In Feeding Of Scolyltus multistriatus. *In:* The Chemical Basis For Plant Resistance To Pests. American Chemical Society, Washington D.C.

Oatman, E.R., J.A. McMurtry and V. Voth. 1968. *J. Econ. Ent.*, **61** : 1517-1521.

Odum,E.P. 1953. Fundamentals of Ecology.3rd edition. Saunders, Philadelphia, 546pp.

Odum,E.P. 1971. Fundamentals of Ecology. 3rd edition, Saunders, Philadelphia, 574pp.

Oka, I.N. 1976. *Proc. Rice Res. Conf.*, I.R.R.I. Philippines.

Oksanen, H.V., Perttunen and E. Kangas. 1970. *Contrib. Boyce. Thompson Inst.*, **24** : 275-282.

Oppenoorth, F.J. 1965. *A. Rev. Ent.*, **10** : 185-206.

Ortman, E.E., D.C. Peters and P.J. Fitzgerald. 1968. *J. Econ. Ent.*, **61** : 373-375.

Painter, R.H. 1941. *J. Econ. Ent.*, **34** : 358-367.

Painter, R.H. 1951. Insect Resistance In Crop Plants. The Macmillan Co., New York, 520pp.

Painter, R.H. 1958. *A. Rev. Ent.*, **3** : 267-290.

Painter, R.H. and D.C. Peters. 1956. *J. Econ. Ent.*, **49** : 546-48.

Paradis, R.O. 1956. *Que. Soc. Pl. Rep.*, of. Pl. Rep., **38** : 45-48.

Parker, F.D. 1971. Management Of Pest Population By Manipulating Densities Of Both Host And Parasites Through Periodic Release. *In:* Biological Control, C.B. Huffaker, Ed. Chap. 16, pp. 365-376. New York: Plenum Press.

Patanakmjorn, S and M.D. Pathak. 1967. *Ann. Entomol Soc,. Am.*, **60** : 287-292.

Pathak, M.D. 1968. *A. Rev. Ent.*, **13** : 257-294.

Pathak, M.D. 1970.Genetics Of Plants In Pest Management. *In:* Concepts Of Pest Management, R.L. Rabb and F.E. Guthrie, Eds., North Carolina State University, Relligh, pp 138-157.

Pathak, M.D. and V.A. Dyck. 1973. *PANS*, **19** (4) : 534-544.

Pathak, M.D., H.M. Beashell and F. Andres. 1973. *Int. Rice Comm. Newsl.*, **22** (3) : 1-8.

Pathak, M.D. 1975, Utilization Of Insect Plant Interactions In Pest Control. *In:* Insects, Science And Society, D. Pimental, Ed., Academic Press, Inc., New York, pp. 121-148.

Pathak, M.D. and R.C. Saxena. 1976. *Curr. Adv. Pl. Sci.*, **8** (9) : 1233-1252.

Pathak, M.D. and G.S. Khush. 1977. Studies On Varietal Resistance to Brown Plant Hopper at I.R. R. 1. *In:* Brown Plant Hopper Symposium. I RRI, Los Banos, Philippines Mimeographed, 48 pp.

Pavlov, J.E. 1959. *Ent. Obozr.*, **38** : 326-340.

Pawar, V.M. and N. Ramakkishnan. 1971 (a). *Indian J. Ent.*, 33 : 111-112.

Pawar, V.M. and N. Ramakrishnan. 1971 (b). *Indian J. Ent.*, **33** : 428-432.

Payne, T.L. 1970. Contrib. *Boyce Thompvon Inst.*, **24** : 275-282.

Peregrine, W.T.H. and W.S. Catling. 1967. *Pl. Path.*, **16** : 170-175.

Persian, S.A. 1971. *Vesiniksel skokhozyaistyennor Nanki.*, **16** (9) : 75-78.

Pillemer, E.A. and W.M. Tiney. 1976. *Science,* **193** : 482-484.

Pimental, D. 1961. *In:* System Analysis In Ecology. Academic Press, New York. London, pp. 15-35.

Pimental, D, Hayne D.W., Kr-umholz L.A., Middleton J.T., Walford L.A. and Bucklev J.L. 1965. In Restoring The Quality Of Our Environment. A report on environmental pollution panel President's Science advisory committee. The White House, Washington D.C. 192-226 pp. *U.S. Govt. Ptg. Washington.*

Pimenital, D. 1969. *Proc. Tall Timber Conf. Ecol. Amin. Contr. Habitat, manage.*, **1** : 19-28.

Poos, F.W. and F.F. Smith. 1931. *J. Econ. Ent.*, **46**.: 178-179.

Pradhan, S. 1946. *Proc. Nat. Inst. Sci. India,* **12** : 301-314.

Pradhan, S. 1971a. *Indian J. Ent.*, **33** : 233-259.

Pradhan, S. 197lb. Pesticides, **5** (8) : 11-17.

Pradhan, S. 1973. *Entomologists Newsletter,* New Delhi **3** :12- 16.

Pradhan, S and Sunil Kumar. 1974. *Entomologists Newsletter,* New Delhi **4** : 17-20.

Prem Kishore. 1980. Integrated approach for the control of *Chilo partellus* (Swinhoe), a serfious pest of sorghum. Ph. D. Thesis(unpublished), Division of Entomology, IARI, New Delhi 110012.

Prem Kishore 1992. *J. Ent. Res.*, **16** (3) : 236-241.

Prem Kishore 1992a. *J. Ent. Res.*, **16** (4) : 319-321.

Prem Kishore 1993. Developments in insect resistance in sorghum and millets. In advances in host plant resistance to insects. G.S. Dhaliwal and V.K. Dilwari (eds.). Kalyani Publishers, New Delhi, pp 111-150.

Prem Kishore 1995. *J. Ent. Res.*, **19** (2) : 187-190.

Prem Kishore 2000. *J. Ent. Res.*, **24** (1) : 63-72.

Prem Kishore 2001. *J. Ent. Res.*, **25** (4) : 273-282.

Prem Kishore 2002. *J. Ent. Res.*, **26** (2) : 101-112.

Prem Kishore 2003. In Frontier Areas of Entomological Research. *Divn. of Ent.* IARI New Delhi.

Prem Kishore and Gahukar, R.T. 1992.J *Ent. Res.*, **16** (2) : 155-162.

Prem Kishore and Gahukar, R.T. 1993. *J. Ent. Res.*, **17** (2) : 91-98.

Prem Kishore and M.G. Jotwani. 1979. *Bull. Ent.*, **20** : 147-149.

Prem Kishore and M.G. Jotwani. 1982. *J. Environ. Res.*, **111** (1) : 1-7.

Pruthi, Hem Singh. 1969. A Text Book of Agricultural Entomology, 977pp. Indian Council of Agricultural Research, New Delhi 110001.

Pruthi, H.S. and Ahmed T. 1941. Indian *J. Agric. Sci.*, **11** : 906-924.

Quiras, C.F., M.A. Stevens, C.M. Rick and M.K. Kok-Yokomi. 1977. *J. Am. Soc. hort. Sci.*, **102** : 166-171.

Quist, J.A. 1973. Insect population Management of Apple Orchards (unpublished).

Rabb, R.L. 1969. *Proc. Tall Timbers Contf. Ecol. Anim. Contr. Habitat Manage.*, **1** : 175-191.

Rabb, R.L. and F.E. Guthrie (eds.) 1970. Concepts Of Pest Management, North Carolina State University Press. Raleigh, North Carolina, 242pp.

Radcliffe, E.B. and R.K. Chapman. 1965. *Ann. Entomol. Soc. Am.*, **58** : 897-902.

Radcliffe, E.B. and R.K. Chapman. 1966. *J. Econ. Ent.*, **59** : 120-125.

Rai, K.S. 1964. *Cytologia,* **29** : 346-353.

Rangaswami, G.K., Ramamoorthi and G. Oblisami. 1968. Studies On Microbiology And Pathology Of Insect Pests Of Crop Plants. U.S.D.A. PL-480. Research Project (1963-68).University of Agricultural Sciences, Hebbal, Bangalore-24.

Rao, V.P., M.A. Chani,T. Sankaran and K.C. Mathur. 1971. *Commonw. Inst. Biol. Control Tech. Comm.*, **6** : 149.

Rao, C.R.S. 1973. Science Reporter, **10** : 537-538.

Reed, G.L., T.A. Brindley and W.B. Showers. 1972. *Ann. Entomol. Soc. Am.*, 65 : 658-662

Rees, C.J.C. 1969. Chemoreceptor Specificity Associated With Choice Of Feeding Site By The Beetle, *Chrysolina brunsvicensis*, On Its Host Plant, *Hypericum hirsutum. In:* Insect And Host Plant, J. De Wilde and L.M. Schoonhven, Eds., North Holland, Amsterdam, pp 563-583.

Reynold, H.T., L.D. Anderson and L.A. Andres. 1959. *J. Econ. Ent.*, **52** : 63-66.

Riddiford, L.M. and J.W. Truman. 1978. Biochemistry Of Insect Hormones And Insect Growth Regulators. *In:* Biochemistry of Insects, M. Rockstein, Ed., pp 308-355. Academic Press, New York.

Ripper, W.E. 1959. *A. Rev. Ent.*, **1** : 403-438.

Rivny, E. 1964. A. *Rev. Ent.*, **9** : 41-62.

Roberts, D.W.A. and C. Tyrrell. 1961. *Can J. Pl. Sci.*, **41** : 457-465.

Roberts, D.W. and W.G. Yendol. 1971. Use Of Fungi For Microbial Control of Insects. *In:* Microbial Control Of Insects And Mites, Burges H. D. and N.W. Hussey, Eds., Academic Press, London and N.Y. pp. 125-149.

Robinson, R.R., J.H. Young, R.D. Morrison. 1972a. *Envir. Ent.*, **1** : 94-102.

Robinson, P.R., J.H. Young, R.D. Morrison. 1972b. *Envir. Ent.*, **1** :145-149.

Rodriguez, J.G. 1960. *Am. Assoc. Adv. Sci.*, **61** : 149-167.

Rodriguez, J.G., Ed. 1972. Insect And Mite Nutrition. North Holland, Amsterdam, 702pp.

Rosenthal, G.A., D.H. Janzen and D.L. Dahlman. 1977. *Science*, **192** : 256-258.

Ruesink, W.G. and M. Kogan. 1975. The Quantitative Basis Of Pest Management: Sampling And Measuring. *In:* Introduction to Insect Pest Management, R.L. Metcalf and W. Luckmann, Eds. John Wiley & Sons, New York, pp 309-352.

Ruscoe, C.N.E. 1972. *Nature New Biol.*, **236** : 159-160.

Russell, W.A. 1975. *J. Res.*, **49** : 527- 551.

Ryan, C.A. 1973. *A. Rev. Pl. Physiol.*, **24** : 173-196.

Sanchez, K.N., S. R. Singh and W. H. Sill Jr. 1964. *J. Econ. Ent.*, **57** : 569-571.

Sasamoto, K. 1957. *Botyu Kagaku.* (Inst. Insect Control). **22** : 159-164.

Sasamoto, K. 1958. *Jap. J. Appl. Ent. Zool.*, **2** : 88-92.

Saver, T.N. and M.J. Lukefahr. 1969. *J. Econ. Ent.*, **62** : 643-646.

Schillinger, J.S. and R.L. Gallun. 1968. *Oulema melanopus. Ann. Entomol. Soc. Am.*, **61** : 900-903.

Schindler, U. 1965. *Z angew Ent.*, **56** : 338-344.

Schlesinger, H.M., S.W. Applebaum and Y. Birk. 1976. *J. Insect Physiol.*, **22** : 1421-1425.

Schlinger, F.I. and F.J. Dietrfick. 1960. *Calif. Agric.*, **14** : 8-9, 15.

Schmialek, P. 1961. *Z. Naturforsch.*, **16** : 461-464.

Schmutterer, H, K.R.S. Ascher and H. Rembold. 1981. *Nutural pesticides from the neem tree. Proc. Int. Neem. Conf. Eschform* (FRG).

Schneider, F. 1944. *Fortschr. Frgeb. Gartenb.*, **5** : 4.

Schoonhoven, A.V., C.E. Wassom and E. Horber. 1972. *Crop Sci.*, **12** : 862-863.

Schoonhoven, L.M. 1967. *Proc. K. Ned. Akad. Wet. Ser. C.*, **70** : 556-568.

Schoonhoven, L.M, 1972. *Symp. Roy. Entomol. Soc.* London, **6** : 87-99.

Schuster, M.F. and J.L .Frazier. 1976. Mechanism Of Resistance To *Lygus* spp. In *Gossypium hirsutum* L. EUCARPIA/OILB Host Plant Resistance Proc. Wageningen, The Netherlands, pp 129-135.

Scott, G.E. and W.D. Guthrie. 1967. *Crop Sci.*, **7** : 233-235.

Self, L.S., E.F. Guthrie and E. Hodgson. 1964. *J. Insect Physoil.*, 10 : 907-914.

Sellier, R. 1959. Les Insectes utiles. Utilization des insects. auxiliares. Utilization des insect as par homine. Paris, 286pp.

Shade, R.E., T.E. Thompson and W.R. Campbell, 1975. *J. Econ. Ent.*, **68** : 399-404.

Shaw, J.G. and M.S. Riviello. 1962. *Science*, **137** : 754-755.

Shelford, V.E. 1929. Laboratory And Field Ecology. Williams & Wilkins, Baltimore, 608 pp.

Shimura, L. 1972. *Jap. Agric. Res. Quart.*, **6** : 224-230.

Shorecy, H.H., L.K. Caston and R. N. Jefferson. 1968. *Adv. Pest Contr. Res.*, **8** : 57-126.

Shorey, H.H., R.S. Kaae and L.K.Gaston. 1974. *J. Econ. Ent.*, **67** : 347-350.

Sidhu, A.S. and A.K. Dhawan. 1978. *Cott. Dev.*, **8** (1-2) : 15-19.

Silverstein, R.M.R., R.G. Brownlee, T.E. Bellas, D.L. Wood and L.E. Browne. 1968. Science. **159** : 889-891.

Simkover, H.O. 1964. *J. Econ. Ent.*, **57** : 574-579.

Singh, U.B. and G.S.S. Shekhawat. 1964. *Indian J. Agric.*, **9** : 48-50.

Singh, B.B, H.H. Hadley and R.L. Bernard. 1971. *Crop Science*, **11** : 13--16.

Singh, I.D. and J.B. Weaver Jr. 1972, *Crop Sci.*, **12** : 294-297.

Singh, P. 1970. *Can. Dep. Agric. Inst. In Bull.*, **6** : 1-102.

Slama, K and C.M. Williams. 1966. *Nature*, **210** : 329-330.

Slama, K, M. Romanuk M and F. Sorm. 1974. Insect Hormones And Bio-analgues-Springer Verlag, Berlin.

Smith, H.S. 1935. *J. Econ. Ent.*, **28** : 873-898.

Smith, R.F. and H.T. Reynolds. 1965. Principles, Definitions and Scope Of Integrated Pest Control, *In:* Proceedings Of The FAO Symposium On Integrated Pest Control, Vol **1** : 11-17

Snelling, R.O. 1941. *Bot. Res.*, **7** : 543-586.

Solomon, M.E. 1949. *J. Anim Ecol.*, **18** : 1-35.

Solomon, M.E. 1969. Population Dynamics. New York: St. Martins, 60pp.

Southwick, C.H. 1971. Ecology and Quality of our Environment. Van Nostrand Reinhold Co., New York, 319pp.

Southwood, T.R.E. 1966. Ecological methods, Methuen, London, 391pp.

Spencer, H. 1857. Asquoted By Pimental D. 1966. (*In:* System Analysis In Ecology, Academic Press, New York, London, pp 15-35.

Sprague, G.F. and R.G. Dahms. 1972. *J. Envir. Qual.*, **1** : 82 34.

Sprott, J.M., R.D. Lacewell, G.A. Niles J.K. Walker and J.R. Gannaway. 1976. *Tex. Agric. Exp. Stn. Misc. Publ.*, 12506, 23pp.

Stadelbacher, E.A. and A.L. Scales. 1973. *J. Econ. Ent.*, **66** : 418-421.

Starks, K.J., D.E. Weibel and J.W. Johnson. 1972. *Sorghum Newsl.*, **15** : 130.

Stebbings, E.P. 1903. *Indian Mus. Notes.*, **6** : 47-62.

Stehr, F.W. and D.L. Haynes. 1972. *J. Econ. Ent.*, **65** : 405-417.

Stephens, S.G. 1957. *J. Econ. Ent.*, **50** : 415-41 8.

Stephens, S.G. 1959. *J. Econ. Ent.*, **52** : 390-396.

Stephens, S.G. and H.S. Lee.1961. *J. Econ. Entomol.*, **54** : 1085-1090.

Stern, V.M., R.F. Smith, R. Venden Bosch and K.S. Hagen. 1958. *Hilgardia*, **29** : 81-100.

Stern, V.M., R.F. Sinith, R. Vanden Bosch and K.S. Hagen. 1959. *Hilgardia*, **29** : 81-101.

Stern, V.M.1973. *A.Rev. Ent.*, **18** : 259-280.

Stern, V.M., P.L. Adkisson, O.G. Beinlgolea and G.A.Viktorov.1977. Cultural control. *In:* Theory And Practice Of Biological conrol. C.F. Huffaker, Ed., Academic Press Inc., New York, pp 593-613.

Steinhaus, E.A. 1949. Principles Of Insect Pathology. New York McGraw Hill, 757pp.

Steinhaus, E.A. and Martignoni M.E. 1962. Mimeographed Series No. 6 Dept. Of Insect Pathology, University of California, Berkeley, pp. 20.

Steinhaus, E.A. (ed.). 1963. Insect Pathology - An Advance Treatise, New York and London: Academic Press, Vol. 1, 661 pp; Vol 2, 689pp.

Steinhaus, E.A. 1964. *In:* Biological Control Of Insect Pests and Weeds P. DeBach, Ed., London: Chapman & Hall, pp 515-547.

Steinhaus, E. A. 1969. *J. Econ. Ent.*, **52** : 506-8.

Sullivan, D.J. 1969, A study of aphid hyperparasitism with special reference to *Asaphes californicus* Girault (Hymenoptea: Pteromalidae). Ph.D. dissertation, on file University California, Berkeley, 120pp.

Sundararabu, P.C., M. Balasubramanian and N.P. Mahadevan. 1991. *In:* National Seminar On Strategies Of Pest Management: 67 (held on Dec. 21-23). The Entomological Society of India, New Delhi (Abstract).

Swan, L.A. 1964. Beneficial insects. New York, Harper Row, 429pp.

Sweetman, H.L. 1936. The biological control of insects. Ithaca, N.Y.: Comstock Publishing Associates, 461pp.

Sweetman, H.L. 1958. The Principles Of Biological Control, Wm.C. Brown Co, Dubuque, Iowa, 560pp.

Tanton, M.T. 1962. *Entomologia exp. appl.*, **5** : 74-78.

Taschenberg, E.F., R. Carde and W. Roelogs. 1974. *Envir. Ent.*, **3** : 239-242.

Teetes, G.L. and N.M. Randolph. 1971. *J. Econ. Ent.*, **64** : 124-126.

Thompson, K.F. 1967. *Nature*, **198** : 209.

Thorsteinson, A.J. 1953. *Can. J. Zool.*, **31** : 52-72.

Thorstein soil, A.J. 1960. A. *Res. Ent.*, **5** : 193-218.

Thurston, R and J.A. Webster 1962. *Ent. Exp. Appl.*, **5** : 233-238.

Thurston, R,J.C. Parr and W.T. Smith. 1966. *Fourth Int. Tobacco. Sci. Congr. Proc., Natl. Tobacco., Board Greece.* Athens: 424-430.

Thurston, R, WT. Smith and B. Cooper. 1966. *Ent. Exp. Appl.*, **9** : 428-432.

Thurston, R. 1970. *J. Econ. Ent.*, **63** : 272-274.

Tilton, E.W. and H.W. Schroeder. 1963. *J. Econ. Ent.*, **56** (6) : 727-730.

Totlim. J.d., T.H.C. Taylor and R.W. Paine. 1930. *Imp. Bur. Ent.*, London 269pp.

Touzeau. J. 1966. *Rev. Zool. Agric. Appl.*, **65** : 41-49.

Townes, H. 1969. *Mem. Am. Entomol. Inst.* No., **11** : 300pp.

Trammel, K, W.L. Roelofs, E.H. Glass. 1974. J. *Econ. Entomol.*, **67** : 159-164.

Tumlinsont, J.H., J.C. Moser, R.M. Silverstein, R.G. Brownlee and J.M. Ruth. 1972. *J. Insect Physiol.*, **18** : 809-814.

Uphof, J.C. Th. 1962. Plant Hairs. *In:* Handbuch der plantzenanatomie. Vol. 4, part 5, Histologie, W Zimmerman and P.G. Ozenda, Eds., Gebruder Borntrager, Berlin, pp 1-206.

Uvarov, B.P. 1931. *Trans Ent. Soc.* London, **76** : 1-247.

Uvarov, B.P. 1932. *Ecology*, **13** : 309-311.

Uvarov, B.P. 1962. *Arid Zone Res.*, **18** : 235-248.

परिशिष्ट - II

Vaishampayam, S.M. and Rajesh Verma. 1981. *In:* National Seminar on Strategies of Pest Management-8 (held in Dec 21-23) New Delhi (Abstract).

Vanden Bosch, R. 1971. *A. Rev. Ecol. System.*, **11**: 45-66.

Vanden Bosch, R and V.M. Stern. 1962. *A. Rev,. Ent.*, **7** : 367-386.

Vanden Bosch, R, B.D. Frazer, C.S. Davis, P.S. Messenger and R. Hom. *1970. Calif. Agric.*, **24** (11) : 8-10.

Vander Plank, J.E. 1968. Disease Resistance In Plants. Academic Press Inc., New York, 206pp.

Vanderzant, E.S. 1974. *A. Rev. Ent.*, **19** : 139-160.

Van Duyn, J.W., S.G. Turnipseed and J.D. Maxwell. 1972. *Crop Sci.*, **12** : 561-562.

Van Emden, H. F. 1966. *J. Hortic.*, **18** : 91-102.

Van Emden, H.F. (Ed). 1965. *Symp. Rov. Entomol Soc.*, London **6** : 215pp.

Van Emden, H.F. and G.F. Williams. 1974. *A. Rev. Ent.*, **19** : 455-475.

Varis, A.L. 1958. *J. Sci. Agric. Soc. Fin.*, **30** : 271-75.

Wada, K and K. Munakata. 1968. *J. Agric. Fd. Chem.*, **16** : 471-474.

Wada, K, K. Matsui, Y. Enomoto, O. Ogiso and K. Munakata. 1970. *Agric. Biol. Chem.*, **34** : 941-945.

Walker, J.K. Jr and G.A.G.A. Niles. 1971. *Tex. Agric. Exp. Stn. Bull.*, **1109** : 14 pp.

Walker, J.K., G.A. Niles, J.R. Gannaway, J.V. Robinson, C.B. Cowan and M.J. Lukefahr. 1974. *J. Econ. Ent.*, **67** : 537-542.

Walker, J.K. J.R. Gannaway and G.A. Niles. 1977. *J. Econ. Ent.*, **70** : 5-8.

Wallace, L.E., F.H. McNeal and M.A. Berg. 1973. *J. Econ. Ent.*, **66** : 1121-1123.

Watson, T.F., L. Moore and G. Ware. 1975. Practical Insect Pest Management, W.H. Freeman, San Francisco, 196pp.

Watt, K.E.F. 1968. Ecology and Resource Management. McGraw Hill Book Co., New York. 59-69.

Way, M.J. and G. Murdie. 1965. *Ann. Appl. Biol.*, **56** : 326-328.

Way, M.J. 1976. *Bull. Entomol. Soc. Appl.*, **22** (2) : 125-129.

Wearing, C. H. 1972a. *Entomologia Exp. Appl.*, **15** : 61-80.

Wearing, C.H. 1972b. *Entomologia Exp. Appl.*, **5** : 139-154.

Weatherley, D. E., A.J. Reel and G.D. Hill. 1959. *J. Exp. Bot.*, **10** : 1-16.

Webster, J.A., S.H. Gage and D. H. Smith Jr. 1973. *Envir. Ent.*, **2** : 1089-1091.

Wellso, S. 1973. *Ann. Entomol Soc. Am.*, **66** : 91-93.

Wharton, R.H. and W.J. Roulston. 1970. *A. Rev. Ent.*, **15** : 381-404.

White, E.B., P DeBach and M.J. Garber. 1970. *Hilgardia,* **40** : 161-192.

Whittaker, R.H. 1970. Communities and Ecosystems. Macmillan, New York, 158pp.

Whittaker, R.H. 1975. Communities and Ecosystems. 2nd ed. Macmillan, 385pp.

Whittaker, R.H. and P. Feeny.1971. *Science,* **171** : 757-770.

Whitten, J.L. 1966. That We may live. D. Van-Nostrand Co Inc Princeton, New Jersey, 251pp.

Williams, C.M. 1956. *Nature,* London **178** : 212.

Wilsons, E.O.and W.H.Bossert. 1963. *Recent Prog. Horm. Res.*, **19** : 673-716.

Wilson, E.O. 1970. Chemical Communication Within Animal Species. *In:* Chemical Ecology. E. Sondheimer and J.B. Simeone, Eds., Academic Press, NewYork.

Wilson, R.L. and F.D.Wilson.1976. *J. Econ.Ent.*, **69** : 623-624.

Wiseman, B.R., W.W. McMillian and N.W. Widstrom. 1972. *J. Econ. Ent.*, **63** : 1260-1262.

Yadav, C.P.S. 1982. *In:* National Seminar on Strategies of Pest Management-64. The Entomological Society of India (held on Dec.21-23) at New Delhi (Abstracts).

York, G.T. 1958. *J. Sci.*, 33 : 123-129.

Yoshida, S.Y., Onishi and K. Kitagishi. 1959. *Soil. Pl. Fd.*, (Tokyo) **5** : 23-27.

Zwolfer, H and G. Harris. 1971. *A. Rev. Ent.*, **16** : 157-178.

परिशिष्ट – III

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेज़ी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :—

(क) तत्वों और यौगिकों के नाम जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाइ-ऑक्साइड आदि;

(ख) तौल और माप की इकाइयाँ और भौतिक परिमाण की इकाइयाँ जैसे डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;

(ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे- मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टेन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ० गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि० गेरी), एम्पियर (मि० एम्पियर), फ़ारेनहाइट तापमान (मि० फ़ारेनहाइट) आदि;

(घ) वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली ;

(ङ) स्थिरांक जैसे π, g, आदि;

(च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि;

(छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे साइन, कोसाइन, टैन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप नागरी और मानक रूपों में भी, विशेषतः साधारण तौल और माप में, लिखे जा सकते हैं, सेन्टीमीटर का प्रतीक जैसे cm. हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु नागरी संक्षिप्त रूप से० मी० हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm. ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं जैसे : क, ख, ग या ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे साइन A, कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो :—

(क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

(ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं जैसे telegraph/telegram के लिए

तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक आदि, इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेज़ी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स आदि, इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. **अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण** : अंग्रेज़ी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएँ जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंग** : हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्द** : पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए 'गारंटित', classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि, के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा- सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास** : कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफ़न लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. **हलंत** : नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. **पंचम वर्ण का प्रयोग** : पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परंतु lens, patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

15. **मानक वर्तनी** : सभी प्रकाशनों में भारत सरकार द्वारा संस्तुत मानक देवनागरी लिपि तथा वर्तनी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

परिशिष्ट – IV

आयोग द्वारा प्रकाशित परिभाषा-कोशों की सूची

1.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 284)	10.00
2.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश-2 (सामान्य भूविज्ञान) (पृ. 196)	13.50
3.	शैलविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 195)	-
4.	प्रारंभिक पारिभाषिक रसायन कोश (पृ. 242)	3.25
5.	उच्चतर रसायन परिभाषा-कोश	17.00
6.	रसायन (कार्बनिक) परिभाषा-कोश-(3) (पृ. 280)	25.00
7.	पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा-कोश (पृ. 188)	173.00
8.	प्रारंभिक पारिभाषिक कोश-गणित (पृ. 298)	18.75
9.	गणित परिभाषा-कोश (पृ. 253)	11.00
10.	आधुनिक बीजगणित परिभाषा-कोश (पृ. 159)	11.00
11.	सांख्यिकी परिभाषा-कोश (पृ. 432)	18.00
12.	भौतिकी परिभाषा-कोश (पृ. 212)	3.15
13.	आधुनिक भौतिक परिभाषा-कोश (पृ. 290)	13.00
14.	प्राणिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 220)	10.00
15.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (खंड 1,2,3,4)	-
16.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश-(5) (आकारिकी तथा वर्गिकी)	-
17.	पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 161)	80.50
18.	भूगोल परिभाषा-कोश	10.00

19.	मानव-भूगोल परिभाषा-कोश (पृ. 228)	18.00
20.	मानचित्र-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 361)	231.00
21.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश	-
22.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश-(2) (पृ. 64)	9.00
23.	इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा-कोश (पृ. 215)	22.00
24.	तरल यांत्रिकी परिभाषा-कोश (पृ. 76)	10.00
25.	यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 135)	84.00
26.	सिविल इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 112)	61.00
27.	आयुर्विज्ञान पारिभाषिक कोश (शल्यविज्ञान)	48.05
28.	इतिहास परिभाषा कोश (पृ. 297)	20.50
29.	शिक्षा परिभाषा-कोश (पृ. 197)	13.50
30.	शिक्षा परिभाषा-कोश-(2) (पृ. 205)	99.00
31.	मनोविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 142)	9.50
32.	दर्शन परिभाषा-कोश (पृ. 432)	9.75
33.	अर्थशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 232)	117.00
34.	अर्थमिति परिभाषा-कोश (पृ. 245)	17.65
35.	वाणिज्य परिभाषा-कोश (पृ. 173)	24.70
36.	समाजकार्य परिभाषा-कोश (पृ. 183)	-
37	समाजशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 212)	71.40
38.	सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 287)	24.00
39.	पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 196)	49.00
40.	पत्रकारिता परिभाषा-कोश (पृ. 164)	87.50
41.	पुरातत्व परिभाषा-कोश (पृ. 391)	76.50

42.	पुरातत्व परिभाषा-कोश-(2) (पृ. 453)	509.00
43.	पाश्चात्य संगीत परिभाषा-कोश (पृ. 104)	28.55
44.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खण्ड-1 (पृ. 212)	89.00
45.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खंड-2 (पृ. 259)	59.00
46.	कंप्यूटर-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 144)	102.00
47.	राजनीतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 356)	343.00
48.	प्रबंधविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 191)	170.00
49.	अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा-कोश (पृ. 293)	344.00
50.	कृषि-कीटविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 213)	75.00
51.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 204)	75.00
52.	पादप आनुवंशिकी परिभाषा-कोश (पृ. 185)	75.00
53.	पादपरोगविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 138)	75.00
54.	मृदा विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 149)	77.00
55.	सूक्ष्मजैविकी परिभाषा-कोश (पृ. 193)	45.00
56.	धातुकर्म परिभाषा-कोश (पृ. 441)	278.00
57.	भारतीय दर्शन परिभाषा-कोश खंड-1 (पृ. 171)	151.00
58.	सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 263)	125.00
59.	विद्युत इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00

मुद्रणाधीन

60. संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा-कोश

आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची

1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1, 2 (पृ० 2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 819)	38.50
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1, 2 (पृ० 1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 700)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान (पृ० 223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, नृविज्ञान	239.00
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 240)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (पृ० 104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिक) (पृ० 253)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-(2) (पृ० 186)	34.00

विषयवार शब्दावलियाँ

1.	मानविकी शब्दावली-(नृविज्ञान) (पृ० 179)	10.00
2.	कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (पृ० 337)	87.00

3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (पृ० 378)	55.00
4.	वणिज्य शब्दावली (पृ० 172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
6.	अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	30.00
7.	भाषाविज्ञान शब्दावली (अग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (पृ० 249)	113.00
8.	बृहत प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	निःशुल्क
9.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	निःशुल्क
10.	पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली (पृ० 174)	82.00
11.	लोक-प्रशासन शब्दावली (पृ० 98)	52.00
12.	अर्थशास्त्र शब्दावली (मानविकी शब्दावली-9) (पृ० 96)	4.40
13.	नृविज्ञान शब्दावली (पृ० 198)	10.00
14.	वानिकी शब्दावली (पृ० 62)	6.50
15.	खेलकूद शब्दावली (पृ० 103)	10.25
16.	डाकतार शब्दावली (पृ० 126)	11.60
17.	रेलवे शब्दावली (पृ० 56)	2.00
18.	गुणता नियंत्रण शब्दावली (पृ० 67)	38.00
19.	रेशम विज्ञान शब्दावली (पृ० 85)	50.00
20.	गणित की मूलभूत शब्दावली (पृ० 135)	निःशुल्क
21.	कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ० 115)	निःशुल्क
22.	भूगोल की मूलभूत शब्दावली (पृ० 156)	निःशुल्क
23.	भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ० 141)	निःशुल्क

24.	वनस्पति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 207)	निःशुल्क
25.	पशु चिकित्सा विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 179)	निःशुल्क

शब्द-संग्रह

1.	कोशिका-जैविकी शब्द-संग्रह (पृ० 197)	62.00
2.	गणित शब्द-संग्रह (पृ० 357)	143.00
3.	भौतिकी शब्द-संग्रह (पृ० 536)	119.00
4.	गृहविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ० 144)	60.00
5.	रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (पृ० 167)	-
6.	भूगोल शब्द-संग्रह (पृ० 369)	200.00
7.	खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	-
8.	भूविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ० 328)	88.00
9.	संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (पृ० 48)	15.00
10.	पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (पृ० 184)	12.25

पाठमालाएँ/मोनोग्राफ

1.	ऐतिहासिक नगर	195.00
2.	प्राकृतिक व सांस्कृतिक नगर	109.00
3.	समुद्री यात्राएँ	79.00
4.	विश्व दर्शन	53.00
5.	अपशिष्ट प्रबंधन	17.00

6.	कोयला : एक परिचय (परिवर्धित)	425.00
7.	वाहित मल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
8.	पर्यावरणी प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.50
9.	रत्न विज्ञान	115.00
10.	2-दूरीक एवं 2-मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
11.	पराज्यामितीय फलन	90.00
12.	ऊर्जा: संसाधन और संरक्षण	105.00
13.	स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	150.00
14.	समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक	153.00
15.	भारतीय कृषि का विकास	155.00
16.	इस्पात परिचय	146.00

MGIPRRND—1848 HRD/06—600 Copies

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक

PED—891
600—2006(DSK-II)

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2006